भारत के सांस्कृतिक केंद्र

अजंता

अजयमित्र शास्त्री

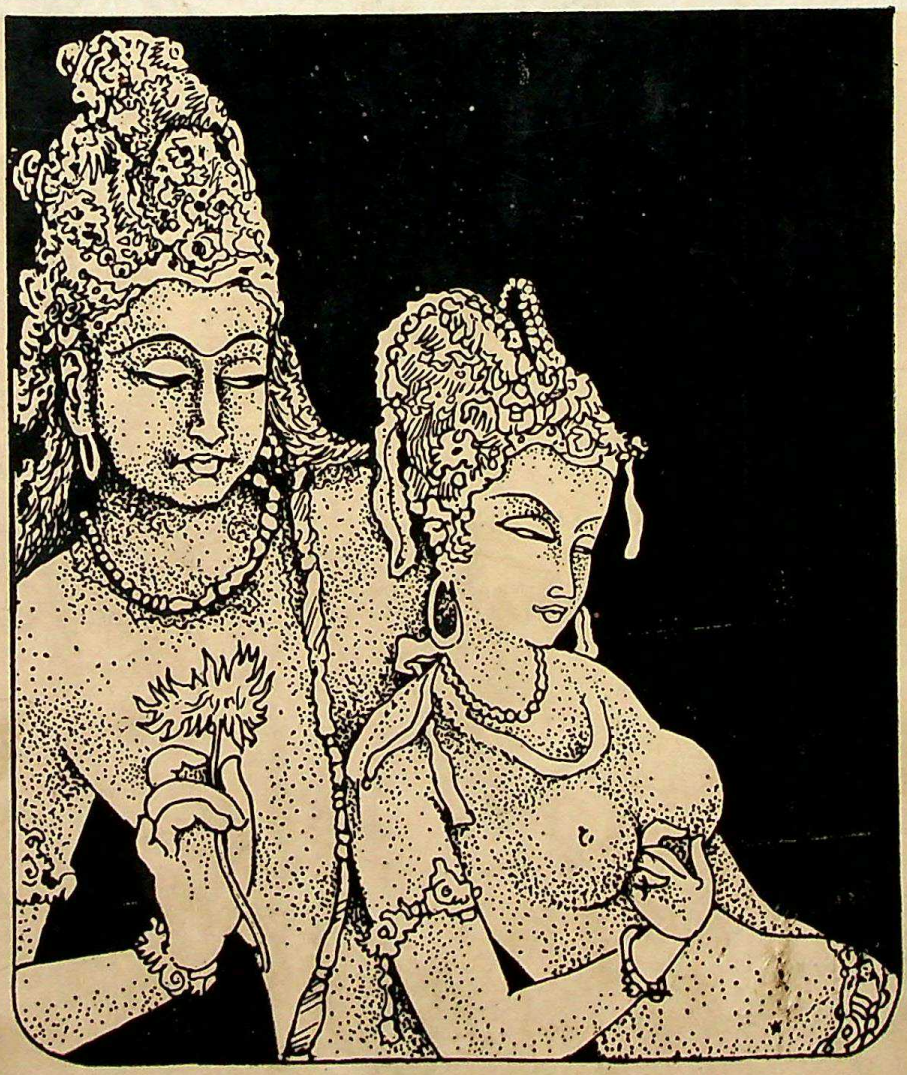

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारत के सांस्कृतिक केंद्र

अजंता

अजयमित्र शास्त्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

5241

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजंता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रंथमाला की अन्य पुस्तकें

कन्हैयालाल अग्रवाल
खजुराहो

कृष्णदत्त वाजपेयी
मथुरा

उमा पांडेय
वाराणसी

संपादक
कृष्णदत्त वाजपेयी

5241

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजंता

अजयमित्र शास्त्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दि मकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड
नई दिल्ली बंबई कलकत्ता मद्रास
समस्त विश्व में सहयोगी कंपनियां

© अजयमित्र शास्त्री : कृष्णदत्त वाजपेयी
प्रथम संस्करण : 1980

एस जी वसानी द्वारा दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड के लिए
प्रकाशित तथा शब्दशिल्पी द्वारा प्रगति प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 में मुद्रित
Ajaymitra Shastri : AJANTA

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता
आचार्य रामशरण शर्मा को
जिनकी विद्वत्ता के प्रति मुझे अपार श्रद्धा है तथा
जो मेरे कार्य में निरंतर रुचि लेते रहे हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संपादकीय

भारत के दीर्घकालीन इतिहास में कतिपय स्थलों को उनकी भौगोलिक स्थिति तथा सामाजिक-आर्थिक कारणों से विशेष महत्व प्राप्त हुआ। इनमें से कई स्थल राजनीतिक केंद्रों के रूप में विकसित हुए, जहां जनपदों की राजधानियां स्थापित हुईं। उनमें नगरनिर्माण योजनाओं को कार्यान्वित किया गया, जिससे उनका रूप विकसित हुआ। व्यवसाय और व्यापार की वृद्धि के साथ ऐसे नगर समृद्ध हुए उनका संबंध अन्य बड़े नगरों के साथ जुड़ा।

अन्य स्थल ऐसे थे जहां धार्मिक केंद्र स्थापित हुए। फलस्वरूप वहां स्तूपों, चैत्यों, मंदिरों और प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। राजवंशों, श्रेणियों, तथा जन-साधारण द्वारा दिए गए प्रोत्साहन एवं संरक्षण से अनेक ऐसे केंद्रों में साहित्य, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला आदि का विकास हुआ।

भारतीय राजनीतिक इतिहास के साथ लोकजीवन के विभिन्न पक्षों के अध्ययन के लिए आज भी भारत के अनेक प्राचीन नगरों में महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त है।

भारत के प्राचीन सांस्कृतिक केंद्रों पर इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करने का उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा विश्वविद्यालयों के छात्रों तथा अन्य ज्ञानपिपासु जनों को भारतीय इतिहास तथा संस्कृति की सम्यक जानकारी हो सके और वे उन कारणों को समझ सकें जिन्होंने समय-समय पर भारतीय इतिहास को प्रभावित किया है। इन पुस्तकों को जटिल या अतिविस्तृत बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। पादटिप्पणियों के रूप में संदर्भ एवं संकेत इसलिए दिए गए हैं कि संबद्ध विषयों में विशेष अन्वेषण करने वाले विद्यार्थियों को उनसे सहायता मिल सके। पुरातत्व, साहित्य एवं अनुश्रुति-विषयक सामग्री का यथोचित उपयोग करने का प्रयत्न किया गया है। ऐतिहासिक विवरण क्रमबद्ध रूप में दिए गए हैं।

देश के महत्वपूर्ण प्राचीन स्थलों में अजंता का विशेष स्थान है। ईसवी पूर्व दूसरी शती से लेकर पूर्वमध्यकाल तक वहां कला का विकास विभिन्न रूपों में हुआ। इन ललित कलाओं में चित्रकला का विशेष उल्लेख अजंता में हुआ। अजंता चित्र शैली का व्यापक प्रभाव परवर्ती भारतीय कला पर द्रष्टव्य है।

प्रस्तुत ग्रंथ में अजंता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देने के बाद, कालक्रमिक इतिहास के साथ संस्कृति के उक्त क्षेत्रों में वहां की चित्रकला तथा मूर्तिकला का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विस्तृत विवेचन किया गया है। अजंता के चुने हुए चित्र ग्रंथ के अंत में दिए गए हैं।

मैकमिलन प्रकाशन संस्थान के सुयोग्य संचालकों तथा समाज विज्ञान के संपादक के प्रति मैं अनुगृहीत हूं जिन्होंने इस उपयोगी ग्रंथमाला का प्रकाशन आरंभ किया है।

सागर विश्वविद्यालय
गांधी जयंती, अक्टूबर, 1979

कृष्णदत्त वाजपेयी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राक्कथन

अजंता पर विश्व की विविध भाषाओं में इतना अधिक लिखा गया है कि यदि उसका संकलन किया जाए तो एक अच्छा-खासा पुस्तकालय बन सकता है। किंतु यह आश्चर्य का विषय है कि अजंता के गुफा समूह को प्रकाश में आए यद्यपि डेढ़ शताब्दी से अधिक काल व्यतीत हो चुका है तथापि आज तक न केवल हिंदी में अपितु अन्य किसी भी भाषा में ऐसी एक भी पुस्तक नहीं लिखी गई है जिसमें अजंता के सभी पहलुओं का विवेचन किया गया हो। प्रस्तुत पुस्तक का प्रयोजन इस अभाव की पूर्ति करना है। इस पुस्तक में सर्वप्रथम अजंता की खोज, नाम, अजंता-कला की पृष्ठभूमि, स्थापत्य, चित्र, शिल्प और अभिलेखों तथा उत्तर-कालीन कला पर अजंता के प्रभाव का निरूपण किया गया है। इसी में पुस्तक की मौलिकता निहित है। जब मैंने इस पुस्तक को लिखने का निश्चय किया तो मेरी धारणा थी कि अजंता पर इतने अधिक लेखन के फलस्वरूप इसमें मौलिकता के लिए कोई अवकाश नहीं है और नवीनता केवल विषय के संयोजन एवं प्रस्तुति में ही संभव हो सकती है। किंतु जैसे जैसे कार्य आगे बढ़ता गया वैसे वैसे इस धारणा का निराकरण होता गया। पुस्तक में कई नए सुझाव पाठकों को यथा-स्थान बिखरे मिलेंगे। इस संदर्भ में अजंता के संभावित प्राचीन नाम के विषय में अपने मत का निर्देश मैं विशेष रूप से करना चाहूंगा। इस प्रश्न के सविस्तार निरूपण के पश्चात मैंने यह संभावना व्यक्त की है कि अजंता का गुफासमूह जिस स्थान पर स्थित है उसका प्राचीन नाम व्याघ्रपुर था।

ग्रंथ सात अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में जो पुस्तक की प्रस्तावना है, इस गुफासमूह की स्थिति, निर्माण और तिरोभाव एवं आधुनिक काल में उसकी खोज, प्रचीन नाम तथा इस विषय पर अब तक हुए कार्य की चर्चा की गई है। दूसरे अध्याय में अजंता कला को समझने के लिए अपेक्षित ऐतिहासिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। अजंता के स्थापत्य, चित्रक्रम एवं शिल्प का विवेचन अगले तीन अध्यायों का विषय है। छठे अध्याय में इन शैलग्रहों में उत्कीर्ण एवं चित्रित अभिलेखों के वर्ण्य विषय एवं महत्व का निरूपण किया गया है। अजंता कला पर इसके पूर्व लिखी गई किसी भी पुस्तक में अभिलेखों का स्वतंत्र रूप से विवेचन नहीं किया गया है। सातवें एवं अंतिम अध्याय का विवेच्य है उत्तरकालीन भारतीय एवं एशिया के भारतेतर देशों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कला को अजंता का प्रदेय। अंत में प्रस्तुत ग्रंथ में उपयुक्त तथा पाठकों की दृष्टि से उपयोगी पुस्तकों एवं लेखों की संदर्भ सूची दी गई है।

प्रस्तुत पुस्तक की पूर्ति में विविध स्रोतों से जो सहयोग मिला है उसके लिए ऋणनिर्देश करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं। पुस्तक की योजना के विषय में बहुमूल्य सुझावों के लिए मैं इस ग्रंथमाला के संपादक आदरणीय आचार्य कृष्णदत्त वाजपेयी के प्रति कृतज्ञ हूं। पुस्तक की प्रस्तुति में मेरे शिष्य एवं सहयोगी डा० चंद्रशेखर गुप्त, प्रवक्ता, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय से बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है जिसके लिए मैं उनका ऋणी हूं। शोधछात्र श्री केल्लेलु इस्माइल एवं श्रीमती तापती सिन्हा से भी कुछ भाग में महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हुई है। इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूं। मेरी पत्नी डा० योगेश्वरी शास्त्री एवं पुत्र चि० अविनाश ने भी पुस्तक को शीघ्र पूर्ण करने में बहुविध सहायता की है जिसके लिए वे यथाक्रम हार्दिक धन्यवाद एवं आशीषों के पात्र हैं।

ग्रंथ में प्रकाशित पांच चित्रों के लिए मैं अमेरिकन इंस्टिट्यूट आफ इंडियन स्टडीज का तथा शेष चित्रों के लिए शरद पांडे, फोटोग्राफर, और मानचित्र एवं गुफाओं के योजना चित्रों के रेखांकन के लिए श्री प्रकाश जोशी, पुरातत्व आरेखक, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय का हार्दिक आभार मानता हूं।

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं
पुरातत्व विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय,
नागपुर।

अजयमित्र शास्त्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषयानुक्रम

1. प्रस्तावना / 1
2. ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि / 14
3. स्थापत्य / 39
4. चित्रकला / 64
5. मूर्तिकला / 111
6. अभिलेख / 125
7. परिणति / 142

सहायक ग्रंथों एवं लेखों की सूची / 152
चित्रसूची / 155
अनुक्रमणी / 157

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

प्रस्तावना

'अजंता' नाम सुनते ही हमारा मन एक अनिर्वचनीय कल्पना से झंकृत हो उठता है और हम एक स्वप्नलोक में विचरण करने लगते हैं। जिसने अजंता के शैल-गृहों[1] के बारे में केवल सुना या पढ़ा है उसके मन में उन्हें देखने की अतृप्त कामना और अधिक बलवती हो उठती है और जिसने निकट से उनका अवलोकन किया है उसके मनश्चक्षुओं के समक्ष उनका एक समग्र चित्र उभर कर उसे भावविभोर कर देता है तथा वह पुनः एक बार उनके दर्शन के लिए लालायित हो उठता है। अजंता में कुछ ऐसा ही आकर्षण है। पुनः पुनः देखने पर भी अजंता एकरसता या ऊब उत्पन्न नहीं करता। इतना ही नहीं, हर बार दर्शक को उसमें कुछ न कुछ नवीनता ही दृष्टिगोचर होती है। महाकवि माघ के शब्दों में किसी वस्तु की सुंदरता इसी बात में निहित है कि क्षण क्षण में उसमें नवीनता दिखाई दे : क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः।[2] हमारे प्राचीन कलाकेंद्रों में अजंता सर्वाधिक लोकप्रिय है। शायद ही कोई ऐसा भारतीय हो जिसने अजंता का नाम न सुना हो। इस दृष्टि से उसकी बराबरी यदि कोई अन्य स्थान कर सकता है तो केवल ताजमहल। तो फिर क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि अजंता को विश्व के आश्चर्यों में स्थान नहीं दिया गया है? कारण संभवतः यह है कि अजंता की ओर कलामर्मज्ञों का ध्यान ताजमहल की तुलना में बहुत देर से गया।

स्थिति : अजंता की गुफाएं महाराष्ट्र राज्य के औरंगाबाद जिले में 20° 30′ उत्तरी अक्षांश एवं 75° 40′ पूर्वी देशांतर पर स्थित हैं। ये मध्य रेलवे के जलगांव स्टेशन से लगभग 61 किलोमीटर और औरंगाबाद से लगभग 106 किलोमीटर की दूरी पर हैं और दोनों स्थानों तक कार अथवा सार्वजनिक वाहनों द्वारा सरलता से पहुंचा जा सकता है। गुफाओं से लगभग साढ़े छः किलोमीटर की दूरी पर स्थित फर्दापुर नामक गांव में यात्रियों की सुविधा के लिए सरकारी अतिथिगृह है और दर्शकों को फर्दापुर से होकर ही, चाहे वे किसी भी मार्ग से जाएं, इन गुफाओं के दर्शन के लिए जाना पड़ता है।

अजंता के शैलगृह दक्खन अथवा महाराष्ट्र के पठार के उत्तरी छोर पर गोदावरी तथा ताप्ती की सहायक नदियों की जलविभाजक इंध्याद्रि अथवा अजंता पर्वतमाला में काटकर बनाए गए हैं, जो दक्खन के पठार को खानदेश के मैदान से पृथक करती है। ये औसत समुद्रतल से लगभग 430 मीटर की ऊंचाई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर हैं और लगभग 76 मीटर ऊंची सीधी खड़ी चट्टान के एक अर्धवृत्ताकार कगार में खोदे गए हैं। इसके सामने एक गहरी संकरी घुमावदार घाटी में वाघोरा नामक नदी बहती है जो अट्ठाइसवीं गुफा के परे एक दर्रे के सिरे पर एक जल-प्रपात के रूप में गिरकर नीचे उतरती है। एक के बाद एक कर सात छलांगें लगा कर नीचे उतरने के फलस्वरूप अन्वर्थ 'सात कुंड' नाम से प्रसिद्ध यह जलप्रपात सोलहवीं गुफा से भलीभांति देखा जा सकता है। इनमें से निचली छलांग 21 से 24 मीटर तक ऊंची है और अन्य छलांगें लगभग 30 मीटर अधिक ऊंची हैं। किंवदंती है कि इस प्रपात की तलहटी पर स्थित कुंड तलरहित है तथा उसमें खजाना छिपा हुआ है। इस नदी के दूसरे तट पर भी एक पहाड़ी है जो पहली पहाड़ी से कुछ ऊंची है। इसके व्यू-पाइंट नामक स्थल से नीचे की ओर देखने पर सामने की पहाड़ी एक अर्धवृत्त के रूप में फैली हुई दिखाई देती है और गुफाएं शिलोच्चय में काटे गए अंधेरे अंतराल जैसे लगते हैं। इन शैलगृहों के निर्माण का प्रयोजन वर्षा ऋतु के चार महीनों (चातुर्मास्य) में बौद्ध भिक्षुओं के निवास एवं उपासना के लिए आवश्यक व्यवस्था करना था। वर्षाजल से उमड़कर मधुर संगीत के साथ बहती हुई वाघोरा नदी और चारों ओर हरियाली से ढकी हुई पर्वतमालाएं कितना रमणीक दृश्य प्रस्तुत करती होंगी इसकी कल्पना मात्र से मन आनंद से प्रफुल्लित हो उठता है। अध्यात्म चिंतन की दृष्टि से उपयुक्त स्थान के विषय में औपनिषदिक[3] ऋषियों की कल्पना को यह वातावरण मूर्त रूप प्रदान करता है, इसमें संदेह नहीं। जिस पर्वतमाला में ये शैलगृह उत्कीर्ण हैं वह संप्रति अजंता पर्वतमाला अथवा इंध्याद्रि के नाम से प्रसिद्ध है। किंतु सत्रहवीं गुफा में उत्कीर्ण एक वाकाटक मांडलिक के अभिलेख से विदित होता है कि प्राचीन काल में वह सह्याद्रि का ही एक भाग (सह्यपाद) मानी जाती थी।[4]

ऐतिहासिक सर्वेक्षण : अजंता के शैलगृहों की खुदाई का काम ईसापूर्व द्वितीय अथवा प्रथम शताब्दी में प्रारंभ हुआ और सातवाहनों के प्रबुद्ध संरक्षण में यह कार्य ईस्वी सन की प्रारंभिक शताब्दियों तक अव्याहत रूप से चलता रहा। इसके पश्चात लगभग तीन शतकों के सुदीर्घ व्यवधान के अनंतर वाकाटक काल में ईस्वी पांचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यह काम एक नवीन उत्साह के साथ पुनः हाथ में लिया गया और छठी शताब्दी के अंत में अथवा सातवीं शती के आरंभिक भाग में पूर्ण हुआ। सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन त्सांग ने अपने यात्राविवरण में इन गुफाओं की सविस्तार चर्चा की है जिससे उस समय इनकी प्रसिद्धि का पता चलता है। बादामी के चालुक्य नरेश पुलकेशी द्वितीय के अधीनस्थ महाराष्ट्र प्रदेश का वर्णन करत हुए उसने इन शैलगृहों का उल्लेख इस प्रकार किया है :

देश की पूर्वी सीमा पर एक ऊंचा पर्वत है जिसकी चोटियां ऊंची हैं और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसमें एक के ऊपर एक कर दूर तक चट्टानें फैलती चली गई हैं और एक कगारदार ऊंचा शिलोच्चय है। इसमें एक अंधेरी घाटी में एक संघाराम निर्मित है। इसके ऊंचे कक्ष और बगली रास्ते चट्टानों में होकर गए हैं अथवा चट्टानों के सामने खुलते हैं। इसके खंड पर खंड पीछे की ओर चट्टान और सामने घाटी देकर बनाए गए हैं।

यह संघाराम अर्हत ओ-चै-लो (अचल) ने बनवाया था।

अचल द्वारा इस संघाराम के निर्माण के कारण की विस्तृत चर्चा करते हुए वह आगे लिखता है कि

यह अर्हत पश्चिमी भारत का निवासी था। उसकी माता का देहांत होने पर वह यह जानना चाहता था कि उसका पुनर्जन्म किस योनि में हुआ है। उसने देखा कि उसकी माता ने इस देश में स्त्री का रूप प्राप्त किया है। अतः सत्य-ग्रहण की उसकी क्षमता के अनुसार उसे बौद्ध धर्म में दीक्षित करने के उद्देश्य से वह यहां आया। भिक्षा मांगने के लिए एक ग्राम में पहुंचकर वह उसी घर के द्वार पर आया जिसमें उसकी माता का जन्म हुआ था। एक छोटी कन्या उसे देने के लिए भोजन लेकर बाहर आई। परंतु इसी समय उसके स्तनों से दूध निकल कर टपकने लगा। उसके मित्रों (घरवालों) ने इस घटना को देखकर इसे एक अपशकुन माना, किंतु अर्हत ने उन्हें उसके जन्म का इतिहास कह सुनाया जिसके परिणामस्वरूप वह कन्या अर्हत पद को प्राप्त हुई। अर्हत ने उस स्त्री के प्रति, जिसने जन्म देकर उसका पालन-पोषण किया था, कृतज्ञता से प्रेरित होकर और ऐसे शुभ कार्यों के फल का स्मरण करते हुए, उसके उपकारों का ऋण चुकाने के उद्देश्य से इस संघाराम का निर्माण कराया था।

इस संघाराम का वर्णन करते हुए वह आगे लिखता है कि

यह महाविहार लगभग सौ फीट ऊंचा है और उसके मध्य में बुद्ध की लगभग सत्तर फीट ऊंची शैल प्रतिमा स्थापित है। इसके ऊपर सात खंडों में एक शैलछत्र बना हुआ है जो प्रत्यक्षतः बिना किसी आधार के ऊपर उठा हुआ है। प्रत्येक छत्र के मध्य लगभग तीन फीट का अंतर है। पुरानी किंवदंती के अनुसार यह अर्हत के व्रत के माहात्म्य से ऊपर उठा हुआ है। वे यह भी कहते हैं कि इसके मूल में उसकी चमत्कारिक शक्तियों का बल है। कुछ लोग इसे उसके जादू का जोर बताते हैं। किंतु इस आश्चर्य का वास्तविक कारण समझने के लिए कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। विहार के चारों ओर पत्थर की भीतों पर तथागत के बोधिसत्व जीवन के विविध दृश्य चित्रित हैं। इनमें उनकी बोधिप्राप्ति के समय प्रकट हुए शुभ शकुनसूचक आश्चर्यजनक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिह्न तथा निर्वाण के समय हुए आध्यात्मिक चमत्कार भी समाविष्ट हैं। ये दृश्य पूर्णतः यथातथ्य और बड़े ही सुंदर बनाए गए हैं। संघाराम के द्वार के बाहर उत्तर और दक्षिण अथवा दाईं अथवा बाईं ओर पत्थर का एक एक हाथी बना हुआ है। एक बहुचर्चित किंवदंती के अनुसार ये हाथी इतनी ऊंची चिंघाड़ मारते हैं कि संपूर्ण पृथ्वी हिल उठती है। प्राचीन काल में पुस चैन-न अथवा दिङ्नाग बोधिसत्व इस संघाराम में प्रायः ठहरा करते थे।[5]

विद्वान इस विषय में एकमत हैं कि इस देश के पूर्व में स्थित अ-चे-लो के विहार का चीनी यात्री द्वारा किया गया वर्णन अजंता की गुफाओं पर लागू होता है। इस संदर्भ में यह स्मरणीय है कि गुफा क्र० 26 में उत्कीर्ण एक लेख[6] में स्थविर अचल द्वारा एक शैलगृह के निर्माण कराए जाने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। लेख की भाषा से ऐसा लगता है कि अचल की गुफा का निर्माण लेख के काफी पहले हो चुका था और गुफा क्र० 26 से, जिसका निर्माण स्वयं लेख के अनुसार भिक्षु बुद्धभद्र ने कराया था, उसका कोई संबंध नहीं था। अचल की गुफा की पहचान संप्रति संभव नहीं है। यह असंभव नहीं कि छब्बीसवीं गुफा का निर्माण अचल के समय आरंभ हुआ था, किंतु वह किसी कारण अपूर्ण रह गई थी तथा उसे बुद्धभद्र ने पूर्ण कराया। जो भी है, इसमें संदेह नहीं कि ह्वेन त्सांग का अ-चे-लो इस लेख के स्थविर अचल से अभिन्न है। संघाराम के द्वार के दोनों ओर पत्थर के हाथियों के उल्लेख का संकेत स्पष्टतया सोलहवीं गुफा के द्वार पर खड़े हुए शिलानिर्मित दो हाथियों की ओर है जो आज भी विद्यमान हैं।[7]

ह्वेन त्सांग के विवरण के अधिकांश व्याख्याताओं की यह मान्यता है कि वह स्वयं अजंता नहीं गया था और उसका वर्णन सुनी-सुनाई बातों पर आधारित है।[8] इस मत के समर्थन में वे इस विषय में ह्वेन त्सांग की जीवनी के लेखक हुई ली के मौन[9] पर अधिक बल देते हैं। किंतु थामस वाटर्स का यह मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि ह्वेन त्सांग ने स्वयं अजंता की यात्रा की थी। उसके वर्णन की यथातथ्यता से इसकी पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त व्हेन त्सांग के विवरण में एक भी ऐसा शब्द नहीं है जिससे सूचित होता हो कि उसका वर्णन मात्र किंवदंती पर आधारित है। एक अन्य तथ्य से भी इस बात का समर्थन होता है कि ह्वेन त्सांग स्वयं अजंता गया था। उपर्युक्त संघाराम के पश्चात ह्वेन त्सांग भड़ौच गया था। इसकी चर्चा करते हुए उसने लिखा है कि 'यहां से 1,000 लि (लगभग 200 मील) से अधिक पश्चिम की ओर चलकर और नर्मदा नदी पार कर वह पो-लु-किए (क)-चै-पान (अथवा पो) अथवा भड़ौच पहुंचा।' अजंता से भड़ौच की दूरी 200 मील के आसपास है। इससे प्रतीत होता है कि 'यहां से' का अभिप्राय अचल का विहार जिस पर्वत में था उससे है। इन सब तथ्यों से यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुमान करना अनुचित न होगा कि ह्वेन त्सांग ने अचल के विहार में स्वयं कुछ समय व्यतीत किया।[10]

कुछ विद्वानों के अनुसार अजंता में पुलकेशी द्वितीय के राजत्वकाल की एक महत्वपूर्ण घटना का चित्रांकन हुआ है। गुफा क्र० 26 और 27 के मध्यवर्ती एक चैत्यगृह की पिछली दीवार पर उत्कीर्ण एक अभिलेख में राष्ट्रकूटों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है और अक्षररचना की दृष्टि से लेख का काल साधारण तथा आठवीं-नवीं शताब्दी माना जा सकता है। इसके पश्चात इन शैलगृहों के व्यवहार में रहने का कोई प्रमाण नहीं मिलता और प्रायः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ईस्वी 9वीं शताब्दी के पश्चात बौद्ध भिक्षु उन्हें छोड़कर अन्यत्र चले गए। इसका कारण यह है कि इस समय के आसपास भारत से बौद्ध धर्म, जिसके ह्रास की प्रक्रिया गुप्तकाल के पश्चात आरंभ हो चुकी थी, प्रायः तिरोभूत हो गया। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त राष्ट्रकूटकालीन अभिलेख का बौद्ध धर्म से संबंध कुछ संदिग्ध है और इससे यह अनुमान लगाया गया है कि बौद्धों ने उस समय तक अंजता की गुफाओं का त्याग कर दिया था। इसके पश्चात ईस्वी 19वीं शताब्दी के पूर्व तक इन बौद्ध शैलगृहों के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती।

अजंता की खोज : लगभग एक सहस्राब्दी तक पूर्णतः विस्मृत रहने के पश्चात आधुनिक काल में इस महान कला केंद्र की खोज अर्वाचीन भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण और रोमांचक घटना है। इतने दीर्घकाल तक अंधकाराच्छन्न रहने के पश्चात 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में इन गुफाओं ने पुनः कलापारखियों को अपनी ओर आकर्षित किया। उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार सर्वप्रथम 1819 में मद्रास रेजीमेंट के कुछ अधिकारियों का ध्यान उनकी ओर गया। स्थानीय परंपरा के अनुसार कुछ ब्रिटिश सैनिक अधिकारी दक्खन से उत्तर की ओर जाते हुए अजंता घाट से होकर गुजरे। उनमें से शिकार में रुचि रखने वाले एक अधिकारी ने ग्रामवासियों से बाघों के संभावित आश्रयों के विषय में पूछा। एक चरवाहा उसे 'बाघों का घर' दिखाता हुआ गुफाओं के सामने घाटी के दूसरी ओर स्थित व्यू पाइंट नामक स्थान पर ले गया। वहां से उस अधिकारी को शैलगृह क्र० 10 का अग्रभाग दिखाई दे गया। अग्रभाग पर नक्काशी के काम से आकृष्ट होकर वह गुफा में गया और इस प्रकार अजंता की विस्मृत गौरवमयी कलासंपदा पुनः प्रकाश में आई।[11] कुछ वर्ष पूर्व 10वीं गुफा के सभागृह के 13वें स्तंभ के सामने वाले भाग पर अंगरेजी में उत्कीर्ण एक लेख के प्राप्त होने के बाद इस घटना पर महत्व-पूर्ण प्रकाश पड़ता है। लेख इस प्रकार है :[12]

John Smith 20th Cavalry

28 April 1819

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि किंवदंती के अनुसार शिकार करते हुए जिस सैनिक अधिकारी ने इन गुफाओं का पता लगाया था वह अट्ठाइसवीं घुड़सवार सेना का जान स्मिथ ही था और यह रोमांचकारी घटना 28 अप्रैल 1819 के दिन घटित हुई। आधुनिक भारतीय इतिहास का यह निश्चय ही एक गौरवपूर्ण दिन था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि लेख गुफा के फर्श से 7 फीट 5 इंच की ऊंचाई पर खरोंचा गया है। इससे स्पष्ट है कि जिस समय पहले पहल इस गुफा का पता चला उस समय यह शताब्दियों से एकत्रित कई फीट ऊंची गंदगी से भरी हुई थी। यही दशा अन्य गुफाओं की भी रही होगी। इस घटना के पश्चात कुछ ही समय में कला की दृष्टि से इन गुफाओं का महत्व स्पष्ट हो गया और आज तो सदा यात्रियों की चहल-पहल बनी रहती है।

दीर्घकाल तक विस्मृति के अंधकार से इन गुफाओं का आच्छन्न रहना एक दृष्टि से लाभप्रद ही सिद्ध हुआ। यदि उनकी ओर मध्यकालीन धर्मांध आक्रांताओं का ध्यान गया होता तो वे नष्ट-भ्रष्ट हुए बिना न रहतीं और उनकी वही गति होती जो एलोरा एवं सैनिक मार्गों के समीपवर्ती अन्य महत्वपूर्ण प्राचीन स्थलों की हुई है।

आधुनिक नाम : इस गुहासमूह को मद्रास सेना के उक्त अधिकारियों ने लगभग 11 किलोमीटर दूर[13] स्थित अजंता नामक ग्राम के नाम से अभिहित किया और तब से यह नाम लोकप्रचलित हो गया है। इस ग्राम के नाम का स्थानीय उच्चारण अजिंठा अथवा अजंता है और इसके फलस्वरूप महाराष्ट्र में ये शैलगृह इसी नाम से प्रसिद्ध हैं।[14] यह नामकरण भी एक आश्चर्य का विषय है। फर्दापुर, जिससे इन गुहाओं के दर्शक भलीभांति परिचित हैं, यहां से केवल 6½ किलोमीटर दूर है जब कि अजंता की दूरी, जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, 11 किलोमीटर के आस-पास है। गुफाओं से एक किलोमीटर से कम दूरी पर लोणापुर (गुहानगर[15]) नामक एक प्राचीन ग्राम वाघोरा नदी के ऊपरी भाग पर आज भी विद्यमान है। शिलाओं में खोदकर बनाए गए मार्ग द्वारा यह ग्राम शैलग्रहों से जुड़ा है और सर्वेक्षण के दौरान ग्राम में सातवाहनकालीन मृदभांड भी प्राप्त हुए हैं।[16] इससे स्पष्ट है कि यह बस्ती गुफाओं की खुदाई का कार्य आरंभ होने के समय (ई०पू० द्वितीय-प्रथम शताब्दी के आसपास) अस्तित्व में आ चुकी थी। इसका नाम भी प्राचीनता का सूचक है। इस प्रकार वास्तव में देखा जाए तो समीपवर्ती ग्राम के आधार पर प्राचीन कलाकेंद्रों तथा अन्य पुरातात्विक अवशेषों के नामकरण की बहुप्रचलित पद्धति का अनुसरण करते हुए एवं ऐतिहासिक औचित्य की दृष्टि से लोणापुर नाम कहीं अधिक समीचीन होता। किंतु प्रचलित नाम सदा इस नियम का अनुसरण नहीं करते और अजंता इसका एक ज्वलंत उदाहरण है।[17]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन नाम : अजंता का प्राचीन नाम क्या था, यह ज्ञात नहीं है। किंतु 'महामायूरी' नामक बौद्धग्रंथ में अजितंजय नामक एक ग्राम का उल्लेख मिलता है जिसका अधिष्ठाता यक्ष कूटदंष्ट्र था।[18] अजित भावी बुद्ध मैत्रेय का बोधि प्राप्ति के पूर्व का नाम है। अतः यह अनुमान किया गया है कि अजंता का प्राचीन नाम संभवतः अजितंजय अथवा अजितंजय-स्थान था जिससे उसका वर्तमान लोकप्रचलित नाम अजिंठा निकला है।[19] इस संभावना को स्वीकार करने में एक प्रमुख कठिनाई यह है कि 'महामायूरी' में अजितंजय के पूर्व अथवा पश्चात उल्लिखित स्थान उत्तर भारत में स्थित हैं जबकि अजंता दक्षिणापथ में है। किंतु यह स्मरणीय है कि इस पुस्तक में सदा भौगोलिक क्रम का ध्यान नहीं रखा गया है।

इस संदर्भ में एक अन्य संभावना विचारणीय है। इस शैलगृह समूह के सामने बहनेवाली नदी का वर्तमान नाम (वाघोरा) स्पष्टतया मूल संस्कृत नाम व्याघ्रपुर से ठीक उसी प्रकार निर्गत हुआ है जिस प्रकार प्राचीन एलापुर से एलोरा। जैसाकि नाम के उत्तरपद 'पुर' से स्पष्ट है, व्याघ्रपुर मूलतः उस स्थान का नाम था जहां अजंता की गुफाएं स्थित हैं और लक्षणा से उसके सान्निध्य में बहने के कारण नदी का भी वही नाम पड़ गया। इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण ज्ञात हैं। शक महाक्षत्रप प्रथम रुद्रदामा के जूनागढ़ शिलालेख से विदित होता है कि गिरिनगर मूलतः रैवतक अथवा ऊर्जयत पर्वत पर बसे हुए एक नगर का सार्थक नाम था, किंतु उससे निकला हुआ नाम गिरनार आज उस पर्वत के लिए प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार अनेक अभिलेखों में ऐसी नदियों के उल्लेख उपलब्ध होते हैं जिनके नाम उनके समीपवर्ती स्थानों के नामों के आधार पर रखे गए थे। उदाहरणार्थ, दाहनुका (दहनु के दक्षिण में),[20] दमण (दमण के पास),[21] गवहाणग्राम नदी (गवणे नामक ग्राम, रत्नागिरि जिला)[22], जप्यखेडानदी,[23] करपर्णीग्राम-नदी,[24] उखलपद्री नदिका[25] इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। इसी भांति नदी नामों अथवा उनसे निर्गत नामों के स्थाननामों के रूप में उपयोग भी दृष्टिगत होता है। ये सभी नाम लाक्षणिक हैं। वाघोरा भी इसी प्रकार का नाम है। अधिकांश स्थाननामों का कोई न कोई आधार होता है और व्याघ्रपुर नाम भी सार्थक प्रतीत होता है। अजंता के इस नाम से अभिहित होने का कारण संभवतः यह था कि उसके परिसरवर्ती प्रदेश में बाघ बड़ी संख्या में पाए जाते थे। इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि कुछ समय पूर्व तक इस वन्य क्षेत्र में बाघ अच्छी खासी संख्या में उपलब्ध थे और अजंता की गुफाओं की आधुनिक काल में खोज ही बाघों के शिकार की घटना से संबंधित है। एक अन्य तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना भी यहां अप्रासंगिक न होगा। मध्यप्रदेश में स्थित बाघ की सुप्रसिद्ध बौद्ध गुफाओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का निर्माण और चित्रण अजंता के उत्तरकालीन शैलगृहों का समसामयिक है और कलापारखियों के अनुसार इन दोनों स्थानों की चित्र-शैली प्रायः एक जैसी है। यह असंभव नहीं कि अजंता के कुछ भिक्षु-कलाकारों ने ही मध्यभारत में जाकर बाघ की गुफाओं के निर्माण और चित्रांकन की प्रेरणा दी और उन्होंने इन गुफाओं के स्थान पर उसके वर्तमान नाम का मूल रूप आरोपित किया। यह उल्लेखनीय है कि बाघ के पास से बहनेवाली नदी आज भी बाघिनी नाम से प्रसिद्ध है। यह नाम बाघोरा की याद दिलाता है। अब तक के विवेचन से स्पष्ट है कि अंजता का प्राचीन नाम संभवतः व्याघ्रपुर था जो आज भी वहां से होकर बहने वाली नदी के नाम में सुरक्षित है।

अजंता के शैलगृहों को दर्शकों की दृष्टि से एक आधुनिक मार्ग द्वारा परस्पर संबंधित कर दिया है तथा एक गली में स्थित घरों की भांति पूर्वी अथवा बाहरी सिरे से आरंभ कर उन्हें एक के बाद एक क्रम संख्या दे दी गई है। इस क्रम का उनके निर्माणक्रम से कोई संबंध नहीं है। जैसाकि हम देख चुके हैं, अजंता की गुफाओं की खुदाई दो कालखंडों में हुई जिनके मध्य कई शताब्दियों का व्यवधान था। प्रथम कालखंड में केवल छः गुफाओं (क्र० 8-10, 12, 13 तथा 15 ए) का निर्माण हुआ था और शेष सभी गुफाओं का निर्माण दूसरे कालखंड में हुआ। इन गुफाओं की ओर ध्यान से देखने पर यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि इस संपूर्ण गुफासमूह की खुदाई एक समय में योजनाबद्ध रूप में नहीं हुई अपितु प्रत्येक गुफा का निर्माण स्वतंत्र रूप से हुआ था और अधिकांश गुफाएं पत्थर में काटकर बनाए गए सोपानमार्गों के द्वारा नीचे सामने बहती हुई बाघोरा नदी से संबंधित थीं। इनमें से कुछ सीढ़ियों के अवशेष आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। इन गुफाओं की नदीतल से भिन्न भिन्न ऊंचाइयों से भी यही तथ्य झलकता है।

प्राचीन व्यापारिक मार्ग और अजंता की स्थिति : लगभग आठवीं-नवीं शताब्दी के पश्चात अजंता विस्मृति के गर्भ में डूब गया था। उन्नीसवीं शताब्दी में उसके पुनरुद्धार के पश्चात दर्शकों की सुविधा की दृष्टि से वहां तक पहुंचने के लिए मार्ग बनाए गए। किंतु प्राचीन काल में अजंता प्रमुख व्यापारिक मार्गों पर स्थित था, यह कई प्रमाणों से सिद्ध होता है।

प्राचीन साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि अजंता उत्तर में माहिष्मती (वर्तमान महेश्वर, नीमाड़ जिला, मध्य प्रदेश) तथा विदिशा (वर्तमान भिलसा) से और दक्षिण में प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान पैठण) और वत्सगुल्म (आधुनिक वाशिम) से व्यापारिक मार्गों द्वारा जुड़ा हुआ था। उज्जयिनी (उज्जैन) को प्रतिष्ठान से जोड़ने वाला मार्ग माहिष्मती, बुरहानपुर, घटोत्कच, अजंता और एलोरा होते हुए प्रतिष्ठान पहुंचता था और आगे तगर (वर्तमान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तैर) नगर से दक्षिण के अन्य महत्वपूर्ण ग्रामों और नगरों से होकर मदुरा तक जाता था। अजंता की अधिकांश गुफाएं वाकाटक काल में ही बनीं तथा पुनः संस्कारित हुईं। अतः यह स्वयंसिद्ध तथ्य है कि वाकाटकों की वत्सगुल्म शाखा की राजधानी (वत्सगुल्म) से अजंता मार्ग द्वारा संबद्ध था। यह मार्ग आगे बेजवाड़ा से होते हुए दक्षिण भारत के महत्वपूर्ण नगरों को जोड़ता था। अजंता से एक मार्ग हरदा होता हुआ सीधे विदिशा तक जाता था जो आगे पद्मावती (आधुनिक पदम-पवाया) गोपाद्रि (आधुनिक ग्वालियर) होता हुआ मथुरा पहुंचता था।[26] इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि अजंता की गुफा क्र० 4 में उत्कीर्ण एक लेख से ज्ञात होता है कि उक्त गुफा का स्वामी माथुरक अर्थात मथुरा का रहने वाला था। इसी भांति अजंता से प्राप्त लेखों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि यहां पैठण, तथा बहाल प्रभृति स्थानों से वही यात्री आतेजाते थे।[27]

पूर्वगामी संशोधन : अजंता पर अब तक जो कार्य हुआ है उसकी संक्षिप्त चर्चा करना यहां अप्रासंगिक न होगा। 1819 में इन शैलगृहों की खोज के पश्चात इनकी सर्वप्रथम चर्चा विलियम एर्स्किन ने 1822 में बांबे लिटरेरी सोसाइटी के विवरण (खंड 3) में की। 1824 में लेफ्टिनेंट जेम्स ई० अलेक्जेंडर ने इन गुफाओं की यात्रा की और उनका तथा उनके भित्तिचित्रों का संक्षिप्त विवरण रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन को भेजा जो 1829 में प्रकाशित हुआ।[28] 1828 में कैप्टन ग्रेसले और राल्फ वहां गए और राल्फ द्वारा प्रस्तुत भित्तिचित्रों का सजीव वर्णन बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में प्रकाशित हुआ।[29] इसी वर्ष सर जान मालकौम ने डा० जे० वर्ड को इन शैलगृहों के निरीक्षण के लिए भेजा और उनका विवरण उनकी कृति 'हिस्टारिकल रिसर्चेज' में प्रकाशित हुआ। इस वर्णन में अनेक त्रुटियां हैं। 1839 में लेफ्टिनेंट ब्लैक ने इनका विश्वसनीय वर्णन 'बांबे कोरियर' में प्रकाशित किया। जेम्स फर्ग्युसन ने 1839 में इन गुफाओं का निरीक्षण किया तथा रायल एशियाटिक सोसाइटी के समक्ष 1843 में पश्चिम भारतीय शैलगृहों पर एक विस्तृत निबंध प्रस्तुत किया जिसका एक बड़ा भाग अजंता की वास्तुकला और चित्रों पर है।[30] अजंता के विषय में यह प्रथम विद्वत्तापूर्ण एवं प्रामाणिक विवरण था। इस लेख में फर्ग्युसन ने अजंता की महत्ता पर बल दिया तथा उनके संरक्षण की ओर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता प्रतिपादित की। फर्ग्युसन की अपील से प्रेरित होकर ईस्ट इंडिया कंपनी के संचालकमंडल ने भारत सरकार से अजंता एवं अन्य शैलगृहों के चित्रों की प्रतिलिपियां कराने तथा और अधिक विनाश से उनकी रक्षा के लिए आवश्यक उपाय करने की सिफारिश की जिसके फलस्वरूप 1845 में मद्रास आर्मी के कप्तान राबर्ट गिल को चित्रों की प्रतिलिपि बनाने के लिए नियुक्त किया गया और कई वर्षों तक श्रम करके उसने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक चित्रों की अतिसुंदर तेलप्रतिलिपियां बना कर इंग्लैंड भेजीं। इनमें से पांच को छोड़कर सभी चित्र क्रिस्टल पैलेस कंपनी, सिडेनहम द्वारा 1866 में आयोजित एक प्रदर्शनी में आग लग जाने के कारण नष्ट हो गए। गिल ने इन प्रतिलिपियों के फोटोग्राफ 'राक टेंपल्स ग्राफ अजंता ऐंड एलोरा' (1862) तथा 'वन हंड्रेड स्टीरियोस्कोपिक इलस्ट्रेशंस आफ आर्किटेक्चर ऐंड नैचुरल हिस्ट्री' (1864) नामक पुस्तकों में प्रकाशित किए। इस विनाशकारी घटना के पूर्व गिल की कई प्रतिलिपियों के रेखाचित्र जिओस्कार्फ ने तैयार किए थे तथा उन्हें श्रीमती स्पिअर ने अपनी पुस्तक 'लाइफ इन ऐंशिएंट इंडिया' में प्रकाशित किया। गिल की पांच प्रतिलिपियां प्रदर्शित नहीं की गई थीं, फलस्वरूप वे बच गईं और भारतीय संग्रहालय, दक्षिण कैनसिंग्टन को भेज दी गईं। इसके पश्चात भी गिल ने अजंता शैली की चित्रकारी का काम अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व तक जारी रखा। फर्ग्युसन के सुझाव पर बंबई राज्य की सरकार ने बंबई के सुविख्यात सर जमशेदजी जीजाभाई स्कूल आफ आर्ट के जान ग्रिफिथ्स को अजंता के चित्रों की प्रतिलिपियां तैयार करने के लिए नियुक्त किया। ग्रिफिथ्स के निर्देशन में उसके शिष्यों ने अजंता के अनेक चित्रों की प्रतिलिपियां तैयार कीं। यह कार्य 1872 से 1885 तक चलता रहा। किंतु दुर्भाग्य ने पुनः इन प्रतिलिपियों का पीछा किया और 1885 में साउथ कैनसिंग्टन म्यूजियम, लंदन में लगी एक आग में ग्रिफिथ्स द्वारा तैयार की हुई एक सौ पच्चीस प्रतिलिपियों में से सत्तासी भस्मसात हो गईं। बची हुई प्रतिलिपियां 1896 में उसने अपनी 'दि पेंटिंग्स इन दि बुद्धिस्ट कैव टेंपल्स आफ अजंता' के दो खंडों में प्रकाशित कीं। पूर्ववर्ती किसी भी अन्य लेखक की तुलना में ग्रिफिथ्स को विश्वकला के इतिहास में अजंता के चित्रों का महत्व प्रतिपादित करने तथा कलामर्मज्ञों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट करने में कहीं अधिक सफलता प्राप्त हुई। इस बीच फर्ग्युसन और बर्जेस ने अजंता की वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रों तथा अभिलेखों का व्यवस्थित रूप से अध्ययन किया और अपने 'दि कैव टेंपल्स आफ इंडिया' नामक ग्रंथ (1880) में उनकी सविस्तार चर्चा की।[31] 1909-1911 में लेडी हरिंघम ने कुछ भारतीय विद्यार्थियों[32] की सहायता से जल-रंग में कुछ भित्तिचित्रों की प्रतिलिपियां तैयार कीं जिन्हें इंडिया सोसाइटी ने 'अजंता फ्रेस्कोज' नाम से 1915 में प्रकाशित किया। अजंता के महत्व को ध्यान में रखते हुए भूतपूर्व हैदराबाद राज्य के पुरातत्व विभाग ने 1915 में सईद अहमद को चित्रों की प्रतिलिपियां तैयार करने का काम सौंपा और साथ ही इन चित्रों के रंगीन फोटोग्राफ खिंचवाए। इस सामग्री के आधार पर गुलाम याजदानी ने 'अजंता' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ (1930-35) चार विशालकाय खंडों में प्रकाशित किया। हैदराबाद सरकार ने इन चित्रों की सफाई और संरक्षण की दृष्टि से भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। 1954 में मदनजीतसिंह ने यूनेस्को की सहायता से अजंता के चित्रों का एक अलबम प्रकाशित किया।[33] 1965 में मदनजीतसिंह ने 'दि पेंटिंग्स आफ अजंता' नाम से इस विषय पर एक अन्य ग्रंथ प्रकाशित किया। हैदराबाद राज्य के भारत में विलय के पश्चात भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने 1956-57 में इन चित्रों की यथातथ्य प्रतिलिपियां तैयार करने की एक योजना हाथ में ली तथा इन गुफाओं के संरक्षण एवं यात्रियों की सुविधा की दृष्टि से अन्य अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। भारतीय पुरातत्व संर्वेक्षण ने 1967 में 'अजंता म्यूरल्स' शीर्षक से एक महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किया जिसमें अमलानंद घोष, इंग्रिड आल, म० न० देशपांडे तथा बी० बी० लाल ने अजंता से संबद्ध विभिन्न विषयों की सारगर्भित चर्चा की। इसके अतिरिक्त अजंता पर इस बीच अन्य अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनकी संख्या बहुत बड़ी है। अजंता के प्रति हमारे दृष्टिकोण में भी इस बीच कुछ अधिक व्यापकता आई। अभी तक इस ओर विद्वान केवल कलात्मक एवं धार्मिक दृष्टि से देखते थे। किंतु शीघ्र ही यह अनुभव किया जाने लगा कि कला अपने समसामयिक जीवन को प्रतिफलित करती है और परिणामतः किसी कालविशेष के जीवन का वास्तविक वैविध्यपूर्ण रूप तत्कालीन कला के माध्यम से जाना जा सकता है। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय कला का अनुशीलन अभी कुछ समय पूर्व ही आरंभ हुआ है तथा शिल्प एवं चित्रों के कुछ सांस्कृतिक अध्ययन विगत वर्षों में प्रकाशित हुए हैं। अजंता के चित्रों ने भी इस दृष्टि से विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। के० डी० बी० कौड्रिंग्टन[34] एवं म० के० ढवलीकर[35] ने हाल ही में अजंता के भित्तिचित्रों के आधार पर समकालीन भारतीय जीवन के विविध पहलुओं की रूपरेखा प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास किया है।

अभी तक हमने अजंता के शोध के पश्चात पिछली डेढ़ शताब्दी में अजंता के विषय में विविध विद्वानों एवं संस्थाओं द्वारा किए गए महत्वपूर्ण कार्य की संक्षिप्त चर्चा की है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि अजंता के विषय में आज तक जितना लिखा गया है उतना संभवतः अन्य किसी भी प्राचीन भारतीय स्मारक पर नहीं लिखा गया। इस कार्य के परिणामस्वरूप विश्व के कलाप्रेमियों का ध्यान अजंता की ओर आकर्षित हुआ तथा इस कलानिधि के संरक्षण की आवश्यकता अनुभूत की जाने लगी। आज अजंता के चित्रों को विश्वकला में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका है तथा अजंता की चर्चा के बिना चित्रकला का इतिहास आज पूर्ण नहीं माना जा सकता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संदर्भ

1 पर्वत में काटकर बनाई हुई गुफाओं के लिए प्राचीन प्राकृत अभिलेखों में सैलघर शब्द का प्रयोग किया गया है जो संस्कृत शैलगृह का प्राकृत रूप है शैलगृह शब्द का प्रयोग 26वीं गुफा के एक लेख में प्राप्त होता है.

2. शिशुपालवध, 4. 17.

3 शब्दजलाश्रयादिभिः मनोनुकूलेन न तु
चक्षुपीडने गुहानिवासाश्रयणे प्रयोजयेत् ।
—श्वेताश्वतर उपनिषद्, 2. 10.

4. वही, पृ० 286, श्लो० 23.

5 एस० बील : चाइनीज अकाउंट्स आफ इंडिया, खं० 4, पृ० 450-51. यहां दिया हुआ अनुवाद ठाकुरप्रसाद शर्मा (सुरेश) के अनुवाद (हुएन सांग का भारत-भ्रमण, इलाहाबाद, 1929, पृ० 615-18) से कुछ भिन्न है थामस वाटर्स का अनुवाद (आन युआन च्वांग्स ट्रैवल्स इन इंडिया, खंड 2, पृ० 240-41) कुछ संक्षिप्त और भिन्न है. जिस घटना के कारण प्रचलित किंवदंती के अनुसार स्थविर अचल ने यह संघाराम बनवाया था उसकी ओर वाटर्स ने संकेत मात्र किया है.

बील यह संभावना व्यक्त करते हैं कि शिलोच्चय पर टिका हुआ एक निर्मित (ऽt uctural) भवन था, जिसमें एक विशालतर दगोबा (धातुगर्भ अथवा स्तूप) रहा होगा, भले ही उसका आकार ह्वेन त्सांग द्वारा वर्णित आकार जितना न रहा हो किंतु यह अधिक संभव है कि यह रिपोर्ट शिलाओं को काटकर बनाए गए चैत्यगृह (गुफा क्र० 26) का ही अतिरंजित विवरण है.

6 इस लेख के विवरण के लिए षष्ठ अध्याय द्रष्टव्य है

7. कुछ लोगों का यह अनुमान है कि ह्वेन त्सांग का वर्णन मात्र गुफा क्र०26 का है और मूलतया इस गुफा के द्वार पर भी दो शैल हाथी निर्मित रहे होंगे.

8. जेम्स फर्ग्युसन और जेम्स बर्जेस : दि कैव टेंपल्स आफ इंडिया, पृ० 282; अमलानंद घोष (संपादक) : अजंता म्यूरल्स, पृ० 1.

9. हुई ली ने न केवल पुलकेशी के राज्य की पूर्वी सीमा पर स्थित अजंता के शैलगृहों की ही चर्चा नहीं की है अपितु उसने ह्वेन त्सांग द्वारा किए गए महाराष्ट्र के वर्णन का उल्लेख भी अत्यंत संक्षेप में किया है. उसने प्रसंगवश केवल यह सामान्य निर्देश किया है कि पुलकेशी के राज्य में सौ संघाराम थे जिनमें 5,000 भिक्षु रहते थे. ह्वेन त्सांग के भड़ौच पहुंचने की भी उसने केवल प्रसंगवश संक्षिप्त चर्चा की है द्रष्टव्य—एस० बील : दि लाइफ आफ ह्वेन त्सांग बाइ शर्मन हुई ली, पृ० 146-47.

10 थामस वाटर्स : पूर्वोक्त, खंड 2, पृ० 240 41.

11. इन शैलगृहों की चर्चा सर्वप्रथम मद्रास एस्टेब्लिशमेंट के कपतान मोरागन की सूचना के आधार पर विलियम एर्स्किन ने बांबे लिटरेरी सोसाइटी के समक्ष 1922 में पढ़े गए एक निबंध में की थी. देखिए—ट्रांजेक्शंस आफ दि बांबे लिटरेरी सोसाइटी, खं० 3, पृ० 520; फर्ग्युसन और बर्जेस; पूर्वोक्त, पृ० 280-81.

12. म० के० ढवलीकर : न्यू इस्क्रिपशंस फ्राम अजंटा,' आर्स ओरिएंटलिस, खं० 7, पृ० 152.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

13. शलगृहों से अजंता ग्राम की सीधी दूरी केवल पांच किलोमीटर है.
14. अजंता का उल्लेख कहीं कहीं अजंटा नाम से भी किया हुआ मिलता है. इन गुफाओं को इनमें पाए जाने वाले चित्रों के कारण स्थानीय लोग रंगीत लेणी भी कहते हैं.
15. प्राचीन लेखों में गुफाओं के लिए लेण (संस्कृत लयन) शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है और मराठी में यह शब्द आज भी इसी अर्थ में प्रचलित है.
16. अमलानंद घोष (संपादक) : पूर्वोक्त, पृ० 14.
17. इस प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण भी उपलब्ध हैं. उदाहरणार्थ, अशोक के बैराट शिलालेख का पता चलाने वाले कैप्टन बर्ट के इस कथन के आधार पर कि बैराट से भाब्रा गांव छः कोस दूर है यह अभिलेख साधारणतः भाब्रा शिलालेख के नाम से प्रसिद्ध है जबकि वास्तव में यह लेख बैराट में प्राप्त हुआ था और इसका सही नाम बैराट शिलालेख है, द्रष्टव्य—ई० हुल्श : इंस्क्रिप्शंस आफ अशोक, भूमिका, पृ० 25.
18. जर्नल आफ दि यू० पी० हिस्टारिकल सोसाइटी, खंड 15, अंक 2 (1942), पृ० 27 और 35.
19. म० न० देशपांडे : अजंता म्यूरल्स (संपादक अमलानंद घोष), पृ० 15, टि० 3.
20. आर्किओलाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इंडिया, खं० 4, पृ० 99.
21. वही.
22. वासुदेव विष्णु मिराशी : शिलाहार राजवंशाचा इतिहास आणि कोरीव लेख, पृ० 230.
23. इंडियन ऐंटिक्वेरी, खं० 9, पृ० 295.
24. मिराशी : शिलाहार राजवंशाचा इतिहास आणि कोरीव लेख, पृ० 230.
25. एपिग्राफिया इंडिका, खं० 22, पृ० 108.
26. मोतीचंद्र : सार्थवाह, पृ० 25, 116 तथा प्राचीन मार्गदर्शक मानचित्र.
27. अभिलेखों के लिए पुस्तक का छठा अध्याय द्रष्टव्य है.
28. ट्रांजेक्शंस आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयरलैंड, खं० 2, पृ० 362.
29. जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बैंगाल, ख० 5, पृ० 560.
30. जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयरलैंड, खं० 7 पृ० 30-92.
31. इसके अतिरिक्त फर्ग्युसन : इलस्ट्रेशंस आफ दि राक कट टेंपल्स आफ इंडिया (1845); बर्जेस और भगवानलाल इंद्रजी : इंस्क्रिप्शंस फ्राम दि कैव टेंपल्स आफ वेस्टर्न इंडिया (1881) तथा बर्जेस : रिपोर्ट आन दि बुद्धिस्ट कैव टेंपल्स ऐंड दियर इंस्क्रिप्शंस (1823) भी उल्लेखनीय हैं.
32. ये भारतीय विद्यार्थी थे सईद अहमद, मुहम्मद फजलुउद्दीन, नंदलाल बोस, असित कुमार हालदार तथा समरेंद्रनाथ गुप्त जिन्हें आगे चलकर चित्रकार के रूप में बहुत ख्याति मिली
33. इंडिया—पेंटिंग्स फ्राम अजंता कैव्स.
34 इंडियन ऐंटिक्वेरी, खं० 59, पृ० 159-62 तथा 169-72.
35. अजंता—ए कल्चरल स्टडी.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

2

ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि

जिस प्रदेश में अजंता स्थित है उसका प्राचीन नाम संभवतः अश्मक था। इसका प्राचीनतम उल्लेख पाणिनि (ई० पू० 5वीं शताब्दी) की 'अष्टाध्यायी' (4.1.171) में मिलता है। कार्तकौजपादिगण (6.2.37) के अंतर्गत गणपाठ में भी पाणिनि ने अश्मक का उल्लेख किया है। दो पड़ोसी जनपदों के नामों के जोड़े लोक-भाषा में प्रचलित थे तथा इस पद्धति का अनुसरण करते हुए अवंति और अश्मक का निर्देश 'अवंत्यश्मक' शब्द से किया जाता था।[1] बौद्ध ग्रंथ 'अंगुत्तरनिकाय' ई० पू० छठी शताब्दी में भारत का एक बड़ा भूभाग जिन सोलह महाजनपदों में विभक्त था उनमें अस्सक (संस्कृत अश्मक) का भी समावेश था।[2] 'सुत्तनिपात' के अनुसार अस्सक जनपद भगवान बुद्ध के जीवनकाल में गोदावरी नदी के तट के आसपास बसा हुआ था। 'अस्सक जातक' और 'चुल्लकालिंग' जातक में अस्सक और कलिंग जनपदों के बीच युद्ध की चर्चा मिलती है। अश्मक की स्थिति के विषय में आधुनिक विद्वानों में मतभेद है किंतु 'शोणनंद जातक' में हम अश्मक को अवंति के साथ संबद्ध पाते हैं और इन दोनों का उल्लेख 'अस्सकावंती' नाम से उपलब्ध होता है।

हम ऊपर देख चुके हैं कि इन दोनों प्रदेशों का संयुक्त निर्देश पाणिनि के समय भी प्रचलित था। इससे यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि अश्मक की सीमा उस समय अवंति की दक्षिणी सीमा से सटी हुई थी तथा उसमें गोदावरी नदी के तटवर्ती प्रदेश से लेकर अवंति के दक्षिण का संपूर्ण प्रदेश सम्मिलित था।[3] इस प्रकार यद्यपि व्यापक अर्थ में अश्मक में एक बहुत बड़ा भूभाग अंतर्भूत था तथापि संकीर्ण अर्थ में अश्मक गोदावरी के दक्षिणी तटवर्ती प्रदेश का नाम था और उसकी राजधानी पोतन अथवा पोदन (वर्तमान बोधन, भूतपूर्व हैदराबाद राज्य) थी। गोदावरी का उत्तर तटवर्ती प्रदेश मूलक नाम से जाना जाता था तथा उसकी राजधानी प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठण, औरंगाबाद जिला, महाराष्ट्र) थी। मूलक का प्राचीनतम उल्लेख सातवाहन नरेश वासिष्ठी पुत्र पुलुमावि के राजत्वकाल के 19वें वर्ष में उत्कीर्ण एक नासिक गुहालेख में दृष्टिगोचर होता है।[4] इससे प्रतीत होता है कि सातवाहन काल में मूलक को एक प्रशासनिक इकाई के रूप में महत्ता प्राप्त हुई। इस संकीर्ण अर्थ में अजंता को मूलक प्रदेश में स्थित माना जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पाणिनि के उल्लेख तथा बौद्ध वाङ्मय में सोलह महाजनपदों की सूची में अश्मक के समावेश से भगवान बुद्ध के जीवनकाल में भारत के राजनीतिक मानचित्र में अश्मक को कितना अधिक महत्व प्राप्त था इसकी कल्पना सरलता से की जा सकती है। स्मरणीय है कि इन महाजनपदों में मगध, कोसल, वत्स और अवंति जैसे राज्यों का भी समावेश था जिन्होंने समकालीन भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण योगदान किया था। इसके पश्चात दीर्घकाल तक इस प्रदेश के इतिहास के विषय में कोई भी महत्वपूर्ण जानकारी नहीं मिलती।

ई० पू० चौथी शताब्दी के प्रारंभ में मगध में नंद वंश सत्तारूढ़ हुआ। लोकप्रिय न होते हुए भी यह वंश बड़ा शक्तिशाली एवं वैभवसंपन्न था तथा इस वंश के राजाओं ने सुदूरवर्ती प्रदेशों को जीतकर अपने राज्य में समाविष्ट किया। पुराणों के अनुसार इस वंश के प्रथम राजा महापद्म ने समस्त क्षत्रियों का विनाश कर एकराट का पद प्राप्त किया था। जैन और बौद्ध परंपराओं से भी नंद वंश की महती शक्ति और विशाल साम्राज्य की सूचना मिलती है। खारवेल के हाथीगुंफा लेख से विदित होता है कि कलिंग नंद साम्राज्य का एक भाग बन गया था। कर्णाटक में प्राप्त कुछ प्राचीन अभिलेखों से विदित होता है कि कुंतल प्रदेश (महाराष्ट्र का दक्षिणी भाग और कर्णाटक का उत्तर-पश्चिमी भाग) भी नंदों के अधिकार में था। इससे तथा महाराष्ट्र के नांदेड जिले में 'नव नंद देहरा' नामक नगर के अस्तित्व से यह स्पष्ट है कि अश्मक और मूलक का भूभाग नंद साम्राज्य में अंतर्भूत था।

ई० पू० 324 के आसपास नंद वंश का अंत कर कौटिल्य की सहायता से चंद्रगुप्त मौर्य ने एक नवीन साम्राज्य की स्थापना की। उसका साम्राज्य बहुत विस्तृत था तथा उसमें सुदूर दक्षिण के कुछ प्रदेश तथा कलिंग को छोड़कर आधुनिक भारत, बंगलादेश तथा पाकिस्तान का संपूर्ण प्रदेश तथा अफगानिस्तान का एक बड़ा भाग समाविष्ट था। प्राचीन तमिल कवि मामुलनार के अनुसार प्राचीनकाल में प्रारंभिक मौर्यों ने दक्षिण पर आक्रमण किया था और इस अभियान के दौरान वे अपनी विशाल सेना के साथ तिरुनेल्वेली जिले में स्थित पोडियिल पर्वत तक पहुंच गए थे। जैन परंपरा के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य के राजत्वकाल के अंतिम भाग में बारह वर्षों का भयानक अकाल पड़ा जिससे बचाव के लिए जैन आचार्य भद्रबाहु के नेतृत्व में जैनों का एक बहुत बड़ा समुदाय कर्णाटक चला गया। इस समुदाय में चंद्रगुप्त मौर्य भी था। कुछ परवर्ती जैन ग्रंथों तथा अत्यंत उत्तरकालीन अभिलेखों के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य ने सुप्रसिद्ध जैन तीर्थ श्रवणबेलगोला में संल्लेखना विधि से प्राण त्यागे थे। कुछ स्थानीय अभिलेखों में चंद्रगुप्त और भद्रबाहु के एक साथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहने का उल्लेख है। जिस पर्वत पर चंद्रगुप्त ने निवास किया था वह इन लेखों में चंद्रगिरि नाम से उल्लिखित है तथा आज भी वह इसी नाम से प्रसिद्ध है। परंपरा के अनुसार इस पर्वत पर चंद्रगुप्त ने 'चंद्रगुप्त बसदि' नामक एक मंदिर का निर्माण कराया था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अश्मक-मूलक प्रदेश चंद्रगुप्त के राज्यकाल में मौर्य साम्राज्य का एक अभिन्न अंग था।

चंद्रगुप्त के पश्चात उसका पुत्र बिंदुसार सिंहासनारूढ़ हुआ, किंतु उसके राजत्वकाल के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। उसका पुत्र अशोक मौर्य वंश का सर्वश्रेष्ठ सम्राट था। उसने न केवल अपने पितामह से प्राप्त विशाल साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखा अपितु कलिंग का प्रदेश जीतकर उसका विस्तार भी किया।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, प्राचीन जैन परंपराओं के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य जैन धर्मावलंबी था। बिंदुसार किस धर्म का अनुयायी था, कहना कठिन है। अशोक का प्रारंभिक धर्म क्या था, यह जानने का भी कोई साधन नहीं है। किंतु कलिंग युद्ध में हुई विशाल प्राणहानि ने उसके मन को बड़ा प्रभावित किया और मानसिक शांति के लिए उसने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया तथा अपने इस नवीन धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए उसने अथक प्रयास किए। इस उद्देश्य से उसने सभी उपलब्ध साधनों एवं राज्यतंत्र का पूरा पूरा उपयोग किया। बैराट शिला-लेख में हम उसे बौद्ध धर्म और संघ इस त्रिरत्न का अभिवादन कर संघ का कुशल समाचार पूछते तथा यह कहते हुए पाते हैं कि भगवान बुद्ध ने जो कुछ कहा है वह सब सुभाषित है। इसी लेख में उसने धर्म को चिरस्थाई बनाने के उद्देश्य से भिक्षुओं और भिक्षुणियों तथा उपासकों और उपासिकाओं के पुनः पुनः श्रवण और मनन के लिए कुछ धर्म ग्रंथों की सिफारिश भी की है। सारनाथ, कौशांबी एवं सांची स्तंभलेखों में उसने संघ में भेद के निराकरण के उद्देश्य से भिक्षुओं और भिक्षु-णिओं को कुछ महत्वपूर्ण निर्देश दिए हैं। उसने शाक्यमुनि बुद्ध के जन्म स्थान लुंबिनीग्राम की यात्रा की तथा निगाली सागर में कनकमुनि नामक पूर्वबुद्ध के स्तूप का जीर्णोद्धार किया। बौद्ध परंपरा के अनुसार उसने भगवान बुद्ध के शरीरा-वशेषों पर चौरासी हजार स्तूपों का निर्माण कराया था। उसके एक गौण शिला-लेख में बुद्ध के शरीरावशेषों को स्तूप में प्रविष्ट कराने का उल्लेख पाया जाता है। उसने परंपरागत विहार यात्रा बंद कर उसके स्थान पर धर्मयात्रा प्रारंभ की और हिंसापूर्ण समाज (उत्सव) का स्थान धर्मप्रचार के लिए उपयोगी एक नवीन प्रकार के समाज को दिया। प्रजाजनों की धर्मवृद्धि के उद्देश्य से उसने धर्ममहामात्रों की नियुक्ति की तथा अनेक लोकोपकारी कार्य किए। उसके राजत्वकाल के 18वें वर्ष में राजधानी पाटलिपुत्र में मोग्गलिपुत्र तिस्स की अध्यक्षता में आयोजित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तृतीय बौद्ध संगीति बौद्ध धर्म के प्रसार हेतु उसके द्वारा किए गए कार्यों की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस संगीति में बुद्धवचनों की व्याख्या के संबंध में उत्पन्न हुए विवादों का निराकरण किया गया तथा धर्मप्रचार के लिए विद्वान भिक्षुओं को सुदूर प्रदेशों में भेजने का निर्णय किया गया। जिन प्रदेशों में ये दूत भेजे गए थे उनमें अपरांतक (उत्तरी कोंकण) तथा महाराष्ट्र का भी समावेश है। इन प्रदेशों में यथाक्रम यवन धर्मरक्षित तथा महाधर्मरक्षित के भेजे जाने का उल्लेख है। अशोक के शिलालेख विदर्भ में चांदा जिले के देवटेक तथा अपरातंक अथवा कोंकण में सोपारा और आंध्रप्रदेश तथा कर्णाटक में अनेक स्थलों पर पाए गए हैं। इन सब तथ्यों से स्पष्ट सूचित होता है कि यद्यपि पूर्ववर्ती काल में मराठवाड़ा बौद्ध धर्म से अपरिचित नहीं था तथापि मौर्य साम्राज्य के अन्य प्रदेशों की भांति इस भाग में भी बड़े पैमाने पर बौद्ध धर्म के प्रसार एवं लोकप्रियता का श्रेय मुख्यतः अशोक को है। अशोक द्वारा बोया हुआ बीज कुछ ही समय में बड़े वेग से प्रस्फुटित हुआ और उसका फल हमें पश्चिमी भारत में सह्याद्रि में काट कर खोदी गई गुहाओं के रूप में दृष्टिगत होता है।

अशोक के उत्तराधिकारी दुर्बल थे और बौद्ध धर्म के प्रति उनके मन में कोई उत्साह नहीं था। इसके विपरीत उपलब्ध प्रमाणों से पता चलता है कि अशोक के पौत्र दशरथ ने आजीवक संप्रदाय को आश्रय दिया तथा संप्रति को जैन धर्म के इतिहास में वही स्थान प्राप्त है जो अशोक को बौद्ध धर्म के इतिहास में। अशोक के दुर्बल उत्तराधिकारी अधिक समय तक मौर्य साम्राज्य को अक्षुण्ण नहीं रख सके। उत्तरी सीमांत पर बल्ख के यवन नरेशों ने आक्रमण कर एक बड़े सीमावर्ती प्रदेश पर अधिकार कर लिया और अन्य प्रदेशों में भी अनेक छोटे-बड़े स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ। अंततः ई० पू० 185 के लगभग अंतिम मौर्य राजा बृहद्रथ को उसकी सेना के सामने मार कर सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने एक नवीन राजवंश की नींव डाली।

पुष्यमित्र वैदिक धर्मावलंबी था तथा उसने दो अश्वमेध यज्ञ किए जो उसके राजत्वकाल में वैदिक धर्म के पुनरुज्जीवन के परिचायक हैं। उसके राज्य में उत्तर भारत का एक बड़ा भाग समाविष्ट था किंतु दक्षिण का अधिकांश मौर्य वंश का अंत होने के पूर्व ही साम्राज्य से पृथक हो चुका था। विदर्भ को पुष्यमित्र के राज्य की दक्षिणी सीमा माना जा सकता है। पुष्यमित्र के उत्तराधिकारियों की सत्ता मध्य भारत तक ही सीमित रह गई थी और विदिशा तथा भरहुत उनके राज्य के प्रमुख केंद्र थे। अंतिम शुंग राजा देवभूति अथवा देवभूमि की हत्या कर उसके मंत्री वसुदेव काण्व ने ई० पू० 75 के आसपास सत्ता हथिया ली। काण्व वंश का राज्य भी मध्य भारत में ही सीमित प्रतीत होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुराणों के अनुसार अंतिम काण्व नृपति सुशर्मा का उन्मूलन कर आंध्रजातीय राजा सिमुक ने अपने वंश की सत्ता स्थापित की। अभिलेखों में इस वंश का नाम सातवाहन कुल (अथवा सादवाहन कुल) पाया जाता है। सातवाहन सत्ता का प्रारंभ कब हुआ, इस विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार अशोक के निधन के कुछ समय पश्चात ई० पू० तृतीय शताब्दी के अंतिम चरण अथवा ई० पू० द्वितीय शताब्दी के पूर्वार्ध में सातवाहन वंश की सत्ता स्थापित हुई जबकि अन्य इतिहासकार यह मानते हैं कि सातवाहनों ने ई० पू० प्रथम शताब्दी के मध्य अथवा उत्तरार्ध में राज्य करना आरंभ किया। यह विवाद पुराणों में पाए जाने वाले परस्पर विरोधी कथनों पर आधारित है। इस प्रकार 'वायु', 'ब्रह्मांड', 'भागवत' तथा 'विष्णु' पुराणों में यह कहा गया है कि इस वंश में तीस राजा हुए, किंतु उनमें दिए गए नामों की वास्तविक संख्या सत्रह और पच्चीस के बीच में है। इसके विपरीत 'मत्स्य पुराण' में राजाओं की कुल संख्या उन्नीस बताई गई है, किंतु उसकी कुछ पांडुलिपियों में वस्तुतः तीस नाम दिए गए हैं जबकि अन्य पांडुलिपियों में नामों की संख्या इक्कीस और अट्ठाइस के मध्य में है। इन राजाओं के कुल राजत्वकाल के बारे में भी इसी प्रकार पारस्परिक विरोध दृष्टिगत होता है। अधिकांश पुराणों में आंध्र राजाओं का कुल राज्यकाल चार शताब्दियों से अधिक बताया गया है, यद्यपि उनमें उपलब्ध वास्तविक संख्याओं के बीच कुछ वर्षों का अंतर पाया जाता है। 'वायु पुराण' में उल्लिखित एक अन्य परंपरा के अनुसार आंध्रों ने तीन सौ वर्ष राज्य किया। इसके विपरीत 'मत्स्य पुराण' के अनुसार विभिन्न राजाओं के राजत्वकाल का योग 448½ वर्ष तथा 'वायु पुराण' के अनुसार 272½ आता है। इससे स्पष्ट है कि राजाओं की संख्या तथा उनके कुल राज्यकाल के विषय में पौराणिक काल में दो परंपराएं प्रचलित थीं। एक परंपरा के अनुसार कुल मिलाकर तीस राजा थे जिन्होंने कुल मिला कर चार शताब्दियों से कुछ अधिक राज्य किया और दूसरी परंपरा के अनुसार राजाओं की कुल संख्या उन्नीस के आसपास थी तथा उनका कुल राज्यकाल तीन शताब्दी अथवा उससे कुछ कम था। इस विषय में विद्वान एकमत हैं कि सातवाहन राज्य का अंत ईस्वी तृतीय शताब्दी के प्रारंभ में हुआ। अतः प्रथम परंपरा के अनुयायी सातवाहनों की राजसत्ता का आरंभ ई० पू० तृतीय शतक के अंत अथवा द्वितीय शतक के प्रारंभ में मानते हैं और दूसरी परंपरा के अनुगामी ई० पू० प्रथम शताब्दी के मध्य के आसपास। किंतु जहां एक ओर राजाओं की संख्या और उनके कुल राज्यकाल के विषय में पुराणों में परस्पर विरोधी परंपराएं उपलब्ध होती हैं वहां इस विषय में सभी पुराण एकमत हैं कि प्रथम आंध्र-सातवाहन राजा सिमुक ने अंतिम काण्वायन नरेश सुशर्मा को उन्मूलित कर राज्य प्राप्त किया। इस सर्वसम्मत परंपरा पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधारित होने के कारण सातवाहन राज्य के आरंभकाल के विषय में द्वितीय मत (ई० पू० प्रथम शताब्दी का मध्य भाग) अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। अन्य साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से भी इस मत की पुष्टि होती है।[6]

सातवाहन वंश के विषय में कुछ जानकारी इस वंश के विभिन्न राजाओं एवं कुछ समकालीन राजवंशों के अभिलेखों तथा कथा-वाङ्मय से प्राप्त होती है। सिमुक के पश्चात उसका भाई कृष्ण और कृष्ण के पश्चात उसका पुत्र प्रथम सातकर्णि गद्दी पर बैठा। कृष्ण के काल का केवल एक छोटा अभिलेख नासिक से प्राप्त हुआ है। सातकर्णि प्रथम अत्यंत प्रतापशाली राजा था। उसके समय के अभिलेखों तथा सिक्कों के प्राप्तिस्थानों से विदित होता है कि उसके राज्य में प्रायः संपूर्ण महाराष्ट्र और उससे लगा हुआ मध्यप्रदेश का एक बड़ा भाग अंतर्भूत था। आंध्रप्रदेश का विस्तृत भूभाग भी उसके राज्य का अभिन्न अंग था। उसने संभवतः 'दक्षिणापथपति' की उपाधि धारण की थी। उसकी पत्नी नागनिका बड़ी धर्मपरायणा थी तथा नाणेघाट अभिलेख के अनुसार अपने पति के साथ उसने अनेक वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान किया था।[7] सातकर्णि को हाथीगुंफा अभिलेख के अनुसार कलिंगनरेश खारवेल के हाथों पराजय का सामना करना पड़ा था। किंतु खारवेल का आक्रमण धावा मात्र था, एक क्षणिक झंझावात की भांति आया और चला गया तथा सातकर्णि के राज्य पर उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

सातकर्णि के उत्तराधिकारी दुर्बल थे और वे पूर्वजों से प्राप्त विशाल साम्राज्य की अक्षुण्णता बनाए रखने में असमर्थ थे। इसी बीच उत्तर भारत से विदेशी शकों की एक शाखा पश्चिम भारत आई और सातवाहन नरेशों की दुर्बलता का लाभ उठाकर ईस्वी प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध में उसने महाराष्ट्र, गुजरात तथा मध्य प्रदेश के मालवा के भूभाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। शक महाक्षत्रप नहपान के अनेक अभिलेख महाराष्ट्र की बौद्ध गुफाओं में उत्कीर्ण हैं तथा उसके और उसके पूर्वज भूमक के सिक्के बड़ी संख्या में उपर्युक्त विस्तृत भूभाग से प्राप्त हुए हैं। द्वितीय शताब्दी के प्रारंभ तक लगभग यही स्थिति बनी रही और इस काल में सातवाहन शक्ति अत्यंत अवनत अवस्था में थी। इस समय सातवाहन कुल में गौतमीपुत्र सातकर्णि का आविर्भाव हुआ। वह अपने वंश का सबसे प्रतापशाली राजा था। उसने नहपान को पराजित कर अपने वंश का खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त किया तथा सातवाहन कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाई। एक अभिलेख में असिक, अश्मक, मूलक, सुराष्ट्र, कुकुर, अपरांत, अनूप, विदर्भ, आकर (पूर्वी मालवा) तथा अवंति (पश्चिमी मालवा) जनपदों एवं विंध्य, ऋक्षववान (सतपुड़ा), पारियात्र (अरावली), सह्य (पश्चिमी घाट), कृष्णगिरि (कान्हेरी), मलय (नीलगिरि), महेंद्र (पूर्वी घाट), इत्यादि पर्वतों के उसके राज्य में समावेश का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लेख मिलता है। वहां कहा गया है कि उसके घोड़ों ने तीन समुद्रों का जल पिया था, समस्त मांडलिक उसके चरणों का अभिवादन करते थे तथा उसने अनेक युद्धों में शत्रुसंघों को पराजित किया और शकों, यवनों और पहलवों का उन्मूलन किया था। इस विवरण से स्पष्ट है कि वह दक्षिणापथ का अपने समय का सबसे शक्तिशाली राजा था तथा उसके राज्य में महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, गुजरात और मध्यप्रदेश के काफी बड़े भाग का अंतर्भाव था। उसके उत्तराधिकारियों में उसके पुत्र वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि, वासिष्ठीपुत्र सातकर्णि और गौतमीपुत्र यज्ञ सातकर्णि पर्याप्त शक्तिशाली थे और उनका राज्य काफी विस्तृत था। किंतु शक महाक्षत्रप रुद्रदामा के जूनागढ़ शिलाशेख से ज्ञात होता है कि उसने युद्ध में दक्षिणापथपति सातकर्णि को दो बार पराजित किया, किंतु संबंध की निकटता के कारण उसने उसका उन्मूलन नहीं किया। यह सातकर्णि वासिष्ठीपुत्र सातकर्णि से अभिन्न प्रतीत होता है। इस विजय के फलस्वरूप मालवा और गुजरात प्रदेश सातवाहनों के हाथ से निकलकर शकों के अधिकार में चले गए और सातवाहन राज्य महाराष्ट्र तथा आंध्रप्रदेश तक सीमित रह गया। इस वंश का अंतिम राजा चतुर्थ पुलुमावि था, जिसका राजत्वकाल ईस्वी 225 के लगभग समाप्त हुआ।

शुंगों और काण्वयानों की भांति सातवाहन भी वैदिक धर्मावलंबी थे। नाणेघाट लेख से विदित होता है कि सातकर्णि और उसकी रानी नागनिका ने अनेक बहुदक्षिण श्रोत यज्ञों का अनुष्ठान किया था। कृष्ण, स्कंदस्वाति, शिवस्वाति, शिवश्री, शिवस्कंद और यज्ञश्री जैसे नामों, से भी वैदिक धर्म के प्रति उनकी प्रगाढ़ निष्ठा सूचित होती है। इसका समर्थन वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि के 19वें वर्ष के नासिक अभिलेख से भी होता है। इस लेख में उसके पिता गौतमीपुत्र सातकर्णि को एक ब्राह्मण कहा गया है और उसकी तुलना राम, केशव, अर्जुन, भीमसेन, नाभाग, नहुष, जनमेजय, सगर, ययाति, अंबरीष इत्यादि पौराणिक वीरों से की गई है तथा उसे वर्णसंकर के निवारण का श्रेय दिया गया है। किंतु वे धर्मांधता से कोसों दूर थे तथा उनके शासनकाल में अन्य धर्मों, विशेषत: बौद्ध धर्म को भी उन्नति का अवसर मिला। वे न केवल परधर्मसहिष्णु थे, अपितु उन्होंने स्वयं बौद्ध धर्म को उदार राजाश्रय प्रदान किया। नाणेघाट लेखों के अतिरिक्त उनके अन्य सभी अभिलेख बौद्ध शैलगृहों में उत्कीर्ण पाए जाते हैं तथा उनमें विविध प्रयोजनों के लिए बौद्ध संघ को भूमि दान करने का उल्लेख पाया जाता है। इन अभिलेखों से पता चलता है कि सातवाहन काल में दक्खन में बौद्ध धर्म अपनी चरम उन्नत अवस्था में था और महाराष्ट्र के कुछ स्थान बौद्ध धर्म के स्थविरवाद और महासांघिक संप्रदायों के विभिन्न निकायों के गढ़ थे।[8] इस काल में सातवाहनों की प्रेरणा के फलस्वरूप अजंता, भाजे, कार्ले, पितलखोरा, कोंडाणे, जुन्नर,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कान्हेरी इत्यादि विभिन्न स्थानों में बौद्ध भिक्षुओं के निवास के लिए पर्वतों को काटकर सैकड़ों विहारों और चैत्यगृहों का निर्माण किया गया। अजंता के हीनयान संप्रदाय से संबद्ध शैलगृह इसी काल के हैं।

सातवाहन काल आर्थिक समृद्धि का युग था। समसामयिक प्राकृत साहित्य तथा अभिलेखों में यह समृद्धि प्रतिध्वनित होती है। इस समृद्धि का प्रमुख कारण रोमन साम्राज्य के साथ बड़े पैमाने पर होने वाला व्यापार था। इस व्यापार में सातवाहनों का योगदान महत्वपूर्ण था। सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र यज्ञ सातकर्णि के चोलमंडल के तटवर्ती प्रदेश में मिले हुए सिक्कों पर एक जलपोत का अंकन मिलता है जो संभवतः भारत-रोम व्यापार में सातवाहनों की गहरी रुचि का परिचायक है। पुरातात्विक उत्खननों के फलस्वरूप सातवाहन साम्राज्य में स्थित अनेक प्राचीन स्थानों में सातवाहनकालीन स्तरों में रोमन मृद्भांड (विशेषतः मद्यकुंभ और झारियां) अथवा उनकी अनुकृतियां बहुत बड़े परिमाण में प्राप्त हुई हैं। विभिन्न स्थानों से प्राप्त रोमन सिक्कों तथा उनके अनुकरण पर निर्मित और आभूषण के रूप में व्यवहृत मिट्टी के पदकों की संख्या भी बहुत बड़ी है। सातवाहन साम्राज्य में स्थित कई बंदरगाह इस व्यापार के महत्वपूर्ण केंद्र थे। इनका सविस्तार वर्णन एक अज्ञातनाम व्यापारी द्वारा लिखित 'पेरिप्लस मारि एरिथ्री' ('पेरिप्लस आफ दि एरिथ्रियन सी') नामक पुस्तक में उपलब्ध होता है। इस व्यापार का संतुलन भारत के पक्ष में था। प्लिनी के अनुसार भारत से निर्यातित वस्तुओं की रोम में बड़ी मांग थी और इसके फलस्वरूप प्रतिवर्ष एक बहुत बड़ी स्वर्णराशि रोमन साम्राज्य से भारत खिंची चली आती थी। इस प्रतिकूल व्यापार की रोकथाम के लिए रोम में बड़ा जोरदार आंदोलन चला था। इसमें संदेह नहीं कि इस व्यापार के फलस्वरूप प्राप्त धनसंपदा का व्यापक स्तर का बौद्ध शैलगृहों के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। इस संबंध में यह स्मरणीय है कि सातवाहन साम्राज्य में बौद्ध धर्म के अब तक ज्ञात अधिकांश केंद्र व्यापारिक मार्गों पर अथवा उनके निकट स्थित थे।

सातवाहनों के अस्त होने पर उनके विशाल साम्राज्य के अवशेषों पर अनेक छोटे छोटे राज्य अस्तित्व में आए। आंध्रप्रदेश में इक्ष्वाकुओं तथा महाराष्ट्र के एक बड़े भूभाग पर आभीरों ने अपनी सत्ता स्थापित की। सातवाहनोत्तर कुछ दशकों तक विदर्भ तथा मराठवाडा का इतिहास अंधकाराच्छन्न है। ईस्वी तृतीय शताब्दी के उत्तरार्ध में विदर्भ में वाकाटक वंश का उदय हुआ। संपूर्ण विदर्भ तथा उससे लगा हुआ मध्यप्रदेश एवं मराठवाडा का एक बड़ा भूभाग वाकाटकों के अधीन था। अभिलेखीय साक्ष्य से इसमें संदेह नहीं रह जाता कि अजंता का प्रदेश भी वाकाटक राज्य में अंतर्भूत था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाकाटकों का मूलस्थान एक विवादग्रस्त प्रश्न है। कुछ विद्वानों के अनुसार वे मूलतः बुंदेलखंड के थे जबकि अन्य विद्वान उन्हें दक्षिण भारत का मानते हैं। आंध्रप्रदेश में गुंटूर जिले के अमरावती नामक सुप्रसिद्ध ग्राम में प्राप्त एक स्तंभ पर गृहपति वाकाटक का एक लेख उत्कीर्ण है जिससे द्वितीय मत का समर्थन होता है। इस वंश का प्रथम ज्ञात राजा विंध्यशक्ति था। किंतु वाकाटक राज्य का वास्तविक संस्थापक उसका पुत्र प्रथम प्रवरसेन था। वह इस वंश का सर्वश्रेष्ठ राजा था। उसने अनेक प्रदेशों को जीतकर उनपर अपनी सत्ता स्थापित की, यद्यपि पर्याप्त सामग्री उपलब्ध न होने के कारण उसके राज्य की सीमाएं निर्धारित करना कठिन है। उसकी राजधानी नंदिवर्धन थी जिसकी पहचान नागपुर से लगभग 28 मील दूर उत्तर में स्थित नगरधन नामक गांव से की गई है। वह वैदिक धर्मावलंबी था तथा उसने अग्निष्ठोम, आप्तोर्याम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, वाजपेय, बृहस्पतिसव, साद्यस्क्र तथा चार अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया था। चार अश्वमेधों का आयोजन उसकी बढ़ती हुई शक्ति का परिचायक है। उसके द्वारा सम्राट पदवी धारण करना भी इसी दिशा में संकेत करता है। प्रथम प्रवरसेन के अनंतर वाकाटक राज्य दो भागों में विभक्त हो गया। ज्येष्ठ शाखा नंदिवर्धन तथा बाद में उसकी स्थानापन्न राजधानियों (प्रवरपुर, पद्मपुर एवं पृथ्वीसमुद्र) से राज्य के उत्तरी भाग पर शासन करती रही। कनिष्क शाखा का संस्थापक प्रवरसेन का पुत्र सर्वसेन था। इस शाखा के अधिकार में वाकाटक राज्य का दक्षिणी भाग आया। इस शाखा की राजधानी वत्सगुल्म (वर्तमान वाशिम, अकोला जिला) थी। अतः यह वत्सगुल्म शाखा कहलाती है। प्रथम प्रवरसेन के ज्येष्ठ पुत्र गौतमीपुत्र की मृत्यु अपने पिता के राजत्वकाल में ही हो जाने के कारण प्रवरसेन के पश्चात उसका पौत्र तथा गौतमीपुत्र का पुत्र प्रथम रुद्रसेन नंदिवर्धन शाखा के सिंहासन पर बैठा। उसके वंशजों के सभी लेखों में उसे भारशिव महाराज भवनाग का दौहित्र (पुत्री का पुत्र) कहा गया है जिससे प्रतीत होता है कि उसे पद्मावती के नागवंशी राजा भवनाग से बड़ी सहायता मिली थी। प्रथम रुद्रसेन के राजत्वकाल में गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त और दक्षिणापथ में दिग्विजय यात्रा की जिसके परिणामस्वरूप वाकाटकों के राज्यविस्तार के प्रयत्नों को आघात पहुंचा होगा। प्रथम रुद्रसेन के पश्चात उसका पुत्र प्रथम पृथिवीषेण सिंहासनासीन हुआ और प्रथम पृथिवीषेण के अनंतर उसका पुत्र द्वितीय रुद्रसेन। द्वितीय रुद्रसेन गुप्त सम्राट द्वितीय चंद्रगुप्त विक्रमादित्य का समसामयिक था तथा उसने इस गुप्त सम्राट की पुत्री प्रभावतीगुप्ता से विवाह किया। इससे स्पष्ट है कि वाकाटकों और गुप्तों के संबंध बड़े मधुर थे। द्वितीय रुद्रसेन का देहांत विवाह के कुछ वर्ष पश्चात ही हो गया। इस समय उसके पुत्रों के अल्पवयस्क होने के कारण प्रभा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वती गुप्ता ने शासन की बागडोर अपने पुत्रों की ओर से अपने हाथ में ली और इस हैसियत से उसने कम से कम तेरह वर्ष शासन चलाया।[9] इस कठिन स्थिति में अपनी पुत्री की सहायता के लिए द्वितीय चंद्रगुप्त ने कुछ अनुभवी अधिकारी वाकाटक राजसभा में भेजे थे। महाकवि कालिदास भी संभवतः इसी समय विदर्भ में आया और राजधानी के निकटस्थ रामगिरि (वर्तमान रामटेक, नागपुर जिला) में उसे अपने सुप्रसिद्ध काव्य 'मेघदूत' के प्रणयन की प्रेरणा मिली। प्रभावतीगुप्ता के राज्यशासन के तेरहवें वर्ष के कुछ समय पश्चात युवराज दिवाकरसेन का देहांत हो गया और उसका अनुज द्वितीय प्रवरसेन राजा हुआ। वह एक कुशल शासक ही नहीं अपितु उत्कृष्ट कवि भी था तथा कालिदास की सहायता से उसने 'सेतुबंध' अथवा 'रावणवहो' (रावणवध) नामक सुप्रसिद्ध प्राकृत महाकाव्य की रचना की। उसने अपने राजत्वकाल के ग्यारहवें और सोलहवें वर्ष के बीच किसी समय अपनी राजधानी नंदिवर्धन से प्रवरपुर[10] स्थानांतरित की। इसके पश्चात उसका पुत्र नरेंद्रसेन सिंहासनारूढ़ हुआ। नरेंद्रसेन ने कुंतल[11] की राजकुमारी अज्झितभट्टारिका से विवाह किया था। अज्झितभट्टारिका संभवतः मानपुर (आधुनिक माण, सतारा जिला, महाराष्ट्र) के तत्कालीन राष्ट्रकूट राजवंश से संबद्ध थी। इस वैवाहिक संधि के फलस्वरूप इन दो राजवंशों के बीच का तनाव समाप्त हुआ और उनके संबंध मैत्रीपूर्ण हो गए। नरेंद्रसेन एक शक्तिशाली राजा था और उसके पुत्र द्वितीय पृथिवीषेण के ताम्रपत्रलेखों में कहा गया है कि कोसल (मध्यप्रदेश का छत्तीसगढ़ प्रदेश तथा उससे लगा हुआ उड़ीसा का प्रदेश), मेकला (अमरकंटक का परिसरवर्ती प्रदेश, मध्यप्रदेश) तथा मालव नरेश उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे। किंतु उसके राजत्वकाल के अंत में संभवतः नलवंशी राजा भवदत्तवर्मा ने वाकाटक राज्य पर आक्रमण कर उसकी भूतपूर्व राजधानी नंदिवर्धन पर अधिकार कर लिया। भवदत्तवर्मा के पुत्र अर्थपति ने अपना एक दानपत्र नंदिवर्धन से दिया था। इस संकटपूर्ण परिस्थिति में नरेंद्रसेन के पुत्र द्वितीय पृथिवीषेण ने शासन की बागडोर संभाली। उसने नलों से खोया हुआ प्रदेश पुनः जीता तथा उत्तर में मेकला के परे चेदि प्रदेश तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उसके मांडलिक व्याघ्रदेव के दो शिलालेख नचना की तलाई तथा गंज में प्राप्त हुए हैं। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि वह अपनी राजधानी प्रवरपुर से हटाकर पद्मपुर (पदमपुर, भंडारा जिला, महाराष्ट्र) ले गया। उसका एक दानपत्र पृथिवीसमुद्र नामक स्थान से दिया गया है जिसके आधार पर यह अनुमान किया गया है कि अपने राजत्वकाल के सत्रहवें वर्ष के पूर्व किसी समय उसने अपनी राजधानी पृथिवीसमुद्र में स्थानांतरित दी कर थी। वह वाकाटक वंश की मुख्य शाखा का अब तक ज्ञात अंतिम राजा था। उसके राजत्वकाल और उसके साथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाकाटक वंश की ज्येष्ठ शाखा का अंत ई० 500 के आसपास हुआ।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, प्रथम प्रवरसेन के पुत्र सर्वसेन ने वाकाटक वंश की वत्सगुल्म (वर्तमान वाशिम, अकोला जिला, महाराष्ट्र) शाखा की स्थापना की थी। उसका राज्य उत्तर में इंध्याद्रि अथवा अजंता पर्वतमाला से दक्षिण में गोदावरी तक विस्तृत था। अपने पिता की भांति उसने भी 'धर्ममहाराज' की उपाधि धारण की थी। वह एक उत्कृष्ट कवि था तथा उसके द्वारा महाराष्ट्री प्राकृत में रचित 'हरिविजय' नामक महाकाव्य की संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। उसने अनेक प्राकृत गाथाएं भी लिखी थीं जिनमें से कुछ 'गाथा-सप्तशती' में संगृहीत हैं। सर्वसेन के पश्चात उसका पुत्र विंध्यसेन (द्वितीय) अथवा विंध्यशक्ति शासक बना। विंध्यसेन ने भी 'धर्ममहाराज' की पदवी धारण की थी। उसके एक ताम्रपत्रलेख से विदित होता है कि मराठवाडा का नांदेड जिला उसके राज्य का एक अभिन्न अंग था। एक अजंता लेख के अनुसार उसने कुंतल नरेश का पराभव किया। उसने कम से कम सैंतीस वर्ष राज्य किया और उसके पश्चात उसके पुत्र द्वितीय प्रवरसेन ने सत्ता संभाली। उसके विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। संभवतः उसने कुछ ही वर्ष राज्य किया, क्योंकि उसके देहांत के समय उसके पुत्र की आयु केवल आठ वर्ष थी। प्रवरसेन के निधन के अनंतर उसका पुत्र आठ वर्ष की अल्पायु में शासक बना। दुर्भाग्यवश अजंता लेख में उसका नाम नष्ट हो गया है। इसके बाद उसके पुत्र देवसेन ने शासन की बागडोर संभाली। उसके हाल ही में प्राप्त हिस्सेबोराला लेख से ज्ञात होता है कि वह शक 380 अथवा ई० 458 में सिंहासन पर आसीन था। देवसेन के बाद उसका पुत्र हरिषेण सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके अमात्य वराहदेव के अजंता लेख के अनुसार उसने उत्तर में अवंति (मालवा), पूर्व में कोसला, कलिंग और आंध्र, पश्चिम में लाट (मध्य और दक्षिण गुजरात) और त्रिकूट (नासिक जिला) तथा दक्षिण में कुंतल पर विजय प्राप्त की थी। यह वर्णन कुछ अतिरंजित होते हुए भी उसकी शक्ति और महत्ता का सूचक है इससे इनकार नहीं किया जा सकता। हरिषेण वाकाटकों की वत्सगुल्म शाखा का अंतिम ज्ञात राजा था तथा ई० पांचवीं शताब्दी के अंत के आसपास वत्सगुल्म शाखा और उसके साथ वाकाटक राज्य अस्त हुआ।[12]

वाकाटक नरेश वैदिक धर्म के अनुयायी थे तथा उन्होंने अनेक श्रौत यज्ञों का आयोजन किया था। किंतु धार्मिक सहिष्णुता की भारतीय परंपरा का अनुसरण करते हुए धर्मांधता से दूर रहकर उन्होंने अन्य धर्मों को भी प्रेरित किया तथा उनको उदार संरक्षण दिया। वाकाटक काल के अंतिम चरण में अजंता के शैलगृहों के निर्माण का कार्य, जो लगभग पिछली तीन शताब्दियों से अवरुद्ध पड़ा था, एक नवीन चेतना और वेग के साथ पुनः आरंभ हुआ। सोलहवीं गुफा के बरामदे के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाहर बाईं ओर की दीवार के अंतिम सिरे पर उत्कीर्ण एक लेख से पता चला है कि स्तंभों, चित्रवीथियों, मूर्तियों इत्यादि से अलंकृत इस शैलगृह का निर्माण हरिषेण के अमात्य वराहदेव ने कराया था। अजंता से ग्यारह मील पश्चिम में गुलवाडा गांव में स्थित घटोत्कच गुफा के बरामदे की पिछली दीवार के बाएं सिरे पर उत्कीर्ण एक लेख से विदित होता है कि इसी वराहदेव ने एक बौद्ध विहार का निर्माण कराया था। यह बौद्ध विहार घटोत्कच नामक गुफा से अभिन्न है। अजंता की सत्रहवीं गुफा के बरामदे की भीत पर उपलब्ध एक लेख के अनुसार हरिषेण के मांडलिक रविसांब ने एक विहार तथा गंधकुटीर बनवाकर बौद्ध संघ को अर्पित की थीं।

वाकाटकों के पतन के पश्चात विदर्भ कुछ समय तक मुंडपुत्रों,[13] कलचुरियों एवं राष्ट्रकूटों के अधिकार में रहा। किंतु इनके राज्य का विस्तार कितना था और उसमें अजंता का परिसरवर्ती प्रदेश समाविष्ट था या नहीं इसका निर्णय करना आवश्यक प्रमाणों के अभाव में संभव नहीं है।

इस बीच ई० छठी शताब्दी के पूर्वार्ध में कर्णाटक में चालुक्य वंश का प्रादुर्भाव हुआ। इस वंश की राजधानी कर्णाटक के बीजापुर जिले में स्थित बादामी (प्राचीन वातापि) थी। दक्खन के इतिहास में चालुक्यों का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है। कर्णाटक में बादामी के परिसरवर्ती प्रदेश में एक साधारण राजशक्ति के रूप में आरंभ कर उन्होंने कर्णाटक और महाराष्ट्र के अधिकांश पर अपना आधिपत्य आरोपित कर दिया। इस वंश का प्रथम राजा जयसिंह था जिसके बाद उसका पुत्र रणराग राजा बना। ये दोनों साधारण शासक थे और संभवतः इनके काल में चालुक्य राजवंश ने अपनी स्वतंत्रता उद्घोषित नहीं की थी। पहला स्वतंत्र चालुक्य नरेश रणराग का पुत्र प्रथम पुलकेशी था जो चालुक्य सत्ता का वास्तविक संस्थापक प्रतीत होता है। इसी कारण अधिकांश चालुक्य लेखों में वंशावली का प्रारंभ प्रथम पुलकेशी से बताया गया है। उसने 'महाराज' और 'श्रीपृथिवीवल्लभ', 'श्रीवल्लभ' अथवा 'वल्लभ' पदवियां धारण कीं तथा हिरण्यगर्भ महादान एवं अश्वमेध इत्यादि श्रौत यज्ञ किए जो उसकी बढ़ी हुई शक्ति के द्योतक हैं। उसके ई० 543 के बादामी लेख से विदित होता है कि उसने वातापि के दुर्ग का निर्माण कराया था।[14] पुलकेशी के पश्चात उसका पुत्र प्रथम कीर्तिवर्मा गद्दी पर बैठा। वह बड़ा पराक्रमी नरेश था और उसने बेल्लारी—कुर्नूल प्रदेश के नलों, कोंकण के मौर्यों तथा कनारा-बैलगांव-धारवाड़ प्रदेश के कदंबों को पराजित कर अपने राज्य की वृद्धि की।[15] मंगलेश के महाकूट स्तंभलेख में उसके द्वारा अन्य अनेक प्रदेशों के जीते जाने का भी वर्णन मिलता है, किंतु वह निस्संदेह अतिरंजित है। कीर्तिवर्मा की मृत्यु के समय उसके पुत्र द्वितीय पुलकेशी के अल्पवयस्क होने के कारण उसका भाई मंगलेश अथवा मंगलराज राज्य का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वामी हुआ। उसने कलचुरि नरेश बुद्धराज को पराभूत कर महाराष्ट्र का एक बड़ा प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया। मंगलेश अपने पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था और इसके फलस्वरूप द्वितीय पुलकेशी, जो अब वयस्क हो चुका था, तथा उसके बीच गृहयुद्ध हुआ जिसमें मंगलेश मारा गया और पुलकेशी ने राज्यलक्ष्मी प्राप्त की। प्रारंभ में पुलकेशी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किंतु इस परिस्थिति में उसने साहस से काम लिया और वह परिस्थिति को अपने अनुकूल करने में सफल हुआ। आक्रमण के उद्देश्य से भीमा नदी के उत्तरी तट आए हुए आप्पायिक और गोविंद को पराभूत कर तथा कदंबों, गंगों, आलुपों व मौर्यों के विद्रोह का दमन कर एवं उन पर अपनी प्रभुसत्ता पुनः स्थापित कर उसने दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। रविकीर्ति द्वारा रचित उसकी ऐहोके प्रशस्ति में इस विजय यात्रा का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।[16] सर्वप्रथम लाट, मालव और गुर्जर नरेशों द्वारा उसके मांडलिक बन जाने का उल्लेख किया गया है। पुलकेशी के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि सम्राट हर्षवर्धन के विरुद्ध उसकी सफलता थी। लेख के अनुसार युद्ध में उसके हाथियों के मर कर गिरने से हर्ष का हर्ष भय में बदल गया था। यह युद्ध नर्मदा नदी और विंध्य पर्वत के परिसर में हुआ था। परवर्ती चालुक्य अभिलेखों में इस घटना का उल्लेख बड़े अभिमान के साथ किया गया है और यह कहा गया है कि इस घटना के पश्चात पुलकेशी ने 'परमेश्वर' की उपाधि धारण की थी। चीनी यात्री ह्वेन त्सांग ने भी इस बात का उल्लेख किया है कि हर्षवर्धन पुलकेशी के विरुद्ध सफल नहीं हो सका था। इन विजयों के फलस्वरूप पुलकेशी को 99,000 ग्रामों से युक्त तीनों महाराष्ट्रों का आधिपत्य प्राप्त हुआ। इसके पश्चात उसने दक्षिण दिग्विजय का प्रारंभ किया। उसने कोसल और कलिंग नरेशों पर विजय प्राप्त की तथा आंध्रप्रदेश में पिष्टपुर (पीठापुरम, गोदावरी जिला) तथा परिसरवर्ती प्रदेश जीत कर अपने प्रिय अनुज कुब्ज विष्णुवर्धन को इस प्रदेश का शासक बनाया। तदनंतर उसने पल्लव नरेश प्रथम महेंद्रवर्मा को पराजित कर उसे उसकी राजधानी कांची (आधुनिक कांजीवरम, तमिलनाडु) की प्राचीर के पीछे शरण लेने के लिए बाध्य किया तथा कावेरी नदी पार कर चोल, केरल तथा पांड्य नरेशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किए। इस विजययात्रा के पश्चात पुलकेशी अपनी राजधानी बादामी वापस लौट आया। अब तक के विवरण से यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि पुलकेशी अपने समय के श्रेष्ठतम योद्धाओं में से एक था तथा समकालीन दक्षिण भारतीय राजनीति में उसका स्थान अत्यंत गौरवपूर्ण था। हर्षवर्धन के विरुद्ध सफलता प्राप्त कर उत्तर भारतीय राजनीति में भी उसने अपनी साख जमा ली थी। किंतु पल्लव नृपति महेंद्रवर्मा की पराजय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से दक्षिण भारत के इतिहास में एक नवीन अध्याय का प्रारंभ हुआ और परवर्ती इतिहास इस बात का साक्षी है कि अगली कई शताब्दियों तक चालुक्यों और पल्लवों तथा उनके अनंतर उनकी उत्तराधिकारी शक्तियों के बीच निरंतर संघर्ष चलता रहा। पल्लवों के विरुद्ध पुलकेशी की सफलता क्षणिक सिद्ध हुई और ई० 642 के लगभग प्रथम महेंद्रवर्मा के पुत्र प्रथम नरसिंहवर्मा ने युद्ध में पुलकेशी को मारकर उसकी राजधानी बादामी पर कुछ समय के लिए अधिकार कर लिया। इस प्रकार एक महान सेनानायक के गौरवशाली जीवन का इतना करुण अंत हुआ।

पुलकेशी के राज्यकाल में ई० 641 के लगभग चीनी यात्री ह्वेन त्सांग महाराष्ट्र में आया तथा उसने चालुक्य नरेश और उसके प्रजाजनों का सुंदर वर्णन किया है। जैसाकि हम देख चुके हैं, उसने कुछ समय पुलकेशी के राज्य की पूर्वी सीमा पर स्थित अजंता के शैलगृहों में भी बिताया था। कतिपय किंवदंतियों को छोड़कर उसका अजंता वर्णन यथातथ्य है। कतिपय कलामर्मज्ञों के अनुसार अजंता के प्रथम शैलगृह में पुलकेशी द्वारा ईरान के राजा खुसरू परवेज द्वारा भेजे हुए राजदूत के स्वागत का दृश्य चित्रित है। इस चित्र की व्याख्या विवादास्पद है और आज अधिकांश विद्वान इस मत को मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। किंतु आभिलेखिक साक्ष्य से स्पष्ट है कि अजंता के शैलगृहों के अलंकरण का कार्य चालुक्य काल में भी जारी था। प्रमाणों के अभाव में यह कहना कठिन है कि इन शैलगृहों के निर्माण एवं चित्रण में पुलकेशी का भी कोई योगदान था या नहीं।

पुलकेशी की मृत्यु के पश्चात चालुक्य राज्य में कुछ समय तक अराजकता का बोलबाला रहा, किंतु अंत में उसके पुत्र प्रथम विक्रमादित्य ने पल्लवों को खदेड़ कर अपना परंपरागत राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। इतना ही नहीं, विक्रमादित्य ने पुनः पल्लव राज्य पर आक्रमण किया और इस आक्रमण के दौरान वह तमिलनाडु में त्रिचनापल्ली के निकट पेरुवनल्लूर तक पहुंच गया। किंतु इस युद्ध में पल्लव नरेश प्रथम परमेश्वरवर्मा चालुक्यों को पुनः पराजित करने में सफल हुआ। ई० 681 के लगभग विक्रमादित्य का पुत्र विनयादित्य राजा हुआ। अभिलेखों में उसके द्वारा अनेक राजवंशों पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख है। वह समस्त उत्तरापथ के नरेश (सकलोत्तरापथनाथ) पर विजय का दावा करता है, किंतु निश्चित प्रमाणों के अभाव में उसके उत्तर भारतीय शत्रु की पहचान संभव नहीं है। चालुक्य लेखों से पता चलता है कि यह विजय पूर्णतः निर्णायक नहीं थी और विनयादित्य का पुत्र विजयादित्य पीछे हटते हुए शत्रुओं द्वारा बंदी बना लिया गया था। किसी तरह वह बच निकला एवं विनयादित्य के पश्चात सिंहासनारूढ़ हुआ। विजयादित्य के सुदीर्घ राजत्वकाल (ई० 696-733) में पल्लवों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से संघर्ष चलता रहा। विजयादित्य के उत्तराधिकारी द्वितीय विक्रमादित्य के राजत्वकाल में भी चालुक्य-पल्लव संघर्ष जारी रहा। उसने द्वितीय नंदिवर्मा पल्लवमल्ल को पीछे हटने के लिए बाध्य कर पल्लव राजधानी कांची में प्रवेश किया। पांड्य, चोल, केरल, कलभ्र तथा अन्य नरेशों की शक्ति को नष्ट कर उसने दक्षिण समुद्र में विजयस्तंभ आरोपित कर दिया। चालुक्य वंश का अंतिम राजा द्वितीय विक्रमादित्य का पुत्र द्वितीय कीर्तिवर्मा था जिसने लगभग ई० 757 तक राज्य किया।

चालुक्य काल के उत्तरार्ध में राष्ट्रकूटों ने चालुक्यों के मांडलिक के रूप में आरंभ कर धीरे धीरे अपनी शक्ति बढ़ा ली। इस वंश की स्वतंत्र सत्ता का वास्तविक संस्थापक दंतिदुर्ग था जिसने बादामी के अंतिम चालुक्य नरेश द्वितीय कीर्तिवर्मा का पराभव कर चालुक्य साम्राज्य का स्वामित्व प्राप्त कर लिया। कुछ ही समय में राष्ट्रकूटों ने संपूर्ण दक्षिणापथ पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। यह वंश ध्रुव धारावर्ष, तृतीय गोविंद, तृतीय इंद्र और तृतीय कृष्ण जैसे शक्तिशाली नरेशों की एक सुदीर्घ परंपरा के लिए विख्यात है। उन्होंने अपने पराक्रम तथा कूटनीति से अपने साम्राज्य के बाहर समस्त उत्तर और दक्षिण भारत की समकालीन प्रमुख शक्तियों को अपना लोहा मानने के लिए बाध्य किया तथा तत्कालीन भारतीय एवं सिंहली राजनीति में सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया। राष्ट्रकूटों ने तीन शताब्दियों से कुछ अधिक समय तक राज्य किया जिसके पश्चात ई० दसवीं शताब्दी में कल्याण के चालुक्यों ने राष्ट्रकूट सत्ता का अंत कर पुनः अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की।

अजंता के शैलगृहों के निर्माण एवं चित्रण का कार्य राष्ट्रकूट काल के पूर्व ही समाप्त हो चुका था। किंतु शैलगृह क्र० 26 एवं 27 के मध्य स्थित चैत्यगृह में संस्कृत और प्राकृत के मिश्रण में रचित एक सुदीर्घ अभिलेख उत्कीर्ण है।[17] अक्षररचना को आधार मानकर इस लेख का काल ई० अष्टम अथवा नवम शतक निर्धारित किया गया है। लेख में दक्षिणापथ के राष्ट्रकूट कुल का उल्लेख पाया जाता है। लेख अत्यंत खंडित स्थिति में होने के कारण उसका प्रयोजन जानना संभव नहीं है। किंतु इससे यह अनुमान करना असंगत न होगा कि अजंता को राष्ट्रकूटों का संरक्षण प्राप्त था भले ही वाकाटकों एवं चालुक्यों की भांति वे भी अन्य धार्मिक संप्रदायों के अनुयायी क्यों न रहे हों। जो भी हो, लेख से इतना तो अवश्य ही सूचित होता है कि ये शैलगृह ईस्वी आठवीं-नवीं शताब्दी तक उपयोग में थे। इसके अनंतर उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों तक ये गुफाएं पूर्णतः अंधकाराच्छन्न रहीं और इस कारण अजंता प्रदेश का राष्ट्रकूटोत्तर मध्यकालीन राजनीतिक इतिहास प्रस्तुत संदर्भ की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधुनिक काल में अजंता की गुफाओं की खोज और उत्तरकालीन महत्वपूर्ण घटनाओं की चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है।

धार्मिक पृष्ठभूमि

अजंता के सभी शैलगृह स्थापत्य, शिल्प तथा चित्रकला की दृष्टि से बौद्ध धर्म से संबंधित हैं। कुछ गुफाओं का संबंध उसके हीनयान संप्रदाय से है तो कुछ का महायान संप्रदाय से। इन दो धाराओं से परिचय के बिना इन गुफाओं के मूल में निहित प्रेरणा का आकलन असंभव है। अतः प्रस्तुत संदर्भ में बौद्ध धर्म के प्रारंभिक इतिहास तथा इन दोनों संप्रदायों के मूलभूत अंतर की संक्षिप्त चर्चा प्रासंगिक है।

बोधिप्राप्ति के उपरांत भगवान बुद्ध ने अपना समस्त शेष जीवन धर्मप्रचार में व्यतीत किया। नैतिक सिद्धांतों पर आधारित एवं सरलता से बोधगम्य होने के कारण उनकी शिक्षाओं ने जटिल वैदिक कर्मकांड तथा उससे समवेत सामाजिक व्यवस्था से त्रस्त जनसाधारण, विशेषतया समाज के उपेक्षित वर्गों को अपनी ओर आकर्षित किया तथा कुछ ही समय में उनके अनुयायियों की संख्या काफी बड़ी हो गई। धर्मोपदेश के लिए लोकभाषा के उपयोग एवं तत्कालीन प्रमुख राज्यों (मगध, कोसल, वत्स तथा अवंति) के उदार राजाश्रय से भी इस कार्य में बड़ी सहायता मिली। पालि साहित्य में प्राप्त बुद्ध के यात्राविवरणों से उनके जीवनकाल में बौद्ध धर्म के प्रसारक्षेत्र की कल्पना की जा सकती है। इस साक्ष्य से स्पष्ट है कि उस समय बौद्ध धर्म मुख्यतः बिहार, उत्तर प्रदेश तथा नेपाल की तराई तक सीमित था, यद्यपि उसके कुछ अनुयायी कतिपय अन्य परिसरवर्ती प्रदेशों में भी पाए जाते थे।

भगवान बुद्ध ने कठोर तपस्या और विलासी जीवन की दोनों अतियों का त्याग कर मध्यम मार्ग (मध्यमा प्रतिपदा) का अनुसरण किया। आरंभ में बौद्ध भिक्षु एकांत वनप्रदेश जैसे स्थलों में अत्यंत सादा एवं एकाकी जीवन व्यतीत करते थे। किंतु भिक्षुओं की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि होने पर सामुदायिक जीवन की आवश्यकता प्रतीत हुई और इस प्रकार संघ अस्तित्व में आया। 'चुल्लवग्ग' (6. 1. 2.) के अनुसार भिक्षुओं के लिए जिन पांच प्रकार के निवासस्थानों का विधान तथागत ने किया था उनमें अंतिम गुहाएं थीं। यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि बुद्ध के जीवनकाल में बिहार और उत्तर प्रदेश में स्थान स्थान पर बौद्ध विहारों का निर्माण बड़े पैमाने पर हुआ होगा।

भगवान बुद्ध के जीवनकाल में उनके निकट संबंधी देवदत्त तथा अन्य भिक्षुओं द्वारा संघभेद के प्रयत्नों के बावजूद उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण बौद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संघ में एकता बनी रही। किंतु उनके परिनिर्वाण के पश्चात इन भेदमूलक प्रवृत्तियों ने पुनः सिर उठाया और इनके निराकरण तथा बुद्धवचनों के संकलन के उद्देश्य से राजगृह में प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन किया गया। यद्यपि इस संगीति में धर्म और विनय संबंधी विवादों का तात्कालिक समाधान हो गया, तथापि दीर्घ काल तक उन्हें पुनः उभरने से नहीं रोका जा सकता था। उपलब्ध बौद्ध परंपराओं के अनुसार प्रथम संगीति के लगभग सौ वर्ष पश्चात पूर्व (वैशाली) तथा पश्चिम (मथुरा, अवंति इत्यादि) के भिक्षुओं के बीच विनय एवं सिद्धांत विषयक कतिपय मान्यताओं को लेकर गंभीर विवाद उठ खड़ा हुआ। वैशाली में आयोजित द्वितीय संगीति ने इन प्रश्नों पर विचार कर यह निर्णय दिया कि पूर्वी भिक्षुओं का आचरण विनयनियमों के विरुद्ध है। किंतु इस निर्णय से बौद्ध भिक्षुओं का एक बड़ा वर्ग संतुष्ट नहीं हुआ तथा उसने इसके विरुद्ध एक महासंगीति का आयोजन कर वैशाली के भिक्षुओं के आचरण को उचित ठहराया। यह संगीति बौद्ध धर्म के इतिहास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यद्यपि इसके पूर्व भी बौद्धों में कुछ विषयों को लेकर विवाद उत्पन्न होते रहे थे, तथापि जिस किसी प्रकार इन विवादों का समाधान ढूंढ़ निकाला गया और वे उग्र रूप धारण नहीं कर सके थे। किंतु इस महासंगीति के फलस्वरूप महासंघिक नामक एक नवीन संप्रदाय का उद्गम हुआ और इस प्रकार बौद्ध धर्मानुयायी स्पष्टतया दो खेमों में बंट गए : परंपरागत विनयनियमों को माननेवाले थेरवादी (स्थविरवादी) कहलाए तथा द्वितीय महासंगीति द्वारा संशोधित नियमों के अनुगामी महासंघिक नाम से प्रसिद्ध हुए। इसके पश्चात लगभग एक शताब्दी का समय बौद्ध धर्म के इतिहास में संक्रांतिकाल था। सिंहली परंपरा से विदित होता है कि बुद्धनिर्वाण की दूसरी शताब्दी में स्थविरवाद एवं महासंघिक संप्रदायों में उत्पन्न मतभेदों के कारण ये दोनों निकाय अठारह उपसंप्रदायों में विभक्त हो गए। इन उपसंप्रदायों का उद्गम अग्रनिर्दिष्ट वंशवृक्ष द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

इन अठारह संप्रदायों के अतिरिक्त (1) हेमवत, (2) राजगिरिय, (3) सिद्धत्थक, (4) पुब्बसेलिय, (5) अपरसेलिय तथा वाजिरिय, ये छः अन्य उपसंप्रदाय भी बुद्धाब्द की द्वितीय शती के पश्चात अस्तित्व में आए। इस प्रकार हम देखते हैं कि मौर्य काल के पूर्व बौद्ध धर्म अनेक संप्रदायों एवं उपसंप्रदायों में विभक्त हो चुका था। इन नए संप्रदायों में से कुछ निकाय सैद्धांतिक मतभेदों पर आधारित थे तो अन्य संप्रदायों का उद्भव प्रादेशिक आवश्यकताओं के कारण हुआ था। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बुद्धनिर्वाणोत्तर दो शताब्दियों में सैद्धांतिक दृष्टि से बौद्ध धर्म का पर्याप्त विकास हुआ। इसमें भी संदेह नहीं कि इस काल में बौद्ध धर्म का प्रसार दूर दूर तक हो गया तथा उसके अनुयायियों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

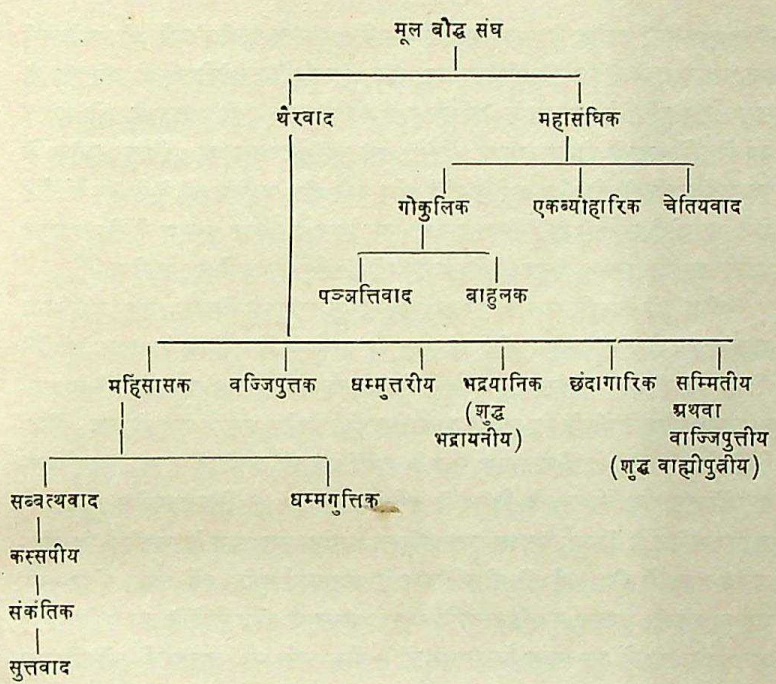

संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हो गई थी।[18]

ऐसी स्थिति में मौर्य सम्राट अशोक का प्रादुर्भाव हुआ जिसने कलिंग युद्ध के पश्चात बुद्धमत का वरण किया। बौद्ध धर्म के इतिहास में यह एक युगांतरकारी घटना थी। अपने इस नवीन अंगीकृत धर्म के प्रसार के लिए उसने अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया और साम्राज्य के सुसंगठित प्रशासनतंत्र की सहायता से भगवान बुद्ध का संदेश दूर दूर तक प्रचारित किया, न केवल अपने विशाल साम्राज्य में ही अपितु अन्य देशों में भी उसके शिलालेखों से पता चलता है कि उसके संदेश का अनुसरण लोग दक्षिण में सिंहल द्वीप तक तथा पश्चिम में मध्य एशिया तथा यूनान तक करते थे। साहित्यिक परंपरा से भी इस कथन की पुष्टि होती है। सिंहली पालि ग्रंथ 'महावंस' के अनुसार उसके राजत्वकाल में राजधानी पाटलिपुत्र में आयोजित तृतीय बौद्ध संगीति ने देश-देशांतर में धर्मप्रचारक भेजे। जिन प्रदेशों में ये प्रचारक भेजे गए थे उनमें भारत के काश्मीर, गंधार, हिमवंत (हिमालय), अपरांत (उत्तरी कोंकण), महाराष्ट्र, महिषमंडल (मैसूर का परिसरवर्ती प्रदेश) और वनवासी (उत्तरी कनारा, कर्णाटक) के अतिरिक्त यवन देश, लंका एवं सुवर्णभूमि (बर्मा अथवा सुदूर पूर्व) का भी समावेश था। सिंहल में धर्म प्रचार का दायित्व तो स्वयं अशोक के पुत्र महेंद्र एवं पुत्री संघमित्रा को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौंपा गया था। अशोक के अथक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म, जो इसके पूर्व एक प्रकार से मध्यदेश तक सीमित था, एक अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन में परिणत हो गया। इस दृष्टि से बुद्धमत के इतिहास में अशोक का वही स्थान है जो ईसाई धर्म के इतिहास में रोमन सम्राट कौंस्टैंटाइन एवं सेंट पाल का। किंतु अशोक के उत्तराधिकारियों को बौद्ध धर्म में कोई रुचि नहीं थी। जहां उनमें से किसी के बौद्ध होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता वहां इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि दशरथ आजीवक संप्रदाय का आश्रयदाता था[19] तो संप्रति जैन धर्म का अशोक।[20]

बौद्ध धर्म के प्रति अशोक की आत्यंतिक उदारता के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया ब्राह्मण पुष्यमित्र शुंग द्वारा मौर्य राजसत्ता के उन्मूलन के माध्यम से व्यक्त हुई।[21] 'दिव्यावदान' और उत्तरकालीन तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ[22] के अनुसार पुष्यमित्र ने बौद्धों पर नृशंस अत्याचार किए और अंत में ऐसे ही एक बौद्ध-विरोधी अभियान के दौरान एक यक्ष के हाथों उसका प्राणांत हुआ। इन परंपराओं की प्रामाणिकता के विषय में वर्तमान स्थिति में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना कठिन है, किंतु उपलब्ध पुरातात्विक अवशेष इस तथ्य के साक्षी हैं कि शुंग-काण्व काल में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई तथा बोध-गया, मथुरा, सांची, भरहुत, पवनी इत्यादि स्थल महत्वपूर्ण बौद्ध केंद्रों के रूप में विकसित हुए। इन स्थानों पर प्राप्त शिल्पावशेषों से बौद्ध धर्म की अभूतपूर्व लोकप्रियता तो सूचित होती ही है साथ ही बौद्ध धर्म के विकास पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। वेदिकाओं और तोरणों पर अंकित विभिन्न दृश्यों एवं अभिलेखों से ज्ञात होता है कि पूर्वबुद्धों की संकल्पना, जातक कथाएं तथा बुद्ध के जीवन के संबंध में कल्पना पर आधारित उत्तरकालीन मान्यताएं विकसित रूप ग्रहण कर चुकी थीं। स्वर्ग, देवी-देवता, यक्ष, नाग, गंधर्व, किन्नर इत्यादि में विश्वास, जिसका मूलतः बौद्ध धर्म में कोई स्थान नहीं था, बौद्धों में जड़ पकड़ चुका था।

बौद्ध धर्म की इस अभूतपूर्व उन्नति में वायव्य भारत के विदेशी राजाओं का उदार आश्रय भी बहुत सहायक हुआ। इस दृष्टि से यवन नरेश मेनांडर (मिलिंद) का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पालि ग्रंथ 'मिलिंदपञ्ह', शिनकोट धातु-करंडक लेख[23], सिक्कों[24] एवं ग्रीक साहित्य में प्राप्त कतिपय उल्लेखों से विदित होता है कि उसने बौद्ध धर्म के योगक्षेम के लिए अनवरत प्रयास किया तथा उसके राजत्व-काल में हिंदूकुश और सिंधु नदी के मध्यवर्ती प्रदेश में भी बौद्ध धर्म काफी लोकप्रिय हो गया था। यवनों के राजनीतिक उत्तराधिकारी—शक पह्लव एवं कुषाण—भी बौद्ध धर्म के प्रति काफी उदार थे। कुषाण सम्राट कनिष्क का स्थान तो बौद्ध धर्म के इतिहास में केवल अशोक के बाद आता है। उत्तरी परंपरा के अनुसार उसके संरक्षण में बुद्धवचनों की विविध निकायों द्वारा प्रस्तुत परस्परविरोधी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्याख्याओं पर विचार के उद्देश्य से एक संगीति का आयोजन हुआ जिसमें पार्श्व, वसुमित्र, अश्वघोष एवं कात्यायनीपुत्र जैसे धुरंधर विद्वानों ने प्रमुख रूप से भाग लिया। कुषाणों के उदार संरक्षण में बौद्ध धर्म न केवल भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमांत में लोकप्रिय हुआ अपितु मध्य एशिया से होकर चीन तक जा पहुंचा।

हम देख चुके हैं कि अशोक ने अपने धर्मप्रचारक महाराष्ट्र और कर्णाटक में भी भेजे थे। इसमें संदेह नहीं कि इससे दक्षिण में बौद्ध धर्म के प्रसार में बड़ी सहायता मिली होगी। सातवाहन, शक, इक्ष्वाकु, आभीर एवं अन्य नरेशों की उदार धार्मिक नीति उसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता में अत्यंत सहायक सिद्ध हुई और पवनी, अजंता, भाजे, कार्ले, कोंडाणे, नासिक, कोंडविते, कान्हेरी, पितलखोरा, जुन्नर, अमरावती, घंटसाल, शालिहुंडम, जगय्यपेटा, नागार्जुनकोंड इत्यादि दक्षिण में बौद्ध धर्म के महत्वपूर्ण गढ़ बन गए। इन तथा अन्य अनेक स्थलों से प्राप्त अभिलेखों से विदित होता है कि ईस्वी सन की आरंभिक शताब्दियों में बौद्ध धर्म समस्त दक्षिणापथ में व्यापक रूप से फैल चुका था और उसे समाज के सभी वर्गों का संरक्षण प्राप्त था। इन अभिलेखों से यह भी पता चलता है कि इस प्रदेश में प्रस्तुत काल में स्थविरवाद एवं महासंघिक संप्रदायों के विभिन्न निकाय विभिन्न स्थानों में लोकप्रिय थे। कार्ले में स्थविरवाद के काश्यपीय और धर्मोत्तरीय तथा नासिक में भद्रायनीय निकाय के प्रचलन का प्रमाण मिलता है। महाराष्ट्र के अभिलेखों में उल्लिखित अन्य सभी निकाय महासंघिक वर्ग के हैं। इन उल्लेखों के विश्लेषण से पता चलता है कि महासंघिक संप्रदाय और उसकी विभिन्न शाखाएं, विशेषतः पूर्वशैल, अपरशील एवं चैत्यक, इस काल में महाराष्ट्र में बहुत लोकप्रिय थीं।[25]

ईस्वी सन के आरंभ के आसपास बौद्ध इतिहास की दृष्टि से एक युगांतरकारी घटना घटी। यह थी महायान संप्रदाय का आविर्भाव। वैसे तो इसके पूर्व भी बौद्ध धर्म में अनेक भेद उत्पन्न हुए और विभिन्न संप्रदायों का उदय हुआ था, किंतु यह उनसे पूर्णतः भिन्न था। इसके फलस्वरूप मूलभूत धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धांतों तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन हो गया। महायान के अनुयायी अपने मत को अन्य संप्रदायों से इतना भिन्न और श्रेष्ठ मानते थे कि उन्होंने बौद्ध धर्म के अन्य निकायों को 'हीनयान' संज्ञा से अभिहित किया।

महायान का उदय ईस्वी प्रथम शती के आरंभ के लगभग हुआ, किंतु उसके बीज प्राचीनतर वाङ्मय एवं कला में ढूंढ़े जा सकते हैं। महासंघिक संप्रदाय ने, जिसका उदय प्राचीन परंपरा के अनुसार बुद्धनिर्वाण के लगभग एक शताब्दी पश्चात हुआ था, बुद्ध का लोकोत्तरत्व प्रतिपादित किया तथा उन पर देवत्व आरोपित कर दिया। इसके अतिरिक्त स्थविरवाद द्वारा मानव मात्र के लक्ष्य के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप में अंगीकृत अर्हत पद को उच्चतम अथवा पूर्णतः मुक्त स्थिति मानने से उसने इनकार कर दिया और यह प्रतिपादित किया कि प्रत्येक व्यक्ति को बुद्धत्वप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। महासंघिकों की दक्षिणापथ में लोकप्रिय शैल एवं चैत्यक शाखाओं ने इस मान्यता को प्रचारित किया कि बोधिसत्व भी सामान्य प्राणी नहीं हैं, क्योंकि वे अलौकिक गुणों से संपन्न हैं। विज्ञान अथवा मन की मूलभूत शुद्ध स्थिति पर भी उन्होंने बल दिया। अर्हत्पद के स्थान पर बुद्धत्व के आदर्श की प्रतिष्ठा, बुद्ध पर देवत्व का आरोप, बोधिसत्व सिद्धांत की उद्भावना तथा विज्ञान की मूलभूत शुद्ध स्थिति की परिकल्पना इस तथ्य की सूचक है कि महासंघिक संप्रदाय महायान का और विशेषकर उसके विज्ञानवाद संप्रदाय का पूर्व रूप था। शुंग-सातवाहन काल में जातकों अथवा अवदानों की लोकप्रियता तत्कालीन शिल्प से प्रमाणित होती है। इनका प्रतिपाद्य विषय सिद्धार्थ द्वारा बुद्धत्वप्राप्ति के उद्देश्य से अपने बहुविध पूर्वजन्मों में पारमिताओं का अनुष्ठान है। सभी बुद्धों को अपनी पूर्वयोनियों में इन पारमिताओं का अनुष्ठान करना पड़ा था। इससे प्रतीत होता है कि पारमिता का सिद्धांत, जो महायान का प्रमुख वैशिष्ट्य है, ई० पू० तृतीय अथवा द्वितीय शताब्दी में अस्तित्व में आ चुका था। सर्वास्तिवादियों ने अवदान साहित्य को विशेष महत्व दिया और 'ललितविस्तर' में इस सिद्धांत का सोदाहरण प्रतिपादन किया गया है। किंतु इन संप्रदायों की यह मान्यता थी कि पारमिताओं की प्राप्ति बहुत ही विरले व्यक्तियों के लिए अभिप्रेत है, सर्वसाधारण के लिए नहीं। महायान ने बुद्ध के देवत्व पर बल दिया और बोधिसत्व एवं पारमिताप्राप्ति का आदर्श जनसाधारण के सामने रखा। महायानी असंख्य बुद्धों एवं बोधिसत्वों के अस्तित्व, देव-देवियों की पूजा तथा मंत्रों के उपयोग में विश्वास करते तथा धर्मशून्यता एवं पुद्गलशून्यता का प्रतिपादन करते हैं। ये सिद्धांत सर्वप्रथम 'अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता' में प्रतिपादित दृष्टिगोचर होते हैं।' 'प्रज्ञापारमिता' का प्रथम चीनी अनुवाद ई० 148 में हुआ। इससे अनुमान होता है कि महायान संप्रदाय ई० प्रथम शताब्दी में अथवा उसके कुछ पूर्व अपने विशिष्ट रूप में अस्तित्व में आ चुका था। 'अष्टसाहसिका प्रज्ञापारमिता' में उल्लिखित एक परंपरा से ज्ञात होता है कि महायान का उदय दक्षिणापथ में हुआ, तदनंतर वह पूर्व में गया और उत्तर में फूला-फला। इससे स्पष्ट है कि ईस्वी प्रथम शताब्दी में कनिष्क की राज्यप्राप्ति के पूर्व महायान उत्तर भारत में काफी लोकप्रिय हो गया था। इसकी पुष्टि उस परंपरा से भी होती है जिसके अनुसार कनिष्क की प्रेरणा से आयोजित चतुर्थ बौद्ध संगीति में पांच सौ 'बोधिसत्वों' ने भाग लिया था।[26] किंतु पूर्वप्रतिष्ठित हीनयान के विरोध का निराकरण कर एक जन आंदोलन एवं लोकधर्म का रूप ग्रहण करने में स्वभावतः महायान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को कुछ और समय लगा। इस कार्य में असंग, नागार्जुन, अश्वघोष, आर्यदेव इत्यादि विद्वानों ने, जो ईस्वी सन की प्रारंभिक चार शताब्दियों में हुए, बड़ा महत्वपूर्ण योगदान किया। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि गुप्त-वाकाटक काल के प्रारंभ तक हीनयान को पछाड़ कर महायान संपूर्ण भारत एवं अधिकांश भारतीय एशिया में व्याप्त हो गया था। इसका यह अर्थ नहीं कि हीनयान भारत से पूर्णतः लुप्त हो गया। उसका अस्तित्व बना रहा, किंतु भारत में उसके अनुयायियों की संख्या महायानियों की तुलना में नगण्य हो गई।[27]

महायान के उदय के पूर्व मानव रूप में भगवान बुद्ध का अंकन दृष्टिगोचर नहीं होता। बोधगया, भरहुत, सांची इत्यादि स्थानों पर स्तूपों की वेदिकाओं एवं तोरणों पर बुद्ध के बोधिप्राप्ति से पूर्व एवं उत्तरकालीन जीवन के विविध दृश्यों का रूपांकन हुआ है, किंतु उनमें बुद्ध की उपस्थिति निरपवाद रूप से चिह्नों के माध्यम से सूचित की गई है। स्पष्टतः उस समय बुद्धप्रतिमा का निर्माण निषिद्ध माना जाता था। किंतु जनसाधारण इससे संतुष्ट नहीं था तथा वह अपने दमित भक्तिभाव की उन्मुक्त अभिव्यक्ति के निमित्त अधिक मूर्त माध्यम पाने के लिए उत्सुक था। ई० प्रथम शताब्दी में मथुरा एवं गंधार में भगवान बुद्ध की मानवीय मूर्ति के निर्माण से इस आवश्यकता की पूर्ति हुई और कुछ ही समय में बुद्धमूर्ति की प्रतिष्ठा एवं पूजा अत्यंत लोकप्रिय हो गई। महायान से इस घटना का अत्यंत निकट का संबंध है। महायान प्रथम बुद्धप्रतिमा के निर्माण के पूर्व ही अस्तित्व में आ चुका था और इसमें संदेह नहीं कि उसने गौतम बुद्ध एवं पूर्वबुद्धों के मानवीय रूप में अंकन के लिए आवश्यक वातावरण तैयार किया।

ऊपर इस परंपरा का उल्लेख किया जा चुका है कि महायान का उद्गम दक्षिणापथ में हुआ था तथा उत्तर में उसे बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई। इस लोकप्रियता एवं समृद्धि के प्रमुख कारणों में से एक स्पष्टतः कुषाणों का उदार आश्रय था। दक्षिण में महायान के प्रभाव का प्रथम मूर्त प्रमाण अमरावती के ईस्वी सन की प्रारंभिक शताब्दियों के शिल्प में उपलब्ध होता है जहां हम बुद्ध का प्रतीक एवं मानवीय दोनों रूपों में अंकन पाते हैं। महाराष्ट्र में इस प्रभाव के अनुभूत होने में कुछ अधिक समय लगा। सातवाहनकालीन गुहालेखों में जिन निकायों का निर्देश उपलब्ध होता है वे सभी हीनयान से संबंधित थे। इस काल के बौद्ध शैलगृहों के शिल्प में कहीं भी बुद्धमूर्ति के दर्शन नहीं होते और वह स्पष्टतया हीनयान से अनुप्रेरित हैं। महायान का स्पष्ट प्रभाव वाकाटक काल के पूर्व कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

अजंता के शैलगृह इस संक्रमण का जैसा स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। छः गुफाएं हीनयान से संबंधित हैं और शेष सभी महायान से।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हीनयानी गुफाओं का निर्माण सातवाहन काल में पूर्ण हो चुका था तथा कुछ शताब्दियों के निष्क्रिय व्यवधान के पश्चात ईस्वी पांचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गुफाओं की खुदाई का काम पुनः आरंभ हुआ। इस उत्तरकालीन निर्माण का प्रेरणास्रोत स्पष्टतः महायान था। प्रस्तुत संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि महायान का एकमात्र स्पष्ट निर्देश बाइसवीं गुफा में चित्रित एक लेख में उपलब्ध होता है[28] जो स्पष्टतः वाकाटकोत्तरकालीन है। यह सत्य है कि कुछ वाकाटकपूर्ण शैल-गृहों में भी बुद्ध का मनुष्य रूप में अंकन दृष्टिगोचर होता है, किंतु ये मूर्तिया एवं चित्र स्पष्टतः उस काल में निर्मित हुए जब महायान ने हीनयान का स्थान ले लिया था।

बौद्ध दर्शन, धर्म, जीवनपद्धति तथा कला का कोई भी पक्ष महायान के प्रभाव से अछूता न रह सका। अजंता के स्थापत्य, शिल्प एवं चित्रकला में महा-यान की प्रेरणा से जो असाधारण परिवर्तन हुआ उसकी विस्तृत चर्चा आगामी अध्यायों में यथास्थान की जाएगी। यहां इस रूपांतरण के केवल उन प्रमुख पहलुओं की ओर संकेत मात्र किया जा रहा है जिन्हें देखकर एक साधारण दर्शक भी अजंता की हीनयान और महायान कला में भेद कर सकता है। हीनयान विहारों का निर्माण केवल भिक्षुओं के निवास के निमित्त किया गया था और उनमें पूजा-अर्चन की कोई व्यवस्था नहीं थी। इस प्रयोजन के लिए चैत्यगृहों का निर्माण किया गया था। इसके विपरीत महायान विहारों में विभिन्न स्थानों पर देवप्रकोष्ठ बनाकर उनमें पूजा के लिए बुद्ध और बोधिसत्व मूर्तियों की प्रतिष्ठा की जाने लगी। हीनयान विहारों की कोठरियों में पत्थर में ही काटकर शय्या का निर्माण किया गया है जबकि महायान विहारों में साधारणतः ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई है, क्योंकि संभवतः भिक्षुओं का जीवन अब उतना कठोर नहीं रह गया था और वे खाट और बिस्तर का उपयोग करने लगे थे। पूर्ववर्ती काल में बुद्ध की प्रतीकपूजा प्रचलित होने के कारण हीनयान चैत्यगृहों में पूजा के लिए केवल औद्देशिक स्तूपों का ही निर्माण किया गया। इसके विपरीत महायानियों द्वारा मूर्तिपूजा के अंगीकार के फलस्वरूप महायान चैत्यगृहों में स्तूप के सम्मुख भाग पर बुद्धमूर्ति निर्मित दृष्टिगत होती है। हीनयान गुफाओं के चित्रों में हम बुद्ध का प्रतीकांकन पाते हैं जबकि महायान चित्रों एवं शिल्प में बुद्धों और बोधिसत्वों का मनुष्य रूप में अंकन प्रचुरता से किया गया है। इतर देव-देवियों का चित्रण एवं शिल्पांकन भी अनेक स्थानों पर दिखाई देता है।

संदर्भ

1. वासुदेवशरण अग्रवाल : पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० 57-58, 76.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

2. जैन ग्रंथों में उल्लिखित सोलह महाजनपदों की सूची में अश्मक का निर्देश नहीं मिलता.
3. भरतसिंह उपाध्याय : बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० 13, 447-49, रीतिलाल एन० मेहता : प्री-बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० 372, दिनेशचंद्र सरकार : स्टडीज इन द जिओग्राफी आफ ऐंशिएंट ऐंड मीडिएवल इंडिया, पृ० 187-90.
4. दिनेशचंद्र सरकार : सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, खं० 1, पृ० 203.
5. पुराणों में इसका नाम सिंधुक, शिप्रक, धिस्मक इत्यादि अनेक रूपों में पाया जाता है, किंतु हाल में प्राप्त कुछ सिक्कों एवं नाणेघाट में प्राप्त एक शीर्षलेख से ज्ञात होता है कि नाम का शुद्ध अथवा प्रचलित रूप सिमुक था
6. इस विषय के सविस्तार प्रतिपादन के लिए देखिए, अजयमित्र शास्त्री : क्वाइनेज आफ दि सातवाहन ऐंड क्वाइंस फ्राम एक्स्कवेशंस, पृ० 103-09.
7. हाल ही में डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने नाणेघाट अभिलेख के सातवाहनों से संबद्ध होने पर संदेह व्यक्त किया है, (स्टडीज इन इंडियन एपिग्राफी, खं० 2, पृ० 59-71). इस मत की समीक्षा के लिए देखिए, वा० वि० मिराशी : वही, खं० 3, पृ० 86-90.
8 इस विषय पर विस्तृत चर्चा के लिए देखिए, अजयमित्र शास्त्री : ऐन आउटलाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृ० 63-111.
9 प्रभावतीगुप्ता द्वारा अपने शासनकाल के तेरहवें वर्ष में दिए गए पूना दानपत्रलेख में उसका उल्लेख 'युवराज दिवाकरसेन की जननी' के रूप में किया गया है. किंतु उसके पुत्र द्वितीय प्रवरसेन के राजत्वकाल के ऋद्धपुर ताम्रपत्र लेख में उसे 'दामोदरसेन-प्रवरसेनजननी' कहा गया है. कतिपय विद्वानों के अनुसार युवराज दिवाकरसेन का निधन भी बाल्यावस्था में ही हो गया और उसके देहांत के अनंतर उसका अनुज दामोदरसेन युवराज बना. दामोदरसेन के निधन के पश्चात उसका अनुज प्रवरसेन सिंहासनासीन हुआ. इसके विपरीत अन्य इतिहासकारों की मान्यता है कि दामोदरसेन प्रवरसेन का ही सिंहासनारोपण से पहले का नाम था.
10. इस नवीन राजधानी का नामकरण स्पष्टत: स्वयं द्वितीय प्रवरसेन के नाम पर किया गया था.
11 कुंतल के अंतर्गत महाराष्ट्र के सतारा, सांगली और कोल्हापुर जिलों तथा कर्णाटक के उत्तर-पश्चिमी भाग का समावेश था.
12. वाकाटक इतिहास एवं अभिलेखों के लिए देखिए, वासुदेव विष्णु मिराशी : वाकाटक राजवंश का इतिहास तथा अभिलेख (अनुवादक, अजयमित्र शास्त्री). प्रस्तुत विवरण में डा० मिराशी की पुस्तक के प्रकाशन के उपरांत हिस्सेबोराला, माहुरझरी, मांढल इत्यादि स्थानों से प्राप्त अभिलेखों का भी उपयोग किया गया है.
13. मुंडपुत्रों की जानकारी हाल ही में प्राप्त आदित्यराज के मल्हारा ताम्रपट्ट से मिली है, विदर्भ संशोधन मंडल वार्षिक (मराठी), 1975, पृ० 1-17; जर्नल आफ दि एपिग्राफिकल सोसाइटी आफ इंडिया, खं० 4, 1977, पृ० 30-41.
14. एपिग्राफिया इंडिका, खं० 27, पृ० 4-9.
15. उसके पुत्र द्वितीय पुलकेशी की ऐहोले प्रशस्ति में उसे 'नल मौर्य कदंब-कालरात्रि' कहा गया है.
16. एपिग्राफिया इंडिका, खं० 6, पृ० 1-12.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

17. इस अभिलेख की विस्तृत चर्चा षष्ठ अध्याय में की गई है.
18. बौद्ध संघ में भेद और विभिन्न निकायों एवं उपनिकायों के उद्गम के विस्तृत निरूपण के लिए देखिए, अजयमित्र शास्त्री : ऐन आउटलाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, अध्याय 2, प्रकरण 1.
19 दशरथ ने बिहार के गया जिले में स्थित नागार्जुनी पहाड़ी पर आजीवकों के लिए कुछ शैलगृहों का निर्माण कराया था, जैसा कि इन गुफाओं में उत्कीर्ण अभिलेखों से ज्ञात होता है, दिनेशचंद्र सरकार : सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, खं० 1, पृ० 77-78.
20 जैन परंपराओं में जैन धर्म के लिए संप्रति द्वारा किए गए कार्यों की चर्चा बड़े प्रशंसापरक शब्दों में की गई है.
21. कुछ विद्वान इससे सहमत नहीं हैं. वस्तुस्थिति जो भी रही हो, इतना अवश्य निश्चित है कि अन्य कारणों के साथ साथ अशोक की पक्षपातपूर्ण धार्मिक नीति के विरुद्ध अन्य धर्मानुयायियों की प्रतिक्रिया की भूमिका भी मौर्य साम्राज्य के पतन में कम महत्वपूर्ण नहीं थी.
22 तारानाथ : भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास (अनुवादक : रिगजिन लुंडुप लामा), पृ० 47.
23. दिनेशचंद्र सरकार : सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, खं० 1, पृ० 102-103.
24. उसके कुछ सिक्कों पर चक्र अंकित पाया जाता है, जिसका समीकरण साधारणतया धर्मचक्र में किया जाता है.
25. इन संप्रदायों के अभिलेखीय संदर्भों के विवेचन के लिए देखिए, अजयमित्र शास्त्री : ऐन आउटलाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, अध्याय 2, प्रकरण 2.
26 महायान के उदय के सविस्तार निरूपण के लिए देखिए, नलिनाक्ष दत्त : आस्पेक्ट्स आफ महायान बुद्धिज्म ऐंड इट्स रिलेशन, विषद हीनयान, पृ० 1-45.
27. चीनी यात्री फाहियान और ह्वेन त्सांग के यात्रा विवरणों से स्पष्ट है.
28. इस लेख के लिए प्रस्तुत पुस्तक का छठा अध्याय द्रष्टव्य है.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3

स्थापत्य

अपनी आवासीय समस्या को हल करने के उद्देश्य से मानव ने सर्वप्रथम प्राकृतिक गुहाओं तथा शिलाश्रयों की शरण ली। तत्पश्चात क्रमशः अपने अनुभव तथा बुद्धि के आधार पर वह घर बनाने की विभिन्न पद्धतियों का आविष्कार करता गया। कच्ची मिट्टी, वृक्ष तथा अनगढ़ पत्थरों का उपयोग पहले चरण में हुआ। पकी ईंटों तथा तराशे पत्थरों का दूसरा चरण स्थापत्य के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण क्रांति का प्रतीक है। किंतु स्थापत्य के क्षेत्र में इस महत्वपूर्ण उत्क्रांति के बावजूद गुफाएं उपयोग में आती रहीं। किंतु अब गुफाएं प्रकृति द्वारा न खोदी जाकर मानव के सबल हाथों तथा मजबूत उपकरणों द्वारा खोदी जाने लगीं और प्राकृतिक गुफाओं के असुविधाजनक वातावरण में स्वयं कष्ट सहने के स्थान पर मानव ने क्रमशः अपनी आवश्यकतानुसार गुफा गढ़ने का कौशल हस्तगत कर लिया।

भारतीय स्थापत्य के इतिहास में ई० पू० तृतीय शताब्दी कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। शैल स्थापत्य का आरंभ भी इसी काल में हुआ। जब उत्तर भारत के सांची, भरहुत, श्रावस्ती, बोधगया प्रभृति स्थानों में ईंटों के स्तूप तथा विहार चिने जा रहे थे उसी समय बिहार की बरावर तथा नागार्जुनी पहाड़ियों में गुफाएं खोदने का कार्य आरंभ हुआ। प्रारंभ में इस कार्य को अशोक तथा उसके उत्तराधिकारियों का उदार राजाश्रय प्राप्त हुआ और जैसे जैसे काल बीतता गया वैसे वैसे धनी श्रेष्ठियों तथा राजकीय अधिकारियों ने भी इसमें हाथ बंटाना आरंभ किया। जैन तथा बौद्ध धर्मों के विस्तार के साथ साथ यह आंदोलन भी देश के विभिन्न भागों में फैलता गया और उड़ीसा (खंडगिरि, उदयगिरि), गुजरात (जूनागढ़, सान) तथा महाराष्ट्र (विशेषतः पश्चिमी भाग) में जहां भी गुफा खोदने लायक पहाड़ दिखाई दिए वहां गुफा खुदवाकर भिक्षुओं को दान में देने की होड़ सी लग गई। प्रकृति द्वारा प्रदत्त मजबूत दक्खनी पत्थर (डकन ट्रैप) से समृद्ध तथा व्यापारिक और राजनीतिक गतिविधियों का प्रमुख केंद्र होने के कारण महाराष्ट्र शैलगृहों के निर्माण में भारत के समस्त प्रदेशों में सबसे श्रेष्ठ स्थान पर है।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, शैलगृह प्रागैतिहासिक काल से ही मानव के आवास के काम आ रहे थे। ईसापूर्व छठी शताब्दी में भी आवास हेतु गुफाओं के प्रयुक्त होने का प्रमाण मिलता है। भगवान बुद्ध ने पांच प्रकार के निवास स्थानों की अनुमति भिक्षुसंघ को प्रदान की थी जिनमें विहार, अड्ढयोग, प्रासाद, हर्म्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं गुहा का समावेश था।[1] बराबर[2] तथा नागार्जुनी पहाड़ियों में क्रमशः तीन तथा चार गुफाएं अशोक तथा उसके पौत्र दशरथ ने आजीवक भिक्षुओं के लिए खुदवाई थीं। ये 'सातघर' के नाम से जानी जाती हैं। पहली गुफा ('कर्ण चौपड़') आयातकार है। इसकी छत अर्धवृत्ताकार (गजपृष्ठाकृति) है तथा प्रवेशद्वार लंबाई की ओर से है। दूसरी 'सुदामा' तथा तीसरी 'लोमश ऋषि' गुफा दो कोष्ठों से युक्त हैं। एक कोष्ठ गोल तथा दूसरा आयताकार है। इन कोष्ठों की छतें क्रमशः अर्धवृत्त एवं ढोलाकार हैं। गुफाओं की छत तथा दीवारें खूब चिकनी और चमकदार हैं। 'सुदामा' गुफा का द्वार सादा आयताकार है, किंतु 'लोमश ऋषि' गुफा के आयताकार द्वार के दोनों ओर कुछ भीतर की ओर झुके हुए (सलामीदार) स्तंभों पर आगे निकला हुआ छज्जा है तथा सिरदल पर कई कमानियां बनी हैं। कमांचों के भीतर स्तूपों की पूजा करते हुए हाथियों की बेल का अलंकरण है तथा उसके ऊपरी भाग में एक जालीदार वातायन था। छज्जे की दोनों भुजाएं तथा बीच में मत्थे पर बनी स्तूपिका पश्चिमी भारत की चैत्यगुफाओं के कीर्तिमुखों का पूर्वरूप हैं। यह मूलतः काष्ठ शिल्प के उदाहरण का अनुकरण प्रतीत होता है।[3]

नागार्जुनी समूह की 'वडथिका' गुफा आयताकार है तथा उसका प्रवेशद्वार चौड़ाई की ओर से है। 'वहियका' नामक दूसरी गुफा में दो आयताकार कोष्ठ हैं जो एक संकरे अंतराल से जुड़े हैं। पहला कोष्ठ लगभग वर्गाकार तथा दूसरे आयताकार कोष्ठ से क्षेत्रफल में लगभग एक चौथाई मात्र है। इसी कोष्ठ में गुफा में प्रवेश होता है। इन दोनों कोष्ठों की छतें समतल हैं। तीसरी गुफा 'विश्वामित्र' दो कोष्ठों से युक्त है। उनमें से पहला आयताकार तथा दूसरा वृत्ताकार है। इनकी छत क्रमशः समतल तथा वृत्ताकार हैं। चौथी गुफा 'गोपिका' का विन्यास लंबगोलाकार हैं और छत ढोलाकार। इसका प्रवेशद्वार लंबाई की ओर बना है। ये चारों गुफाएं अशोक के पौत्र दशरथ के काल में खोदी गई थीं।[4]

शुंग-काण्व काल[5] में उडीसा की खंडगिरि तथा उदयगिरि पहाड़ियों में जैन साधुओं के निवास के लिए पैंतीस गुफाएं खोदी गईं। इसी काल में महाराष्ट्र तथा अन्य प्रदेशों में बौद्ध भिक्षुओं के लिए बड़े पैमाने पर गुफाओं की खुदाई का काम हाथ में लिया गया। महाराष्ट्र के भाजा, अजंता, पितलखोरा, कोंडाणे नासिक, बेडस, कार्ले, कान्हेरी, एलिफेंटा, बंबई, जुन्नर, महाड, कोलाबा, एलोरा आदि में गुफाएं बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं जो संख्या की दृष्टि से भारत के कुल शैलगृहों के दो तिहाई के बराबर हैं।[6]

इन गुफाओं के निर्माण की पद्धति सामान्य स्थापत्य से सर्वथा भिन्न है जिसमें नीचे से निर्माण करते हुए क्रमशः शिखर तक पहुंचा जाता था तथा कार्य पूर्ण होने पर पलस्तर, रंगाई, चित्रकर्म आदि किए जाते थे। अजंता की अपूर्ण गुफाओं के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्ययन से शैल स्थापत्य के विभिन्न चरणों का ज्ञान होता है। सर्वप्रथम कार्य छत से प्रारंभ होता था तथा क्रमशः फर्श तक पहुंचा जाता था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि खुदाई, उकेरी, पलस्तर तथा चित्रांकन के कार्य साथ साथ चलते थे। गुफा क्र० 22 का विहार पूर्ण नहीं हो पाया है, किंतु उसके गर्भगृह की दाईं भित्ति पर मानुषी बुद्धों का सुंदर अंकन मिलता है। इसी भांति गुफा क्र० 4 अपूर्ण होने पर भी चित्रित पाई गई है। गुफा के विन्यास के अनुसार शिल्पी जहां स्तंभ, भित्ति अथवा मूर्ति आदि बनाना हो वह स्थान छोड़कर शेष पत्थर तराश डालते थे। प्रारंभिक खुदाई गेंती से की जाती थी, जबकि गढ़ाई और सूक्ष्म उकेरी का काम टांकी तथा हथौड़ी की सहायता से किया जाता था। वास्तव में शैल स्थापत्य में छत धसकने का भय प्रायः नहीं के बराबर होने के कारण स्तंभों की आवश्यकता नहीं रहती, तथापि अजंता तथा महाराष्ट्र के अन्य स्थानों के शैलगृहों में न केवल स्तंभों की योजना ही की गई है अपितु आरंभिक चैत्यगृहों में तो लकड़ी की कड़ियां भी छत को आधार देने के लिए लगाई हुई दृष्टिगत होती हैं। हीनयान काल के विहारों को छोड़ कर शेष सभी गुफाएं स्तंभयुक्त हैं। इसके मूल में भवन-निर्माण की पद्धति के अंधानुकरण की प्रवृत्ति के साथ साथ इन गुफाओं के निवासियों तथा आगतुंकों को सुरक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करना भी स्थपतियों का उद्देश्य रहा हो सकता है। स्तंभनिर्माण का एक अन्य हेतु गुफाओं की एकरसता दूर कर शिल्प एवं चित्रांकन द्वारा उनकी शोभावृद्धि भी प्रतीत होता है। स्तंभविहीन गुफा जहां खोह अथवा सुरंग का आभास देती है वहीं स्तंभयुक्त गुफा एक विशाल भवन का। प्रारंभिक काल की गुफाओं के स्तंभ काष्ठस्तंभों के अधिक निकट हैं। अजंता की अपूर्ण गुफा क्र० 6 के स्तंभ इस दृष्टि से अवलोकनीय हैं। इसी भांति गुफा क्र० 24 की अपूर्ण स्थिति भी स्तंभों की निर्माणप्रक्रिया के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहां विभिन्न अवस्थाओं में कटे स्तंभ दृष्टिगत होते हैं। अजंता की गुफाओं के स्तंभ मुख्यतः दो कालों में बांटे जा सकते हैं। प्रथम काल के स्तंभ आधार तथा शीर्षकविहीन तथा अठपहलू हैं। दूसरे काल के स्तंभ वर्गाकार आधार, बहुपहलू पिंड—जो अठपहलू से छत्तीस पहलुओं तक के पट्टों में विभाजित पाया जाता है—तथा द्विभुज अथवा चतुर्भुज फलक से युक्त हैं।

शिलालेखों में इन खोदी हुई गुफाओं को कुभा, गुहा, घर, सैलघर (शैलगृह) तथा लेण कहा गया है। छोटी कोठरी को अपवरक या गभ (गर्भ) कहते थे। गुफा स्थापत्य को शैलकर्म (सेलकम्म), खुदाई करने वाले कारीगर को शैलवर्धकि (सेलवढ्ढकी) तथा स्थापत्य के आचार्य को महाशैलकर्मांतिक और मूर्तिकार को महारूपकारक कहते थे। गुफा के सम्मुख भाग पर बने चैत्यवातायन को कीर्तिमुख कहा जाता था। यह गुफा खोदते समय उत्खनित पत्थरादि बाहर निकालने के काम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आता था तथा गुफा पूर्ण हो जाने पर गुफा में प्रकाश और वायुसंचार की दृष्टि से उपयोगी होता था। इसीलिए इसे सूर्यद्वार भी कहा जा सकता है। कीर्तिमुख नाम के पीछे ऐसे कार्यों को महत्व प्रदान करने की भावना निहित थी। ऐसे पारमार्थिक कार्य करने से कीर्ति होती है। अत: ऐसे कार्य 'कीर्ति' कहलाने लगे। इसमें 'कृ' धातु की उपस्थिति भी, जो 'उत्कीर्ण' शब्द में भी पाई जाती है, इन कार्यों के 'कीर्ति' कहलाने में सहायक हुई। ये गुफाएं कीर्ति और वातायन कीर्तिमुख कहलाने लगे। इसी भांति गुफा के सम्मुख स्थापित स्तंभ कीर्तिस्तंभ कहलाने लगे। यह परंपरा मध्यकाल तक प्रचलित रही।[7]

ये गुफाएं प्रयोग के आधार पर दो रूपों में बनाई जाने लगीं। पहले प्रकार की गुफाएं केवल पूजा करने के काम आती थीं। इनमें एक लंब आयताकार कक्ष में, जिसका पिछला छोर अर्धवृत्ताकार होता था, एक चैत्य (स्तूप) बनाया था। इस आधार पर इस प्रकार की गुफाएं चैत्यगृह कहलाने लगीं।

महाराष्ट्र के चैत्यगृह बराबर तथा नागार्जुनी के चैत्यगृहों के विकसित रूप हैं। कांदिवटे (बंबई) गुफासमूह का चैत्यगृह (गुफा क्र० 9) संरचना में लोमश ऋषि तथा सुदामा गुफाओं के सदृश है। अंतर केवल इतना है कि वृत्ताकार कोष्ठ के मध्य में अब स्तूप खोदा गया दृष्टिगत होता है। इसके पश्चात क्रम में भाजा, कोंडाणे, अजंता (गुफा क्र० 9 तथा 10), पितलखोरा बेडसा, अजंता (गुफा क्र० 19 और 26) आदि चैत्यागृह आते हैं। चैत्यगृहों के मुख्य अंग निम्नलिखित हैं :

1. एक आयताकार मंडप जिसका प्रवेशद्वार चौड़ाई की ओर से रहता है।

2. प्रवेशद्वार के ऊपर एक विशाल चैत्यवातायन (कीर्तिमुख)।

3. मंडप का पिछला छोर प्राय: वृत्ताकार रहता है। इसका अपवाद केवल अजंता की गुफा क्र० 9 है।

4. इस छोर पर स्तूप शिला में ही तराश कर बनाया जाता है।

5. स्तंभों की एक पंक्ति मुख्य प्रवेशद्वार के कुछ बाएं से आरंभ होकर स्तूप के पीछे से होती हुई प्रवेशद्वार के दाईं ओर तक आती है।

6. इस स्तंभावलि के कारण मंडप एक नाभि तथा दो वीथियों में विभाजित हो जाता है। इन वीथियों के कारण दो प्रदक्षिणापथों का निर्माण होता है; पहला स्तूप और स्तंभों के मध्य की अंतरंग भ्रमणी तथा दूसरा स्तंभावलि तथा चैत्यगृह की भित्ति के मध्य की बाह्य भ्रमणी।

7. नाभि की छत ऊंची तथा गजपृष्ठाकार अथवा ढोलाकार तथा वीथियों की छत वक्राकार होती है।

8. छतों में लकड़ी की कड़ियां तथा धन्नियां लगाई जाती थीं अथवा उनका प्रस्तर में अनुकरण किया जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

9. आरंभिक काल में स्तंभों का शीर्ष कुछ भीतर की ओर तिरछा पाया जाता है तथा चैत्यवातायन की भुजाएं बाहर की ओर रहती हैं ? जबकि परवर्ती काल में चैत्यवातायन की भुजाएं भीतर की ओर से पूर्ण वृत्ताकार रूप लेती दृष्टिगत होती हैं।

दूसरे प्रकार की गुफाएं भिक्षुओं के निवास के लिए खोदी जाती थीं। एक मुख-मंडप (बरामदा), जो सामने की ओर कुछ स्तंभों पर आधारित रहता था, द्वारा एक बड़े सभामंडप में प्रवेश कर तीनों ओर की दीवारों में कोठरियां खोद दी जाती थीं। ये कोठरियां चौकोर होती थीं। इनमें एक या अधिक भिक्षु निवास करते थे। भिक्षुओं के छोटे आवास प्रारंभ में विहार और बड़े आवास संघाराम कहलाते थे, किंतु कालांतर में यह भेद ही हट गया और भिक्षुनिवास ही विहार कहलाने लगे। अतः इस दूसरे वर्ग की गुफाओं को भी विहार कहा जाने लगा।

इन शैलविहारों का निर्माण संभवतः तत्कालीन ईंटों को चिनकर बनाए गए विहारों के अनुकरण पर किया गया था। गुफाविहार चतुःशाल भवन की भांति संयोजित दृष्टिगत होते हैं तथा इनमें निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती हैं :

1. प्रवेशद्वार एक आयताकार बरामदे (मुखमंडप) में होता है।

2. मध्य में एक बड़ा मंडप (सभामंडप) होता है जिसके तीनों ओर की भित्तियों में भिक्षुओं के निवास के लिए कोठरियां खुदी रहती हैं। ये कोठरियां प्रायः वर्गाकार हैं। भवन में मंडप के स्थान पर आंगन होता है।

3. प्रारंभिक काल की कोठरियों में भिक्षुओं के शयन तथा बैठने के लिए पत्थर में ही काटकर आसन तथा तकिये बनाए गए दृष्टिगत होते हैं। इसलिए इन कोठरियों के द्वार मध्य में न होकर एक बाजू में हैं। महायान काल में ये शयनासन नहीं मिलते। संभवतः इस काल में भिक्षुओं का जीवन अधिक कठोर नहीं था तथा उन्हें काष्ठ चौकी और खाट जैसी वस्तुओं के प्रयोग की अनुमति दे दी गई थी। इन कोठरियों के द्वार लकड़ी के पल्लों से युक्त थे।

4. हीनयान काल के मंडप स्तंभविहीन हैं जबकि महायान काल में स्तंभ बनाए जाने लगे। आरंभ में चार स्तंभों के एक मंडप की रचना से बढ़ते बढ़ते संख्या सोलह स्तंभों (गुफा क्र० 6, पहली मंजिल) तक बढ़ी हुई दिखाई देती है।

5. विहार मूलतः भिक्षुओं के रहने के काम में आते थे। किंतु परवर्ती काल में प्रवेशद्वार के सामने की दीवार में गर्भगृह बुद्ध की प्रतिमा सहित उकेरा जाने लगा अर्थात चैत्य तथा विहार दोनों का समन्वय इन गुफाओं में हुआ।

इन चैत्यगृहों तथा विहारों की रचना में कालानुक्रम से विभिन्न परिवर्तन होते गए। इसमें धार्मिक आंदोलनों का महत्वपूर्ण योगदान था। बौद्ध धर्म के हीनयान तथा महायान संप्रदायों की दार्शनिक पीठिका भिन्न धरातलों पर स्थित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होने तथा दोनों का भिन्न भिन्न कालों में प्रभाव होने के कारण दोनों के चैत्य-गृहों तथा विहारों की रचना में पर्याप्त अंतर है। यह अंतर अथवा विशेषताएं न केवल इन संप्रदायों के आचार-व्यवहार तथा दर्शन को समझने में ही सहायता प्रदान करती हैं, अपितु किसी लिखित या ठोस प्रमाण की अनुपस्थिति में स्थापत्य के कालनिर्णय में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। हीनयान काल ईसापूर्व दूसरी शताब्दी से ईस्वी दूसरी शताब्दी तक तथा महायान काल ईस्वी पांचवीं शताब्दी के मध्य से ईस्वी सातवीं शताब्दी तक विस्तृत माना जाता है।

महाराष्ट्र के भाजा, कोंडाणे, (पीतलखोरा, बेडसा, नासिक, कार्ले तथा अजंता के चैत्यगृह) हीनयान काल के निर्माण हैं। अजंता की नवीं तथा दसवीं गुफाएं इसमें सम्मिलित हैं। इस काल के विहार भी उपर्युक्त सभी स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। अजंता के शैलगृह क्र० 8,12 और 3 इस काल के विहारों के अच्छे उदाहरण हैं। अजंता के चैत्यगृह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। प्रथम तो यह कि एक चैत्यगृह (गुफा क्र० 9) का पिछला छोर अन्य समकालीन चैत्यगृहों की भांति अर्धवृत्ताकार न होकर कोणाकार है, यद्यपि नाभि की छत गजपृष्ठाकार है। दूसरा चैत्यगृह (गुफा क्र० 10) अर्धवृत्ताकार प्रदक्षिणापथ से युक्त है। दूसरे, प्रथम चैत्यगृह की दोनों वीथिकाओं की छत भी वक्राकार न होकर सपाट है। तीसरे, इनमें समकालीन चित्र हैं जो अन्य कहीं उपलब्ध नहीं हैं। और चौथे, परवर्ती काल में इन गुफाओं को महायानियों ने अपने उपयोग में लाने के उद्देश्य से इनकी दीवार, स्तंभ, पादांग तथा चैत्यवातायन पर बुद्ध तथा अवलोकितेश्वर आदि की प्रतिमाएं चित्रित कर लीं अथवा उकेर लीं।

महायान की चैत्य गुफाएं बुद्ध के जीवन प्रसंगों तथा जातकों के अंकन से अलंकृत की गईं।[7] यहां तक कि साधारण स्तूप के स्थान पर बड़े और विभिन्न आकार-प्रकार के अंगों (पीठिकायुक्त मेधियां, ऊपरी मेधी में कई पहलू एवं स्तंभ, दो छोरों से दबा अर्धांड तथा हर्मिका) तथा सम्मुख भाग पर बुद्ध की प्रतिमा से युक्त स्तूपों का निर्माण किया जाने लगा। इस दृष्टि से अजंता की गुफा क्र० 19 तथा 26 महत्वपूर्ण हैं।

विहारों के विकास के अध्ययन की दृष्टि से अजंता की गुफाओं का अपना महत्व है। यहां न केवल हीनयान तथा महायान दोनों कालों की विहार गुफाएं ही उपलब्ध हैं, अपितु इन काल खंडों में भी आवश्यकतानुसार विहार की संरचना में किस प्रकार परिवर्तन होता गया, यह भी इन शैलगृहों के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है।

अजंता की बारहवीं गुफा हीनयानकालीन विहार का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसमें स्तंभहीन सभामंडप के तीनों ओर भिक्षुओं के निवास के लिए कोठरियां

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोदी गई हैं। इसके पश्चात गुफा क्र० 11 को लें जिसमें सभामंडप की छत को सहारा देने के लिए चार स्तंभों का मंडप मध्य में उकेरा गया है। इस काल में प्रतीक के स्थान पर भगवान बुद्ध तथा बोधिसत्वों की पूजा होने लगी थी। अतः गुफा की पिछली भीत के मध्य में एक गर्भगृह बनाकर उसमें भगवान बुद्ध की मूर्ति तराश ली गई। इसके पश्चात सातवीं और छठी गुफाएं आती हैं जिनमें क्रमशः आठ तथा बारह (और सोलह) स्तंभ मंडप के मध्य में बनाए गए दृष्टिगत होते हैं।

अजंता की गुफाओं के कालक्रम के विषय में विद्वानों में मतभेद है। इस बारे में सभी एकमत हैं कि इन शैलगृहों की खुदाई का काम। मोटे तौर से दो कालखंडों में संपन्न हुआ : हीनयान काल और महायान काल। हीनयान गुफाओं (9 एवं 10-चैत्य; 8, 12 एवं 13-विहार) का निर्माण सातवाहन काल में ई० पू० द्वितीय से ई० द्वितीय शताब्दी तक हुआ। लगभग तीन शताब्दियों के अंतराल के अनंतर महायान काल में गुफाएं खोदने का काम पुनः आरंभ हुआ और जैसे जैसे भिक्षुओं की संख्या में वृद्धि होती गई वैसे वैसे गुफाएं भी खुदती गईं। उपर्युक्त पांच गुफाओं को छोड़कर शेष सभी गुफाओं का निर्माण इस कालखंड में संपन्न हुआ। किंतु इन महायान गुफाओं की खुदाई के वास्तविक काल के संबंध में एक मत का अभाव है। साधारणतया प्रचलित मत के अनुसार ई० 450-500 में गुफा क्र० 11,7 और 6 (सभी विहार) का पहला समूह खोदा गया। लगभग आधी शताब्दी बाद अर्थात ई० 550 के आस पास भिक्षुओं की संख्या में वृद्धि होने पर कुछ और विहारों तथा चैत्यगृहों की आवश्यकता का अनुभव हुआ। फलस्वरूप चार नवीन विहार (गुफा क्र० 15-18) तथा एक चैत्यगृह (क्र० 19) खोदे गए। इसी प्रकार क्रम से तीसरे समूह में पांच विहारों (क्र० 21-25) एवं एक विशाल चैत्यगृह (क्र० 26) का निर्माण ई० 550-600 में हुआ और गुफा क्र० 1-5 तक के विहारों का निर्माण ई० 600-625 में। अंतिम समूह, जिसमें गुफा क्र० 27-29 का समावेश है, ई० 625-642 का निर्माण है जो राजनीतिक अस्थिरता का काल था।[8]

हाल ही में वाल्टर स्पिक ने अजंता के महायानकालीन शैलगृहों के लिए एक सर्वथा भिन्न कालक्रम प्रस्तावित किया है। उनके अनुसार सभी महायान गुफाएं लगभग ई० 465-500 के कालखंड में खोदी गईं। न केवल गुफाएं, अपितु उनकी मूर्तियां, चित्र एवं दानपरक अभिलेख सभी वाकाटक काल के हैं। वस्तुतः अजंता के महायान काल का अधिकांश निर्माणकार्य वाकाटकों की वत्सगुलम शाखा के अंतिम नरेश हरिषेण के राजत्वकाल में संपन्न हुआ तथा अधखुदी गुफाओं, अपूर्ण चित्रों तथा अधूरे द्वारों में वाकाटक साम्राज्य के पतन की झलक दिखाई देती है।[9]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किंतु पैंतीस वर्षों का छोटा सा कालखंड चौबीस महायानकालीन गुफाओं की खुदाई एवं शिल्प तथा चित्रों द्वारा अलंकरण के लिए अपर्याप्त प्रतीत होता है। इन गुफाओं के मध्य शैलीगत भेद भी इस बात का सूचक है इनके निर्माण में कुछ शतकों का समय लगा होगा। न केवल स्थापत्य में अपितु शिल्प एवं चित्रों में भी महत्वपूर्ण शैलीगत भेद परिलक्षित होता है। इस काल की विभिन्न गुफाओं में उत्कीर्ण एवं चित्रित लेखों की लिपि भी अपेक्षाकृत विस्तृत कालखंड की द्योतक है। अतः यही मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि अजंता में महायान गतिविधि का आरंभ ई० पांचवीं शती के उत्तरार्ध में हुआ तथा सातवीं शताब्दी के प्रारंभ तक निर्माण एवं चित्रांकन का कार्य चलता रहा। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि अभिलेखीय साक्ष्य से केवल तीन गुफाओं (क्र० 16-17 एवं 26) के निर्माण में राजाश्रय के योगदान की सूचना मिलती है। शेष अधिकांश गुफाओं का निर्माण राजवंशों से असंबद्ध समृद्ध व्यक्तियों की, जिनमें भिक्षुओं का भी समावेश था, उदारता से संभव हुआ। अतः राजवंशों के भाग्य के साथ इन गुफाओं के निर्माण कार्य को जोड़ना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।

अगले पृष्ठों में इन गुफाओं का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। सुविधा की दृष्टि से इस विवरण में उनके वर्तमान क्रम का, अनुसरण किया गया है, न कि निर्माणक्रम का।

गुफा क्र० 1 : अजंता समूह का यह सर्वश्रेष्ठ विहार शैल स्थापत्य का एक अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण है। इस विहार में बरामदा (मुखमंडप), सभामंडप, गर्भगृह तथा चौदह कोठरियां हैं। चैत्यवातायन तथा विभिन्न प्रसंगों के अंकन से युक्त शिल्पपट्टिकाओं तथा भव्य स्तंभों की पंक्ति के कारण इसका गृहमुख अत्यंत आकर्षक बन पड़ा है। दो स्तंभों पर आधारित एक छोटे अर्धमंडप के पूरी तरह नष्ट हो जाने के कारण यद्यपि इसके सौंदर्य को कुछ क्षति पहुंची है तथापि शेष भाग अपना प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। यह मुखमंडप 64′ लंबा, 9′ 3″ चौड़ा तथा 13′ 6″ ऊंचा है।[10] बरामदे के छहों स्तंभ घनाकार आधार पर खड़े हैं। स्तंभ भिन्न भिन्न पद्धतियों की उकेरियों से काटे गए हैं। पहले तथा छठे स्तंभ का पिंड अठपहलू तथा शीर्ष वर्गाकार है। दूसरे तथा पांचवें स्तंभ के आधार से शीर्षक तक का भाग क्रमशः अठपहलू, सोलह पहलू तथा अनेक पहलुओं में तराशा गया है। ऊपरी पहलू कुछ तिरछे काटे गए हैं। दो अलंकृत पट्टिकाओं द्वारा, जो स्तंभ की गोलाई पर परिधि के रूप में अंकित हैं, स्तंभ का पहलूदार भाग तीन भागों में विभक्त है। इस पर आमलक शीर्षक बना है। आमलक के चारों ओर छोटी छोटी कीचक मूर्तियां हैं। तीसरे तथा चौथे स्तंभों की रचना दूसरे स्तंभ के अनुरूप ही है। केवल पहलुओं का संयोजन लंब रूप में किया गया है। इन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तंभों पर एक वर्गाकार चौकी पर आधारित फलक बनाए गए हैं। इनके मध्य भाग पर बुद्ध तथा उनके जीवन के विभिन्न प्रसंग और दोनों ओर उड़ते हुए विद्याधर अंकित हैं। इन छः स्तंभों के अतिरिक्त दोनों ओर दो कुड्यस्तंभ भी बनाए गए हैं। इस बरामदे के दोनों ओर एक एक कोठरी बनाई गई है। सभामंडप में जाने के लिए तीन द्वार बने हुए हैं। मध्य द्वार के दोनों ओर दो वातायन हैं। यह द्वार बहुत सुंदर उकेरियों से सज्जित है। मोहक मुद्रा में खड़ी गंगा तथा यमुना की मूर्तियां, शिल्पांकित ललाटबिंब तथा मानव और लतापत्रकाकृतियों से युक्त द्वारशाखाएं कुशल तक्षण की परिचायक हैं।

सभामंडप 60′ लंबाई और चौड़ाई की वर्गाकार योजना में संयोजित और बीस स्तंभों एवं चार कुड्यस्तंभों पर स्थित है। मंडप के तीनों ओर कुल चौदह कोठरियां खोदी गई हैं। हर कोठरी की पिछली भित्ति में आला बनाया गया है। कोठरी का द्वार अत्यंत संकुचित है। सभामंडप के स्तंभ मुखमंडप के स्तंभों के समान ही अलंकृत हैं। अंतिम पंक्ति के मध्यवर्ती दो स्तंभ अत्यंत आकर्षक ढंग से सज्जित हैं। फलक के मध्य भाग पर विभिन्न प्रतीकों, बुद्ध के जीवन से संबद्ध घटनाओं, जंभल (कुबेर) तथा पशुओं का अंकन है। पिछली भित्ति में प्रवेशद्वार के ठीक सामने गर्भगृह तथा अंतराल बने हुए हैं। गर्भगृह वर्गाकार है तथा उसकी लंबाई-चौड़ाई बीस फुट है। इसमें धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में पद्मासनस्थ भगवान बुद्ध तथा उनके सेवकों की भव्य एवं बहुत उभारदार प्रतिमाएं उकेरी गई हैं। गर्भगृह का प्रवेशद्वार भी संपूर्ण गुफासमूह में अपना अनूठा स्थान रखता है। द्वार के दोनों ओर निचले भाग में पांच फणों के घटाटोप से युक्त नाग द्वारपाल है। ऊपर चार चार कक्ष हैं जिनमें मिथुन मूर्तियां अंकित हैं। ऊपरी कक्षों के परे गंगा तथा यमुना का अंकन है।

अंतराल 10′ लंबा तथा 9′ चौड़ा है। इसके स्तंभों पर शालभंजिका के रूप में सेवक-सेविकाओं सहित खड़ी सुंदर नायिकाएं उत्कीर्ण हैं।

यह विहार गुफा एक समय पूर्णतः चित्रित थी। यद्यपि यहां कोई अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ है, तथापि जंजाल (गुलवाड़ा) ग्राम में स्थित घटोत्कच गुफा से, जो वाकाटक नृपति हरिषेण के अमात्य वराहदेव द्वारा बनवाई गई थी, शैलीगत एकरूपता के आधार पर यह ईस्वी पांचवीं शताब्दी के अंत के आसपास निर्मित मानी जाती है।

गुफा क्र० 2 : यह गुफा भी एक विहार है तथा योजना की दृष्टि से गुफा क्र० 1 की अनुकृति है। किंतु आकारमान की दृष्टि से यह बहुत छोटी है। यह भी बरामदे, सभामंडप, गर्भगृह तथा कोठरियों से युक्त है। बरामदा 46′ 3″ लंबा है तथा इसके दोनों छोरों पर एक एक कोठरी निर्मित है। मुखमंडप के चार पूर्ण एवं दो कुड्य-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तंभ आधारविहीन तथा एक सी शैली के हैं। इन स्तंभों का पिंड आठ, सोलह तथा बत्तीस पहलुओं से अलंकृत है।

सभामंडप 48′ 4″ लंबा तथा 47′ 7″ चौड़ा है। पहली गुफा की भांति इसमें भी बारह स्तंभ हैं। मंडप की दाईं, बाईं तथा पिछली भीत पर गर्भगृह के दोनों ओर कोठरियां खोदी गई हैं। गर्भगृह लगभग 14′ लंबा तथा 11′ चौड़ा है। गर्भगृह तथा सभामंडप के मध्य अंतराल भी है। गर्भगृह का द्वार बहुत सुंदर उकेरियों से सुशोभित है। द्वारशाखा के भीतरी भाग में दोनों ओर पांच पांच प्रकोष्ठ हैं जिनमें से ऊपरी चार में मिथुन खुदे हुए हैं। सबसे निचले प्रकोष्ठों में वामन हैं। बाहरी भाग में भी पांच प्रकोष्ठों की योजना है, किंतु यहां ऊपरी प्रकोष्ठों में पांच फणों के घटाटोप से युक्त नाग तथा शेष चारों प्रकोष्ठों में केवल एक एक मानवाकृति का अंकन है। ललाटबिंब के मध्य में तीन मानवाकृतियां तथा उनके दोनों ओर मिथुन अंकित हैं। अंतराल के स्तंभों पर अंकित मदनिकाएं अजंता से प्राप्त उदाहरणों में अप्रतिम हैं।

गर्भगृह में बोधिसत्वों के मध्य धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बैठे भगवान बुद्ध की प्रतिमा निर्मित है। अंतराल के दोनों ओर स्तंभयुक्त देवकुलिकाएं बनी हुई हैं। दाईं ओर पांचिक तथा हारीति तथा बाईं ओर दो यक्ष प्रतिमाएं (उनमें से एक कुबेर है) अंकित हैं। इन दोनों देवकुलिकाओं का मुखभाग प्रकोष्ठों में उकेरी हुई मानवाकृतियों से अलंकृत है।

इस गुफा का निर्माणकाल भी पहली गुफा के काल के आसपास का है। किंतु शैलीगत विशेषताओं तथा चित्रित अभिलेखों की अक्षररचना से प्रतीत होता है कि इस गुफा के अधिकांश चित्र ईस्वी छठी शताब्दी के पूर्वार्ध में चित्रित किए गए थे।

गुफा क्र० 3 : गुफा क्र० 2 से आगे बढ़ कर कुछ सीढ़ियां चढ़ने पर यह गुफा आती है। यह एक अपूर्ण विहार है। इसका बरामदा 29′ लंबा तथा 7″ चौड़ा है। यह चार पूर्ण तथा दो कुड्यस्तंभों पर आधारित है। सभामंडप में प्रवेश के निमित्त द्वार बनाया गया था, किंतु वह अधूरा छोड़ दिया गया है। बरामदा भी केवल काट कर तराशा गया है और उसके अलंकरण का कोई प्रयास नहीं किया गया।

यह गुफास्थापत्य के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है, क्योंकि इस एवं अन्य अपूर्ण उदाहरणों से शैलगृहों के निर्माण के विभिन्न चरण समझने में सहायता मिलती है।

गुफा क्र० 4 : यह अजंता का सबसे बड़ा विहार है। इसकी योजना बहुत बड़े पैमाने पर आरंभ की गई थी, किंतु यह विहार भी पूर्ण न हो सका।

इस विहार का मुखमंडप (बरामदा) 87′ लंबा तथा 11′ 8″ चौड़ा है तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसकी ऊंचाई 16′ है। बरामदा आठ स्तंभों पर टिका है। ये स्तंभ अठपहलू, वर्गाकार आधार पर स्थित तथा सादे फलक से युक्त हैं। प्रत्येक छोर पर 10′ लंबी और 7′ 6″ चौड़ी एक एक कोठरी है। कोठरियों के प्रवेशद्वार छोटे तथा तीन तीन सीढ़ियों द्वारा गम्य हैं।

सभामंडप में एक मुख्य तथा उसके दोनों ओर बने दो गौण द्वारों द्वारा प्रवेश किया जा सकता है। मुख्य द्वार गुफा क्र० 1 और 2 की भांति किंतु उनकी तुलना में कहीं बड़े पैमाने पर अलंकृत है। मुख्य द्वार एवं गौण द्वारों के बीच वातायन बने हैं। द्वारपाल के रूप में कुब्ज सेवकों से घिरी शालभंजिकाएं अंकित हैं। पादांग का ऊपरी दायां भाग बैठे हुए नंदी से युक्त है। कपोतिका के ऊपरी दाएं भाग में दो बंदर अंकित हैं। मिथुन तथा बुद्ध प्रतिमाओं से युक्त चैत्यवातायन आदि भी उकेरे गए हैं। द्वारशाखाओं के छोर पर व्यालाकृतियां अंकित हैं। मुख्य द्वार तथा दाएं वातायन के मध्य भाग में अवलोकितेश्वर तथा आठ महासंकटों से मुक्ति के लिए उनकी प्रार्थना करते हुए पूजकों का शिल्पांकन हुआ है।

सभामंडप 87′ का वर्गाकार कक्ष है। इसमें अट्ठाइस स्तंभ हैं जिनमें अंतिम पंक्ति के मध्य में स्थित स्तंभों को छोड़ कर शेष सादे हैं। मंडप की बाईं भित्ति में एक तथा दाईं भित्ति में पांच कोठरियां खुदी हैं। पिछली भित्ति में भी गर्भगृह के अतिरिक्त पांच कोठरियां हैं। ये कोठरियां खुदाई की विभिन्न स्थितियों में हैं एवं स्थापत्य के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

अंतराल 21′ लंबा तथा 13′ चौड़ा है। अंतराल की दीवारों पर छः विशाल बुद्ध प्रतिमाएं बनी हुई हैं जिनमें से दो अपूर्ण हैं। गर्भगृह में वज्रपाणि एवं पद्म-पाणि के मध्य धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में आसीन भगवान बुद्ध की भव्य प्रतिमा है। इस मूर्ति की पीठिका पर ईस्वी छठी शताब्दी का एक लेख उत्कीर्ण है जिसके आधार पर इस गुफा का काल निश्चित किया गया है।

इस गुफा में कई स्थानों पर रंगरोगन के अवशेष दिखाई देते हैं जिससे यह स्पष्ट है कि मूलतः यह गुफा भी चित्रित थी। इससे यह स्पष्ट है कि चित्रण के लिए गुफा के निर्माण के पूर्ण होने की प्रतीक्षा न कर खुदाई, शिल्प तथा चित्रांकन का कार्य साथ साथ चलता रहता था।

गुफा क्र० 5 : यह गुफा बहुत निचली सतह पर है। यह विहार निर्माण की अत्यंत प्रारंभिक अवस्था में अपूर्ण छोड़ दिया गया है। बरामदा, जो 45′ 6″ लंबा तथा 8′ 8″ चौड़ा है, चार स्तंभों की योजना से युक्त है। इनमें से एक स्तंभ ही पूर्ण हो पाया है। यह गुफा क्र० 4 स्तंभों के समान सादा किंतु उनसे छोटा और वर्गा-कार आधार से युक्त है।

प्रवेशद्वार द्वारशाखा से युक्त है जो दोनों ओर छः छः विभागों में विभाजित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। प्रत्येक विभाग में विभिन्न मुद्रा में खड़े युगल अंकित हैं। ललाटबिंब के नौ भाग किए गए हैं। मध्य भाग में सेवकों से घिरे बुद्ध तथा शेष भागों में बैठी मिथुनाकृतियां अंकित हैं। सिरदल पर पांच चैत्यवातायनों (कुडू प्रतीक) से अंकित पट्टिका है जो दो कुड्यस्तंभों पर स्थित है। द्वार के ऊपरी भाग में द्वारशाखाओं के बाईं तथा दाईं ओर दो स्त्रियां मकरों पर खड़ी अंकित हैं। वे क्रमशः आम्र तथा अशोक वृक्ष के नीचे कुब्ज सेवकों के साथ उकेरी गई हैं। संभवतः वे नदी देवियां हैं। चिह्नों के अभाव में उनका अभिज्ञान संभव नहीं है। प्रवेशद्वार के बाईं ओर एक वातायन भी बनाया गया है जो बहुत ही अलंकृत है, किंतु भीतरी भाग को खोदने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

गुफा क्र० 6 : पूरे समूह में यह एकमात्र दुमंजली गुफा है। दोनों मंजिलें विहार के रूप में निर्मित हैं। निचली मंजिल का बरामदा पूर्णतः नष्ट हो गया है। वाह्य भित्ति चार विशाल वातायनों[11] से युक्त है। इन वातायनों से सभामंडप में प्रकाश तथा वायु की समुचित व्यवस्था होती थी। सभामंडप 53′ 4″ चौड़ा तथा 54′ 10″ लंबा खुदा है। इसमें चार चार की पंक्तियों में सोलह स्तंभ तथा उनकी सीध में प्रत्येक दीवाल में चार चार पतले कुड्यस्तंभ नियोजित हैं। स्तंभ प्रायः 13′ ऊंचे, सादे तथा लगभग तीन-चौथाई ऊंचाई तक अठपहलू और शेष भाग सोलह पहलुओं से युक्त हैं। अब इनमें से केवल सात स्तंभ खड़े हैं। बाईं तथा दाईं दीवार में पांच पांच कोठरियां हैं। गर्भगृह के सम्मुख एक अंतराल और अंतराल के दोनों ओर क्रमशः तीन तथा दो कोठरियां हैं।

अंतराल 13′ 4″ गहरा है। गर्भगृह 10′ लंबा तथा 15′ 3″ गहरा है। गर्भगृह की पिछली भित्ति में एक ऊंचे सिंहासन पर भगवान बुद्ध की धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में आसनस्थ प्रतिमा उत्कीर्ण की गई है। यह मूर्ति नीले रंग से रंगी गई थी। यह भित्ति से कुछ हट कर उकेरी गई है। इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता बोधिसत्वों के अंकन का अभाव है। गर्भगृह के द्वार पर एक अलंकृत मकरतोरण बना हुआ है जिसके मध्य में दो सेवकों से घिरा एक नाग अंकित है।

इस गुफा के सभामंडप की सम्मुख वीथिका से एक सीढ़ी ऊपर की मंजिल तक गई थी। यह ऊपरी मंजिल के बरामदे में निकलती थी। अब यह सीढ़ी निचले भाग में खंडित हो गई है। सीढ़ी से उतरने के स्थान पर भित्ति में दो स्तूप तथा कई छोटी छोटी बुद्ध मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। बरामदा चार स्तंभों तथा दो कुड्यस्तंभों पर आधारित था। अब मात्र एक कुड्यस्तंभ अवशिष्ट है। बरामदे के दोनों ओर नक्काशीयुक्त स्तंभोंवाले प्रकोष्ठ हैं। इन प्रकोष्ठों में कोठरियां बनाई गई हैं। इनके प्रवेशद्वार साधारण ढलाई के हैं तथा इनके ऊपरी भाग में बुद्ध तथा स्तूप के अर्धचित्रों का अंकन है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभामंडप 53′ चौड़ा 50′ गहरा तथा 11′ 3″ ऊंचा है। यह बारह स्तंभों के वर्गाकार संयोजन से युक्त है। स्तंभ वर्गाकार आधार, अष्टकोणी मध्य भाग, चौपहली चौकियों तथा फलक से सज्जित हैं। फलक बुद्ध प्रतिमाओं से अलंकृत हैं। बाईं तथा दाईं दोनों ओर पांच पांच तथा अंतराल के दोनों ओर एक एक कोठरी है। बाईं ओर की पहली तथा तीसरी कोठरी के पीछे एक एक कोठरी और खोदी गई है। इनमें बुद्ध मूर्तियां हैं।

अंतराल 18′ चौड़ा तथा 16′ 6″ गहरा है। अंतराल, गर्भगृह तथा सभामंडप की भित्तियों पर विभिन्न मुद्राओं में बुद्ध की मूर्तियां उत्कीर्ण की गई हैं। सम्मुख वीथिका का गृहमुख हाथियों की पंक्ति से अलंकृत है। अंतराल की बाईं भित्ति में उत्कीर्ण एक मूर्ति को चूने अथवा जिप्सम से इस भांति पोता गया है कि वह संगमरमर की झलक देती है। यह विहार चित्रयुक्त था, किंतु अब बहुत कम चित्र शेष हैं। अंतराल में ही बाईं भित्ति में बुद्ध के अर्धचित्र के समीप घुटने टेके हुए एक उपासक का सुंदर चित्र अंकित है। यह विहार कुछ अपूर्ण ही छोड़ दिया गया प्रतीत होता है।

गुफा क्र० 7 : यह विहार अजंता के अन्य विहारों से भिन्न है। इसमें दो बरामदे हैं जो स्तंभयुक्त मंडपों की भांति खोदे गए हैं। इनके सम्मुख भाग में दो विशाल अठपहलू स्तंभ हैं जो गुफा क्र० 2 के बरामदे के स्तंभों के अनुरूप हैं। ये मंडप जिस बरामदे में स्थित हैं उसकी लंबाई-चौड़ाई क्रमशः 62′ 10″ × 13′ 7″ तथा 13′ 6″ है। सभामंडप का निर्माण नहीं हुआ है। पिछली दीवार में अंतराल और गर्भगृह तथा पांच कोठरियां बनी हैं। बरामदे के दोनों छोरों पर कुछ ऊंचाई पर स्तंभयुक्त मंडप है जो तीन कोठरियों की ओर खुलता है। गर्भगृह में बुद्ध वरद मुद्रा में बैठे अंकित हैं। सिंहासन का दोनों ओर की भित्तियों में विस्तार कर आठ आठ आसनस्थ बुद्ध अंकित किए गए हैं। इसी के दोनों ओर तीन तीन ऊंचे स्थानक बुद्ध अंकित हैं।

अंतराल के दोनों ओर भी छोटी छोटी बुद्ध प्रतिमाएं स्थानक अथवा आसनस्थ मुद्रा में कई पंक्तियों में खोदी गई हैं। वे कमल पर खड़े हैं तथा उनके मध्य में कमल के पत्ते अंकित हैं। मध्य के सबसे नीचे के कमल की नाल नागों द्वारा पकड़ी बताई गई है। गर्भगृह के द्वार पर भी बुद्ध मूर्तियां अंकित हैं। यह गुफा मूलतः पूर्णतया चित्रित थी, किंतु अब ये चित्र प्रायः नष्ट हो गए हैं। बाईं ओर का मंडप तथा कुछ कोठरियां अपूर्ण हैं।

गुफा क्र० 8 : सबसे निचली सतह पर निर्मित होने के कारण इस विहार का अधिकांश भूस्खलन से नष्ट हो गया है। इसका सभामंडप 32′ 4″ चौड़ा, 17′ गहरा तथा लगभग 10′ ऊंचा है। दोनों ओर एक एक तथा अंतराल के दोनों ओर दो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो कोठरियां है । गर्भगृह में मूर्ति नहीं है । यह नवीं गुफा की समकालीन है ।

गुफा क्र० 9 : यह गुफा अजंता समुदाय के हीनयान संप्रदाय से संबंधित चैत्यगृहों में से एक है । आयताकार विधान में अत्यंत सादी रचना का यहां दर्शन होता है । इसकी प्रदक्षिणावीथी की छत सपाट है जबकि तत्कालीन स्थापत्य में गजपृष्ठाकार छत प्रयुक्त होती थी । इसका पिछला छोर भी अर्धवृत्ताकार न होकर कोणाकृति है । इस गुफा का गृहमुख एक 12′ ऊंचे चैत्यवातायन से युक्त है । यह गवाक्ष मूलतः लकड़ी की जाली के काम से अलंकृत था । वातायन के ऊपर तथा नीचे तीन पंक्तियों में चैत्यवातायनों (अथवा गवाक्षों) का सुंदर अंकन है । सम्मुख भित्ति में दो वातायनों के मध्य सादा प्रवेशद्वार है । मुख्य वीथिका अथवा नाभि की गजपृष्ठाकार छत के नीचे मूलतः लकड़ी की घरनें लगाई गई थीं, जो कालांतर में निकाल दी गईं । इन्हें फंसाने के लिए बनाया गया छेद अब भी विद्यमान है ।

चैत्यमंडप 45′ गहरा, 22′ 9″ चौड़ा तथा 23′ 2″ ऊंचा है । तेइस स्तंभों की दुहरी पंक्ति—जो स्तूप के दोनों ओर समानातंर है तथा पिछले भाग में एक अर्धवृत्त बनाती है मंडप को तीन भागों (नाभि एवं उसके दोनों ओर दो वीथियां) में विभाजित करती है । स्तंभ 10′ 4″ ऊंचे तथा भाजा एवं बेडसा की गुफाओं के स्तंभों की भांति कुछ भीतर की ओर झुके हुए हैं । अर्धवृत्त के मध्य में लगभग 7′ व्यास का स्तूप बना हुआ है । इसका लगभग 5′ ऊंचा अधिष्ठान अत्यंत सादा है । अंड की ऊंचाई 4′ है तथा व्यास 6′ 4″ । इसके ऊपर लगभग 1′ 3″ ऊंची वर्गाकार हर्मिका बनी है जिसपर वेदिका अंकित है । इसका ऊपरी भाग क्रमशः बढ़ते आकार की छः भूमियों से बनाया गया है । इसके मध्य में एक यष्टि फंसा कर लकड़ी की छत्रावलि लगाई गई होगी, जैसाकि कार्ले की गुफा में प्राप्त उदाहरण से स्पष्ट है ।

यह गुफा ईसा पूर्व पहली शताब्दी में बनाई गई थी, जैसाकि अभिलेखीय प्रमाण से स्पष्ट है । पूरी गुफा चित्रों से अलंकृत थी । मूलतः इसमें हीनयान मान्यता के अनुसार बुद्ध का प्रतीक रूपों में अंकन किया गया था । परवर्ती काल में स्तंभों और दीवारों पर मूल चित्रों के ऊपर नए चित्र अंकित किए गए तथा कई बुद्ध मूर्तियां उत्कीर्ण अथवा चित्रित की गईं ।

गुफा क्र० 10 : पिछली गुफा की भांति यह भी चैत्यगृह है तथा अजंता गुफासमूह में सबसे प्राचीन मानी जाती है ।[12] योजना में यह भी सामान्यतया गुफा क्र० 9 के समान है । एकमात्र भेद यह है कि इसका पिछला छोर और वीथिकाओं की छत अर्धवृत्ताकार है और इसका आकार भी काफी बड़ा है । इसका भव्य गृहमुख, विशेषतः चैत्यवातायन, प्रथम दृष्टि में ही सम्मोहित कर लेता है । ई० 1819 में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मद्रास रेजिमेंट के अधिकारियों को यही गुफा सर्वप्रथम दिखाई दी थी। गुफा का सामने का भाग अब पूर्णतया नष्ट हो गया है। यह चैत्य 41′ चौड़ा तथा 95′ 6″ गहरा उकेरा गया है तथा इसकी ऊंचाई 36′ है। सादे अठपहलू उंतालीस स्तंभों की रचना नवीं गुफा के समान ही की गई है। स्तंभों में से अधिकांश अब खंडित हो गए हैं। ये स्तंभ 14′ ऊंचे हैं तथा इनपर 9′ 6″ ऊंचाई का छताधार है जिस पर 12′ ऊंची लगभग 23′ 6″ विस्तृत गजपृष्ठाकृति छत खोदी गई हैं। भाजे, कोंडाणे, कार्ले, बेडसा तथा पितलखोरा के चैत्यगृहों की भांति इस छत के भीतरी भाग में भी लकड़ी की कड़ियों का उपयोग किया गया है। प्रदक्षिणा वीथी लगभग 6′ चौड़ी है तथा इसकी छत गजपृष्ठाकृति है। छत की कड़ियां प्रस्तर में ही तराशी गई हैं।

स्तंभों के अर्धवृत्त में स्थित स्तूप अत्यंत सादा है। 15′ 6″ व्यास के अधिष्ठान पर अर्धांड बनाया गया है। यह अर्धांड अर्धगोल से कुछ अधिक बड़ा है तथा स्तूप के विकासक्रम में एक चरण सूचित करता है। स्तूप पर हर्मिका का अंकन है जो बहुत कुछ नवीं गुफा के चैत्य के समान ही है।

इस गुफा में उत्कीर्ण एवं चित्रित लेखों से ज्ञात होता है कि इसके निर्माण में वासिष्ठीपुत्र कटहादि, बहाल के कण्हक तथा पैठण के धर्मदेव ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। इन लेखों की अक्षररचना के आधार पर इस गुफा का निर्माणकाल ईसापूर्व दूसरी शताब्दी माना गया है। इस गुफा की भित्ति पर उत्कीर्ण एक अन्य लेख से यह स्पष्ट है कि मूलतः इस गुफा को चित्रित करने की योजना नहीं थी। कुछ समय पश्चात जब भिक्षुओं की संख्या में वृद्धि हुई और एक और चैत्य (गुफा क्र० 9) बनवाया गया तब दोनों को चित्रित किया गया। इस गुफा में प्राप्त एक चित्रित अभिलेख तथा दोनों चैत्यों के चित्रों की शैलीगत समानता के आधार पर उक्त विधान की पुष्टि होती है। इस गुफा में भी कई स्थानों पर उत्तरकालीन चित्र दृष्टिगत होते हैं। अगली गुफा से इसे जोड़नेवाले छोटे से दर्रे की पिछली दीवार पर भद्रासन में बैठे बुद्ध, दाईं ओर की दीवार पर अनुयायियों से घिरे अवलोकितेश्वर तथा बाईं ओर की भित्ति पर समपाद में हाथ में कमल लिए खड़ी एक देवी तथा बुद्ध की अनेक मूर्तियां उकेरी गई हैं।

गुफा क्र० 11 : यह एक साधारण विहार है। इसके स्तंभ ऊंचाई में कम-अधिक तथा अविकसित हैं, कोठरियों का संयोजन अनियमित और दीवारें टेढ़ी-मेढ़ी हैं तथा गर्भगृह के साथ अंतराल नहीं बनाया गया है। इनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि यह महायान काल की आरंभिक गुफाओं में से एक है।

इस विहार का बरामदा चार सादे स्तंभों पर स्थित है। स्तंभ वर्गाकार आधार, अठपहलूदार पिंड तथा फलकयुक्त हैं। बरामदे के दोनों ओर एक एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोठरी है। सभामंडप 37′ चौड़ा तथा 28′ गहरा है। इसकी ऊंचाई 10′ है। यह भी चार अठपहलूदार स्तंभों पर टिका है, जो अत्यंत अनगढ़ और भद्दे हैं। महायानीय स्थापत्य में सभामंडप में स्तंभों के नियोजन का संभवतः यह प्रथम अवसर था। सभामंडप का प्रवेशद्धार अन्य विहारों की तुलना में सादा है। गवाक्ष दो स्तंभों की योजना कर तीन भागों में विभक्त किए गए हैं।

मंडप की बाईं तथा पिछली भित्ति में तीन तीन कोठरियां खुदी हैं। दाईं दीवार की पूरी लंबाई में एक बेंच बनी हुई है। जैसाकि आरंभ में कहा जा चुका है, अंतराल यहां अनुपस्थित है। गर्भगृह में एक अपूर्ण स्तूप के सम्मुख भाग पर धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बैठे बुद्ध का अंकन भी अधूरा ही छोड़ दिया गया है। बुद्ध के सिंहासन का अधिष्ठान घुटनों के बल बैठे एक उपासक से अंकित है। बाईं दीवार में कुछ ऊंचाई पर एक प्रच्छन्न कोष्ठ बनाया गया है, संभवतः कीमती वस्तुएं रखने के उद्देश्य से।

यह गुफा पूर्णतः चित्रित थी। बरामदे की छत तथा भित्तियों पर अब भी पशु, पक्षी, लतापत्रक, ज्यामितीय आकृतियां तथा बोधिसत्व आदि का अंकन दृष्टिगत होता है। गुफा क्र० 1 के एक फलक पर उत्कीर्ण चार शरीर तथा एक मुखवाले हरिण का यहां चित्रांकन प्रस्तुत किया गया है, जो महत्वपूर्ण है। यहां दो चित्रित अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनसे विदित होता है कि इस गुफा का निर्माण ईस्वी पांचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था।

गुफा क्र० 12 : अजंता के हीनयान काल के विहारों में यह संभवतः सबसे प्राचीन है तथा इसका निर्माण गुफा क्र० 10 के साथ साथ हुआ प्रतीत होता है। यहां का स्थापत्य सादा है। इस संघाराम का अग्रभाग और बरामदा नष्ट हो गया है। अब केवल 36′ 3″ लंबाई-चौड़ाई का एक वर्गाकार सभामंडप ही शेष है जिसके तीन ओर की भित्तियों में चार चार के क्रम से बारह कोठरियां खुदी हुई हैं। इनमें से ग्यारह कोठरियों में चट्टान में काटे गए दो दो शयनासन हैं जिनपर तकिये भी बने हुए हैं। तत्कालीन साहित्य में ऐसे भिक्षु आवासों को गर्भशाला कहा गया है। इन कोठरियों अथवा गर्भशालाओं के द्वार लकड़ी के पल्लों से युक्त थे, जैसाकि पत्थर में कटी हुई चूलों से प्रमाणित होता है।

सभामंडप की भित्तियों का गर्भशालाओं के द्वार के ऊपर का भाग चैत्य-वातायनों तथा उन्हें जोड़नेवाले वेदिका अंकनों से सजाया गया है। दाईं ओर की भित्ति असीरियाई प्रतीकांकनों से युक्त है। दाएं कोने की कोठरी के बाईं ओर पिछली भित्ति पर ब्राह्मी लिपि में एक लेख उत्कीर्ण है इससे यह ज्ञात होता है कि यह गुफा घनामदंड नामक एक व्यापारी द्वारा दान में दी गई थी। यह विहार एक समय पूर्णतः चित्रों से अलंकृत था, किंतु अब यहां कुछ भी शेष नहीं रह गया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। यह भिक्षुओं के एकत्र होने के लिए उपस्थानशाला का काम देता था।

गुफा क्र० 13 : इस विहार का समावेश भी हीनयान गुफासमूह में होता है। इसका अग्रभाग नष्ट हो गया है। संभवतया आरंभ में यह एक भिक्षु के लिए बनाई गई अपवरक अथवा कोठरी थी जिसे बढ़ती हुई भिक्षुसंख्या के कारण बाद में विस्तृत कर दिया गया। सभामंडप 13′ 9″ चौड़ा, 16′ 6″ गहरा तथा 7′ ऊंचा है। इसकी तीनों दीवारों में कुल सात कोठरियां हैं बाईं ओर की भित्ति में तीन तथा पिछली और दाईं ओर की भीतों में दो दो। सभी कोठरियों में शयनासन बने हुए हैं, जो आरंभिक शैल विहारों की एक विशेषता है। इस विहार में चित्रण का कोई भी चिह्न दृष्टिगत नहीं होता।

गुफा क्र० 14 : यह विहार पूर्ववर्णित गुफा क्र० 13 के ऊपरी भाग में खोदा गया है तथा एक प्रचीन सोपानमार्ग से चढ़कर एक अपूर्ण गुफा से होकर प्रवेश्य है। इसका बरामदा (63′ चौड़ा; 11′ गहरा तथा 9′ ऊंचा) सामने बने हुए दो कुड्य-स्तंभों तथा छः चौपहलू स्तंभों पर टिका हुआ है तथा इसके दोनों ओर एक एक कोठरी बनी हुई है। सभामंडप में प्रवेश के लिए एक मुख्य तथा दो छोटे द्वार निर्मित हैं जिनके बीच में वातायन बने हैं।

मध्य द्वार के ऊपरी कोने सेवकों के साथ अंकित सुंदर शालभंजिकाओं से अलंकृत हैं। इस विहार का संयोजन बड़े पैमाने पर किया गया था, किंतु किसी कारण अपूर्ण ही छोड़ दिया गया।

गुफा क्र० 15 : इस विहार का बरामदा लगभग 30′ चौड़ा तथा 6′ 6″ गहरा है। इसमें दो पूर्ण तथा दो कुड्यस्तंभ थे जो अब नष्ट हो गए हैं। एक स्तंभ के अवशिष्ट भाग से स्पष्ट है कि ये स्तंभ गुफा क्र० 1 तथा 2 की भांति आठ, सोलह और फिर बत्तीस पहलुओं के अलंकरण से युक्त थे। द्वारशाखा सादी है। ललाट-बिंब पर मध्य में नागफणों के मंडप में एक स्तूप का अंकन है। इसके ऊपर के सिरदल के मध्य में दोनों ओर अत्यंत यथार्थ रूप में उत्कीर्ण एक एक कपोतयुगल से घिरा एक चैत्यवातायन तथा कपोतों के पश्चात दोनों ओर दो दो चैत्यवातायन अंकित हैं। द्वारशाखा के निचले भाग में कीचक बने हैं। इनके ऊपर क्रमशः पूर्ण-घट, स्थानक पुरुषाकृति, स्तंभशीर्ष तथा मकरारूढ़ देवियों की मूर्तियां अंकित हैं।

सभामंडप प्रायः वर्गाकार है। इसकी लंबाई तथा गहराई 34′ और ऊंचाई 10′ 2″ है। एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य यह है कि इसमें एक भी स्तंभ नहीं है। बरामदे के दोनों छोरों पर एक एक तथा सभामंडप की दीवारों में चार चार कोठरियां खोदी गई हैं। अंतराल में दो कुड्य तथा दो पूर्ण स्तंभ हैं। ये स्तंभ वर्गाकार आधार तथा क्रमशः आठ और सोलह पहलूदार पिंड से युक्त हैं।

गर्भगृह में आसनस्थ एक बुद्ध प्रतिमा है। यह प्रतिमा सिंह तथा धर्मचक्र से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंकित अधिष्ठान तथा उड़ते गंधर्वों के साथ पिछली भित्ति में उत्कीर्ण की गई है।

गुफा क्र० 15 (अ) : गुफा क्र० 14 तथा 15 के मध्य की सीढ़ियों से नीचे उतरने पर दाईं ओर एक छोटा सा संघाराम दृष्टिगत होता है। इसकी क्षतिग्रस्त गृहमुख-भित्ति मूलतः वेदिका तथा उसके ऊपर चैत्यवातायनों से अलंकृत थी। इस भित्ति में एक ही द्वार है जिससे सभामंडप में पहुंचा जा सकता है। इस सभामंडप के तीनों ओर एक एक कोठरी बनाई गई है। कोठरियों के द्वार के ऊपरी भाग चैत्यवातायनों, वेदिका कृतियों तथा कपिशीर्ष पट्टिकाओं से अंकित हैं। संकरी कोठरियां एक ओर द्वार तथा शेष तीनों भितियों की ओर शयनासन के रूप में प्रयुक्त होने वाले चबूतरों से सज्जित हैं। ये त्रिगर्भशाला के नाम से जानी जाती हैं। बाईं ओर की कोठरी में एक चबूतरे में एक लंबगोल आला खोदा गया है।

इस गुफा का प्रवेशद्वार जानबूझकर ईंटों से चिन दिया गया था।

गुफा क्र० 16 : 15 (अ) क्रमांक की गुफा के आगे एक द्वार है जिसके दोनों ओर हाथी बने हुए हैं। यहां से एक सोपानमार्ग सोलहवीं गुफा में जाता है। यह अजंता के सुंदरतम विहारों में से है। जैसाकि इस गुफा में उत्कीर्ण एक लेख से ज्ञात होता है। इसका निर्माण वाकाटकनरेश हरिषेण के अमात्य वराहदेव ने अपने माता-पिता के पुण्योपचय के हेतु करवाया था। इस लेख में प्रस्तुत विहार के विभिन्न अंगों यथा : द्वार, वातायन, शिल्पांकन तथा चित्रों (सुवीथि) का रम्य वर्णन दिया गया है जिनका अभिज्ञान हूबहू किया जा सकता है।

गुफा के बाहर पानी की टांकी तथा अत्यंत प्रभावशाली रूप में अंकित नागराज की प्रतिमा है। इनकी चर्चा पूर्वचर्चित अभिलेख में आई है (प्रकामांबुमहानिधानं नागेन्द्रवेश्यादिभिरप्यलंकृतम्,पं-20)। गुफा का बरामदा 65′ चौड़ा तथा 10′ 8″ गहरा है। इसके सम्मुख भाग में दो कुड्यस्तंभ तथा छः पूर्ण स्तंभ थे जिनमें से अब केवल एक स्तंभ शेष है। ये स्तंभ अठपहलू तथा शीर्ष फलक से युक्त थे। सभामंडप में प्रवेश के लिए तीन द्वार हैं जिनके मध्य में एक एक वातायन बनाया गया है। मध्यद्वार के दोनों ओर कुड्यस्तंभों के ऊपर मकरों के सिर पर खड़ी हुई देवियां अंकित हैं।

सभामंडप की सम्मुख वीथिका चौड़ाई में मंडप के शेष भाग से कुछ अधिक (74′) है और इसकी छत लकड़ी की छत के अनुकरण पर बनाई गई दृष्टिगत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि छत मयालों तथा कड़ियों से युक्त है।

सभामंडप 66′ 3″ गहरा तथा 15′ 3″ ऊंचा है। छत बीस खंभों पर आश्रित है। इस विहार में कुल सोलह कोठरियां हैं—बरामदे के छोरों पर एक एक, बाईं तथा दाईं भित्ति में छः छः तथा पिछली भित्ति में दो। सभामंडप से सीधे गर्भगृह में प्रवेश किया जा सकता है। अंतराल की अनुपस्थिति तथा गर्भगृह के दोनों ओर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो प्रकोष्ठों का निर्माण स्थापत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इन दोनों प्रकोष्ठों तथा गर्भगृह के मध्य दो दो स्तंभों तथा दो दो कुड्यस्तंभों का निर्माण किया गया है। गर्भगृह में बुद्ध की धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में प्रलंबपादासनस्थ भव्य प्रतिमा है जिसके चारों ओर प्रदक्षिणापथ बनाया गया है।

इस गुफा में वाकाटक काल के श्रेष्ठ चित्र अंकित मिले हैं। अधिकांश चित्र आज भी सुरक्षित हैं।

गुफा क्र० 17 : यह विहार भी पूर्वोक्त गुफा के समान संयोजित है, किंतु यहां स्थापत्य तथा शिल्प का अधिक परिष्कृत रूप दृष्टिगत होता है। बरामदा छः सादे अठपहलू स्तंभों पर टिका है। स्तंभों के आधार पीठिकायुक्त हैं तथा शीर्ष कोण शीर्षों से युक्त है।

सभामंडप में प्रवेश हेतु तीन द्वारों की योजना है जिनके मध्य में दो वातायन बने हुए हैं। मंडप 63′ 8″ चौड़ा तथा 62″ गहरा और 13′ ऊंचा है और इसकी छत बीस अठपहलू स्तंभों पर आधारित है। सम्मुख एवं पिछली पंक्तियों के दो मध्यवर्ती स्तंभ अत्यंत अलंकृत हैं तथा पिछली पंक्ति के दो मध्यवर्ती स्तंभों पर अधिकतम अलंकरण पाया जाता है। इनकी पीठिका एक दूसरे की ओर पीठ कर बैठे हुए आठ सिंहों पर, जिनके केवल चार मुख हैं, टिकी हैं।

इस गुफा में अंतराल बनाया गया है, जो गुफा क्र० 16 में अनुपस्थित है। इसके सम्मुख भाग में दो आकृतियां उकेरी गई हैं। गर्भगृह 17′ 8″ चौड़ा तथा 20′ गहरा है। पिछली भित्ति में बुद्ध की विशाल प्रतिमा उत्कीर्ण है जिसके दोनों ओर दो परिचारक तथा चामरधारी अंकित हैं। बुद्ध के सिर के दोनों ओर माला लिए उड़ते हुए गंधर्व हैं। सदा की भांति बुद्ध धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में पद्मासनस्थ बैठे उत्कीर्ण हैं। गुफा क्र० 16 की भांति इस गर्भगृह के दोनों ओर प्रकोष्ठ नहीं पाए जाते।

गर्भगृह का प्रवेशद्वार अनेक खंडों में उत्कीर्ण लतापत्रक, बुद्धप्रतिमा, द्वारपालिका, नक्काशी काम, बटी हुई रस्सी की आकृति, कुड्यस्तंभ एवं कमल की पंखुड़ी इत्यादि से बड़े पैमाने पर अलंकृत है। द्वार के ऊपरी दोनों कोनों पर उत्कीर्ण मकरारूढ़ देवियां विशेष रूप से आकर्षक हैं। अंतराल के स्तंभों एवं कुड्यस्तंभों की सज्जा भी बड़ी ही सुंदर बन पड़ी है।

इस विहार में कुल उन्नीस कोठरियां हैं। इसमें अंकित चित्र भी विश्व की चित्रकला में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इस गुफा का निर्माण वाकाटक नरेश हरिषेण के एक मांडलिक ने करवाया था। इस प्रकार इस शैलगृह का काल भी गुफा क्र० 16 के सदृश है।

गुफा क्र० 18 : इस गुफा का केवल 19′ 4″ चौड़ा तथा 8′ 10″ गहरा मंडप ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोदा गया है। इसमें केवल दो स्तंभ हैं जिनका आधार पीठिकायुक्त तथा यष्टि अठपहलू है। यह संभवत: अगली गुफा में प्रवेश हेतु मार्ग के रूप में उपयोग के लिए अभीष्ट था।

गुफा क्र० 19 : यह गुफा महायानकालीन शैल चैत्यगृहों के श्रेष्ठतम उदाहरणों में गिनी जाती है। आकार में छोटी (24′ चौड़ी, 46′ लंबी और 24′ 4″ ऊंची) होते हुए भी इसके विभिन्न अंगों का विन्यास अत्यंत सुंदर एवं सानुपातिक है। यह पूर्णत: पत्थर को काटकर बनाए हुए चैत्यगृह का प्रथम उदाहरण है। छत की तीलियों और धन्नियों तथा स्तूप की छत्रावलि में यद्यपि काष्ठ शिल्प का अनुकरण दृष्टिगत होता है, तथापि ये सभी चट्टान में ही काट कर बनाए गए हैं। इस प्रकार इस गुफा में काष्ठ शिल्प का शैल शिल्प में रूपांतरण पूर्णता को प्राप्त हो चुका है। यह चैत्यगृह महायान के अंतर्गत बौद्ध आचार-विचार एवं स्थापत्य में हुए परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है।

यद्यपि इसकी योजना हीनयान चैत्यगृहों (गुफा क्र० 9 और 10) के समान है, तथापि शिल्प एवं स्थापत्य का सुंदर समन्वय, सम्मुख भाग में तथा भीतर अलंकरण अभिप्रायों एवं मूर्तियों का समुचित एकीकरण तथा बुद्ध का मनुष्य रूप में अंकन आदि बातें इसे हीनयान चैत्यगृहों से पृथक करते हैं।

सामने आंगन के दोनों ओर एक एक देवकुलिका खुदी है जिसकी बगल में एक एक प्रकोष्ठ बना है। दाईं ओर की देवकुलिका के स्तंभों का अलंकरण बहुत सुंदर है तथा फलों और लतापत्रक से उफनते हुए पूर्णकलश का अंकन तो बहुत ही आकर्षक है। गुफा में केवल एक प्रवेशद्वार है जहां हम दो स्तंभों पर आधारित एक अर्धमंडप से होकर पहुंचते हैं। इसका गृहमुख अत्यंत भव्य एवं आकर्षक है। उसके ऊपरी भाग में एक विशाल चैत्यवातायन है जिसके दोनों ओर भारी भरकम यक्षों का अंकन है। सम्मुख भाग तथा द्वार के दोनों ओर की दीवारों पर बुद्ध की कई आसन अथवा स्थानक मूर्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। इनमें से द्वार के दोनों ओर खड़े हुए बुद्ध, जिनके सिर के ऊपर आकाशचारी गण अलंकृत मुकुट लिए हुए अंकित हैं, विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, क्योंकि ये मगध एवं बंगाल की उत्तरकालीन मुकुटधारी बुद्ध मूर्तियों के पूर्वरूप हैं। बाईं ओर की दीवार में उकेरी हुई नागराजदंपती की मूर्ति भी सुंदर बन पड़ी है।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, इस शैलगृह की आंतरिक योजना गुफा क्र० 9 एवं 10 के चैत्यगृहों के सदृश है। किंतु इसकी नाभि के पिछले भाग का फर्श नाभि के शेष भाग से कुछ इंच ऊंचा है तथा पार्श्ववीथियों की छत स्पष्ट है।

गुफा के भीतर कुल सत्रह स्तंभ हैं जिनमें से अधिकांश कारीगरी और अलंकरण की दृष्टि से गुफा क्र० 1 के स्तंभों से बहुत सादृश्य रखते हैं। इन स्तंभों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शीर्षों का मध्य भाग आसनस्थ बुद्धों तथा दोनों ओर बढ़ा हुआ भाग हाथियों और शार्दूलों पर बैठी अथवा उड़ती हुई मनुष्याकृतियों, संगीतकारों तथा ऋषि-मुनियों के अंकन से युक्त है। शेष स्तंभों के शीर्ष गुफा क्र० 2 के बरामदे के स्तंभ शीर्षों के अनुरूप हैं। अर्धमंडप के दो स्तंभों में शालभंजिकाओं की संयोजना की गई है।

स्तूप एक छोटी मेधि पर अत्यंत अलंकृत शैली में निर्मित है। इस मेधि पर बारह स्तंभों की एक अन्य मेधि है जिसपर अंड स्थापित है। इस मेधि के सम्मुख भाग में मध्य के दोनों स्तंभों को कुछ ऊंचा बनाकर मकरशीर्षों से भूषित कर दिया गया है जिनके मुखों पर टिके तोरण के नीचे मेधि पर भगवान बुद्ध की मूर्ति है। स्तूप के ऊपरी भाग में हर्मिका और क्रमशः घटते हुए आकार की तीन छत्रावलियां बनी हैं। इस हर्मिका के चारों कोनों में छोटे छोटे कीचक बने हैं और इसके ऊपर से मालाएं लटकती हुई दिखाई गई हैं। छत्रावलियों के ऊपर एक छोटे स्तूप एवं हर्मिका का अंकन है जो एक तरह से छत का स्पर्श करती है।

मूलतः संपूर्ण गुफा चित्रों से अत्यंत सुंदर ढंग से अलंकृत थी। अब केवल कुछ चित्र ही बचे हैं। यशोधरा से भिक्षा मांगते बुद्ध तथा राहुल का दायभाग मांगती यशोधरा का चित्र तथा छतों पर अवशिष्ट लतापत्रक, पशु-पक्षी अलंकरण अभिप्राय अब भी अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहते। इस गुफा का निर्माण ईस्वी पांचवीं शताब्दी के अंत के आसपास हुआ था।

गुफा क्र० 20 : यह गुफा एक छोटा विहार है जिसका बरामदा दो स्तंभों तथा दो कुड्यस्तंभों पर आधारित है। बरामदा कुछ सीढ़ियों से युक्त एक अधिष्ठान पर निर्मित है। स्तंभशीर्ष पर हर ओर लतावितान के एक सुंदर शालभंजिका अंकित है। बरामदे की छत में काष्ठ स्थापत्य में प्रयुक्त घरनों और कड़ियों का अनुकरण दृष्टिगोचर होता है। बरामदे के दोनों सिरों पर एक एक तथा मंडप की दोनों ओर की दीवारों में दो दो कोठरियां खोदी गई हैं।

मुख्य मंडप 28′ 2″ चौड़ा, 25′ 4″ गहरा तथा 12′ 6″ ऊंचा है। इनमें एक भी स्तंभ नहीं है। गर्भगृह के द्वार का ललाटबिंब दो मकरतोरणों के वक्र से सज्जित है। मकरों के ऊपरी भाग तथा वक्रों के संधिस्थल पर मानवाकृतियां अंकित हैं।

अंतराल सभामंडप में आगे की ओर बढ़ा हुआ है, जो इस गुफा का एक वैशिष्ट्य है। यह बुद्ध एवं उनके परिचारकों के सात शिल्पों से अलंकृत दो स्तंभों पर टिका हुआ है। गर्भगृह की पिछली भित्ति में धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बैठे बुद्ध चामरग्राही परिचारकों तथा उड़ते गंधर्वों सहित उत्कीर्ण किए गए हैं।

कई कोठरियां अपूर्ण स्थिति में हैं। कुछ कोठरियों के ललाटबिंब पर अंकित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलंकरण मंदिरों के शिखरों के समान हैं। इस गुफा के बरामदे में उत्कीर्ण एक अभिलेख की लिपि के आधार पर यह गुफा ई० स० 450 से 525 के मध्य निर्मित मानी गई है। मूलतः यह गुफा पूर्णतः चित्रित थी, किंतु अब अधिकांश चित्र नष्ट हो गए हैं।

गुफा क्र० 21 : अनेक स्तंभों से युक्त बरामदे के प्रकोष्ठों को छोड़ दिया जाए तो यह गुफा योजना की दृष्टि से अन्य विहारों के समान है। इसका बरामदा नष्ट हो गया है, किंतु इसके दोनों सिरों पर विद्यमान अलंकृत कुड्यस्तंभों से स्पष्ट है कि गुफा क्र० 1 एवं 2 की भांति इसका बरामदा भी अत्यधिक अलंकृत था। बरामदे के दोनों छोरों पर एक एक प्रकोष्ठ है जिसे अलंकृत स्तंभों तथा कुड्यस्तंभों पर टिका हुआ मंडप बरामदे से पृथक करता है। बाईं ओर मंडप के छताधार में तीन विभाग बने हैं जिनमें यक्षों से घिरे नागराजदंपती का अंकन है। दाएं मंडप के सम्मुख भाग में हारीती का अंकन उसके परिचरों तथा बच्चों के साथ भव्यता के साथ किया है। बरामदे के कुड्यस्तंभ मकरयुक्त कमलाकृतियों के फुल्लों तथा रत्न प्रतीकों से अलंकृत हैं।

सभामंडप 51′ 6″ चौड़ा 51′ गहरा है। मंडप के तीन ओर की भित्तियों में भी उपर्युक्त प्रकार के चार प्रकोष्ठ हैं जिनके सामने स्तंभयुक्त मंडप बने हुए हैं—दो अंतराल के दोनों ओर तथा एक एक बाईं और दाईं ओर की दीवारों के मध्य में। इनके अतिरिक्त आठ और कोठरियां बनी हैं। मंडप के बारह स्तंभ यद्यपि पहली गुफा के स्तंभों के समान हैं, तथापि ऊंचे वर्गाकार आधार भारीपन तथा अनुपातहीनता के कारण उनकी समानता नहीं कर सकते।

गर्भगृह का द्वार अपूर्ण स्थिति में है। गर्भगृह में चामरधारियों के मध्य धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में बैठे बुद्ध अंकित हैं। गुफा कभी चित्रित थी, किंतु अब कुछ छुटपुट स्थानों को छोड़कर चित्रांकन का कोई भी चिह्न अवशिष्ट नहीं है।

गुफा क्र० 22 : एक संकरे बरामदे तथा चार अपूर्ण उत्खनित कोठरियों से युक्त यह छोटा सा विहार (16′ 6″ वर्गाकार और 9′ ऊंचा) कुछ ऊंचाई पर स्थित है जहां कुछ सीढ़ियां चढ़ कर पहुंचना पड़ता है। बरामदे में दो खंडित स्तंभ हैं। सभामंडप का प्रवेशद्वार अलंकृत है तथा मंडप स्तंभहीन है। गर्भगृह अंतरालरहित है तथा उसमें प्रलंबपादासनस्थ बुद्ध प्रतिमा उकेरी हुई है। गर्भगृह की दाईं भित्ति पर मैत्रेय समेत सात मानुषी बुद्ध उनके बोधिवृक्षों तथा नाम सहित चित्रित हैं।

गुफा क्र० 23 : यह एक अन्य अपूर्ण विहार है। 50′ 5″ चौड़े, 51′ 8″ गहरे तथा 12′ 4″ ऊंचे इस विहार का बरामदा, सभामंडप तथा प्रकोष्ठमंडपों के स्तंभ अत्यंत अलंकृत हैं। कुड्यस्तंभ पद्माकृतियों वाले तथा चौकड़ी भरते हुए घोड़े तथा मकर से जूझते मानवाकृतिवाले फुल्लों से अलंकृत हैं। द्वार पर नागद्वारपाल बने हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिनके सिर पर नामों का घटाटोप है। बरामदे के छोरों पर तथा बाईं ओर की भित्ति में कोठरियां खुदी हैं।

विहार के निर्माण का कार्य किसी कारण प्रारंभिक अवस्था में ही बंद कर दिया गया।

गुफा क्र० 24 : यह भी एक अपूर्ण विहार है जो यदि पूर्ण हो जाता तो गुफा क्र० 4 के पश्चात अजंता के सबसे बड़े और सुंदरतम विहारों में होता। बीस स्तंभों के एक सभामंडप से युक्त विहार की योजना बनाई गई थी जो 73′ 3″ चौड़ा तथा 75′ गहरा होता। इस गुफा का बरामदा मिट्टी से बहुत दीर्घकाल तक पटा रहा था। अब स्तंभ आदि का पुनरुद्धार किया गया है। छताधार से झूलते शीर्ष अब भी दिखाई देते हैं। शीर्षों पर उड़ते हुए गंधर्व तथा अलंकृत प्रतीक उच्चकोटि की प्रतिभा तथा कुशलता के परिचायक हैं। द्वारों तथा वातायनों पर की गई नक्काशी भी प्रशंसनीय है। मंडप में केवल एक स्तंभ पूर्ण हो पाया है। स्तंभशीर्ष पूर्णघट तथा मकरतोरण के मध्य बैठे युगल एवं आकाशचारी गंधर्वों के मनोहारी अंकन से युक्त है। गर्भगृह में प्रलंबपादासनस्थ बुद्ध की प्रतिमा तथा मंडप के प्रवेशद्वार के अलंकरण से शिल्पियों की कलाकुशलता सहज परिलक्षित होती है।

गुफा क्र० 25 : यह भी एक छोटा अपूर्ण विहार है जो कुछ ऊंचाई पर खोदा गया है। बरामदे में दो कुड्य तथा पूर्ण स्तंभ हैं जो पीठिकाधार, अठपहलू पिंड तथा शीर्षों से युक्त हैं। बरामदे के बाईं ओर एक प्रकोष्ठ है जिसकी दाईं तथा पिछली भित्ति में एक एक कोठरी खुदी हुई है। सभामंडप 26′ 5″ चौड़ा तथा 25′ 4″ गहरा है। इसमें गर्भगृह अथवा कोठरियों की खुदाई नहीं की गई है।

गुफा क्र० 26 : यह चैत्यगृह गुफा क्र० 19 के चैत्य की अपेक्षा आकार में कहीं अधिक बड़ा (68′ लंबा, 36′ चौड़ा तथा 31′ ऊंचा) है, किंतु योजना में उसी के अनुरूप है। साथ ही इसके विभिन्न भागों में मूर्तियों का अलंकरण कहीं अधिक मात्रा में पाया जाता है। मूलतः इसके सम्मुख भाग में चार स्तंभ थे जिनपर इसका सारा भार था। यह भाग अब नष्ट हो गया है। सामने का आंगन दोनों ओर कुछ बढ़ाया गया था। दाईं ओर एक के ऊपर एक बने दो शिल्पपट्ट हैं जिन पर अवलोकितेश्वर अंकित हैं। इसके दाईं ओर अभय मुद्रा में खड़े बुद्ध का अंकन है।

बरामदे के ऊपर चैत्यवातायन तथा उसके और ऊपरी गृहमुख के सामने 40′ लंबा तथा 8¼′ चौड़ा एक छज्जा बना हुआ था जिसका छोर गुफा क्र० 25 तक पहुंचता है। चैत्यवातायन तथा छज्जे के छोरों पर बाहर की ओर निकली हुई दीवारों के बाहर का पूरा सम्मुख भाग (इसे गृहमुख भी कहा जाता है) बुद्ध के शिल्पांकन से युक्त विभिन्न आकार के आलों में विभाजित किया गया है। चैत्यवातायन के दोनों ओर कुबेर अथवा जंभल की आसन मूर्ति है तथा उसके बाद एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आगे निकले हुए आले में बुद्ध की एक स्थानक मूर्ति बनाई गई है।

मुख्य द्वार के अतिरिक्त दो छोटे छोटे द्वार पार्श्ववीथियों में प्रवेश हेतु बनाए गए हैं। नाभि में कुल अट्ठाइस स्तंभ हैं। छत 12′ 9″ ऊंची है तथा उसमें बनी हुई कड़ियों में काष्ठ स्थापत्य का अनुकरण दृष्टिगत होता है। भीतरी दीवारों पर बोधिसत्वों के मध्य धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बैठे बुद्ध तथा बुद्ध के जीवन के विभिन्न प्रसंग उकेरे हुए हैं।

स्तूप बेलनाकार है और विभिन्न प्रकार की अलंकृत मेधियों पर स्थापित है। सम्मुख भाग पर प्रलंबपादासनस्थ बुद्ध धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में अंकित है। स्तूप का अंड दबे हुए गोल तकिये के रूप में है। इसके ऊपर हर्मिका के बाहरी भाग पर बुद्ध की स्थानक तथा आसन प्रतिमाओं की दो पंक्तियां उत्कीर्ण हैं।

बाईं ओर की भित्ति पर महापरिनिर्वाण मुद्रा में लेटे बुद्ध की 23′ 1″ लंबी विशाल प्रतिमा है। उनके सिर तथा पैरों के पास शाल वृक्ष का अंकन है। नीचे बुद्ध के शोकाकुल शिष्यों और अनुयायियों तथा ऊपर आनंदित देवी का अंकन है। इसके आगे मारविजय का दृश्य अंकित है।

मूलतः यह चैत्य गुफा पूर्णतः चित्रों से सज्जित थी। किंतु अब कुछ चित्र ही शेष हैं। छताधार की अलंकरणाकृतियों में प्रयुक्त चटक नीले रंग को छोड़ शेष रंग नष्ट हो गए हैं। नीले रंग की ताजगी तथा चमक अब भी दृष्टिगत होती है। स्तंभशीर्षों के बाजू के पहलुओं पर कुछ चतुर्भुज बोनों का चित्रांकन है। इन चित्रों में चेहरे के भावों का अंकन बड़ा ही आकर्षक है। इस गुफा में उत्कीर्ण एक लेख से विदित होता है कि इसका निर्माण भिक्षु बुद्धभद्र ने कराया था। इस लेख के काल के विषय में मतभेद है। बर्जेस ने इसे ईस्वी छठी शताब्दी के उत्तरार्ध अथवा सातवीं शताब्दी के आरंभ का माना था। छाबड़ा के अनुसार इसका काल ईस्वी 450 और 525 के मध्य होना चाहिए। किंतु अक्षररचना एवं ऐतिहासिक उल्लेखों के आधार पर इस लेख को ईस्वी छठी शताब्दी के पूर्वार्ध का माना जा सकता है और यही इस गुफा का निर्माणकाल है। इस लेख में चर्चित स्थविर अचल का उल्लेख चीनी यात्री ह्वेन त्सांग ने भी किया है।

गुफा क्र० 27 : यह दर्शकों की पहुंच में आनेवाली अंतिम गुफा है। यह 43′ 6″ चौड़ा तथा 31′ गहरा विहार है। इस गुफा में पहुंचने के लिए छब्बीसवीं गुफा के आंगन से बाईं ओर उतर कर जाना पड़ता है। यहीं रास्ते में दाईं ओर की भित्ति पर राष्ट्रकूट नरेश नन्नराज के काल का एक शिलालेख उत्कीर्ण है। इस विहार की बाईं भित्ति में तीन, पिछली भित्ति में दो तथा दाईं ओर की दीवार में एक कोठरी खोदी गई है। पिछली दीवार के मध्य में गर्भगृह की पिछली भित्ति में बुद्ध की धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बैठी प्रतिमा खुदी हुई है। अंतराल, जो सभामंडप में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निकला हुआ है, । ऐसा माना जाता है कि यह विहार स्वतंत्र रूप से नियोजित न होकर गुफा क्र० 26 के चैत्य का ही एक अंग था । इसकी ऊपरी अपूर्ण मंजिल भूस्खलन के कारण बहुत क्षतिग्रस्त हो गई है।

गुफा क्र० 28 : यह शैलगृह गुफा क्र० 21 और 22 के ऊपर चैत्य का आरंभ मात्र है। केवल चैत्यवातायन का ऊपरी भाग ही उकेरा गया दृष्टिगोचर होता है। यहां पहुंचना बहुत कठिन है।

गुफा क्र० 29 : यह सत्ताइसवीं गुफा के आगे स्थित है। यह विहार छः स्तंभों तथा दो कुड्यस्तंभों से युक्त बरामदे तक ही उकेरा गया है। ये स्तंभ भी अनगढ़ हैं। यह गुफा भी साधारण तौर पर अगम्य है।

गुफा क्र० 30 : रास्ते की मरम्मत करते समय मलवा हटाने पर यह छोटा सा विहार प्रकाश में आया। इसकी रचना अत्यंत सादी है। इसके चौकोर मुख्य मंडप के तीन ओर की दीवारों में एक एक कोठरी खुदी है जिनमें विश्राम के लिए दो दो चौकियां शिला में काटी हुई हैं। यह अजंता की प्राचीनतम गुफाओं में एक है। परवर्ती काल में इस गुफा को किसी कारण ईंटों से ढंक दिया गया।

संदर्भ

1. गोविंदचंद्र पांडेय : बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ० 163, 205.
2. प्राचीन काल में बरावर की पहाड़ियां खलतिक पर्वत, गोरथगिरि एवं प्रवरगिरि नामों से प्रसिद्ध थीं.
3. वासुदेवशरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ० 125-7.
4. वही, पृ० 125, चित्र 143-5, पृ० 127, चित्र 142.
5. उड़ीसा के संदर्भ में इसका 'महामेघवाहन काल' नाम अधिक समीचीन है.
6. अब तक भारत में लगभग 1200 गुफाएं मिली हैं जिनमें से लगभग 800 महाराष्ट्र में स्थित हैं
7. वासुदेवशरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ० 229 और आगे
8. पर्सी ब्राउन : इंडियन आर्किटेक्चर (बुद्धिस्ट ऐंड हिंदू), पृ० 69-71, इन गुफाओं के काल के विवेचन के लिए जेम्स फर्ग्युसन और जेम्स बर्जेस : दि कैव टेंपल्स आफ इंडिया, खं 2, अध्याय 1-2 भी द्रष्टव्य हैं.
9. वाल्टर स्पिक : अजंता टु एलोरा, पृ० 7-8. प्रत्येक गुफा के निश्चित काल के लिए पृ० 5-6 पर दी गई सारणी द्रष्टव्य है
10. यह तथा अन्य प्रायः सभी नाप फर्ग्युसन तथा बर्जेस : दि कैव टेंपल्स आफ इंडिया पर आधारित हैं.
11. इनमें से दो गवाक्ष अब बंद कर दिए गए हैं.
12. किंतु नवम् गुफा के कोणाकृति युक्त पिछले छोर तथा वीथिकाओं की सपाट छत से संभवतः यह सूचित होता है कि यह शैलगृह गुफा क्र० 10 की अपेक्षा पूर्ववर्ती है.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4

चित्रकला

भारतीय चित्रकला की परंपरा : चित्रकला के इतिहास में भारत का योगदान संसार के अन्य किसी भी देश की तुलना में कम महत्व का नहीं है। भारत में प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक चित्रकला की एक अविच्छिन्न तथा परिपुष्ट परंपरा मिलती है। भारतीय मनीषियों ने जहां एक ओर अध्यात्म के उच्चतम तत्वों पर विचार किया वहां दूसरी ओर मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न शिल्पों और कलाओं की उपयोगिता पर भी बल दिया। प्राचीन साहित्य में कलाओं की अनेक सूचियां उपलब्ध होती हैं तथा उनकी संख्या के विषय में विभिन्न परंपराओं के संकेत मिलते हैं। ईस्वी सन की आरंभिक शताब्दियों में रचित बौद्ध ग्रंथ 'ललितविस्तर' में चौरासी कलाओं की चर्चा मिलती है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में कलाओं का निर्देश कामशास्त्र की अंगविद्याओं के रूप में किया गया है और उनकी संख्या चौंसठ बताई गई है। जैन परंपरा में कलाओं की संख्या चौंसठ अथवा बहत्तर दी गई हैं। 'शुक्रनीतिसार' में भी चौंसठ कलाओं की सूची मिलती है। इन सूचियों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि इनमें निर्दिष्ट अधिकांश कलाएं समान हैं और इनमें अंतर केवल ऊपरी है। एक और उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इन विविध परंपराओं में उल्लिखित कलाओं में ललित और व्यावसायिक दोनों प्रकारों के समावेश का प्रयास किया गया है। 'मानसार' नामक शिल्पविषयक ग्रंथ में ब्रह्मा (महाविश्वकर्मा) के चार मुखों से विश्वकर्मा, मय, त्वष्टा तथा मनु नामक चार पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। उनके क्रमशः स्थपित, सूत्रग्राह, वर्धकि तथा तक्षक नामक पुत्र हुए जो विभिन्न शिल्पों में निष्णात थे। स्थपित सभी शास्त्रों के ज्ञाता तथा अन्य सभी के संरक्षक हैं। सूत्रग्रह का कार्य नाप-जोख करना तथा मानचित्र तैयार करना है। वर्धकि चित्रकर्म तथा तक्षक काटना-जोड़ना आदि कार्य करते हैं। भारतीय परंपरा में आचार्य वर्धकि प्रथम चित्राचार्य के रूप में गिने जाते हैं। कलाविषयक कुछ प्राचीन पांडुलिपियों में उन्हें कुछ ग्रंथों के प्रणयन का श्रेय दिया गया है, किंतु अब तक उनकी कोई भी कृति प्रकाश में नहीं आई है। प्रायः सभी शिल्पशास्त्रीय तथा 'कामसूत्र', 'बृहत्संहिता' आदि शास्त्रीय ग्रंथों में चित्रकर्म की भी थोड़ी बहुत चर्चा मिलती है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी कृतियां भी उपलब्ध हैं जिनमें चित्रकर्म की विस्तृत विवेचना दृष्टिगत होती है। इन ग्रंथों में 'विश्व-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्मप्रकाश', 'मयमत', 'मानसार' 'चित्रसूत्र', 'चित्रलक्षण', 'चित्रकर्मशिल्पशास्त्र', 'समरांगणसूत्राधार', 'कलाविलास', 'मानसोल्लास,' 'वृत्तांतप्रकरण' प्रभृति प्रमुख हैं। इस सूची में 'चित्रसूत्र' (जो 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' का एक प्रकरण है), नग्नजित का 'चित्रलक्षण', भोज का 'समरांगणसूत्राधार' तथा सोमेश्वर का 'मानसोल्लास' ये चार कृतियां भारतीय चित्रकला परंपरा की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

'चित्रसूत्र' 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' के तृतीय खंड के नौ अध्यायों (अध्याय 35 से 43 तक) का एक प्रकरण है।[1] यह चित्रकला से संबद्ध प्राचीनतम रचनाओं में से एक है। इस ग्रंथ से भारतीय चित्रकला की प्राचीनता, व्यापकता एवं प्रौढ़ता प्रदर्शित होती है। प्रतीत होता है कि इसके पूर्व ही चित्रकला समाज में बहुत विकसित हो चुकी थी। 'चित्रसूत्र' के नौ अध्यायों के नाम इस प्रकार हैं: (1) आयामोच्छ्रायमान, (2) प्रमाणाध्याय, (3) सामान्यमान, (4) प्रतिमालक्षण, (5) क्षयवृद्धि, (6) रंगण्यतिकर, (7) रंगवर्तना, (8) रूपनिर्माण, तथा (9) शृंगारादि, भावयुक्तादि। इन अध्यायों में मान के अनुसार आकृतियां, रूप और प्रकृतिचित्र तैयार करना, रंग बनाना, रंग भरना आदि विषयों की सांगोपांग विवेचना की गई है। इस ग्रंथ में चित्रकला को सब कलाओं में श्रेष्ठ तथा मंगलदायक निरूपित करते हुए उसके द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति बताई गई है:

कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थमोक्षदम्।
मांगल्यं प्रथमं ह्येतद् गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्॥[2]
(3.43.38)

प्राचीन भारतीय शिल्पशास्त्र परंपरा में नग्नजित का उल्लेख बहुधा पाया जाता है। 'मत्स्यपुराण' (252.2-4) में भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, विशालाक्ष, पुरंदर, ब्रह्मा, नंदीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र एवं बृहस्पति के साथ नग्नजित की गणना अठारह वास्तुशास्त्रोपदेशकों अथवा वास्तुशास्त्र के प्रवर्तकों में की गई है। वराहमिहिर (ई० छठी शताब्दी) ने 'बृहत्संहिता' के 'प्रतिमालक्षणाध्याय' (57.4 और 15) में प्रतिमामान के संदर्भ में नग्नजित के मत की चर्चा करते हुए उसके द्वारा विहित मान को द्राविड कहा है (57.4)। भट्टोत्पल (ईस्वी नवीं शताब्दी) ने 'बृहत्संहिता' की टीका में नग्नजित के तीन ग्रंथों का उल्लेख किया है: 'प्रासादलक्षण', 'प्रतिमालक्षण' और 'चित्रलक्षण'।[3] 'चित्रलक्षण', 'नग्नजिच्चित्रलक्षण' अथवा 'नग्नव्रत' नामक एक ग्रंथ, जिसका संप्रति केवल तिब्बती अनुवाद प्राप्त होता है, नग्नजित द्वारा रचित माना जाता है। बर्थोल्ड लाफर ने इसे जर्मन भाषांतर और विस्तृत भूमिका के साथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संपादित किया है और बी० एन० गोस्वामी तथा ए० एल० दाहन-दल्लचिकोला ने लाफर की भूमिका तथा अनुवाद का अंगरेजी भाषांतर हाल ही में प्रकाशित किया है। संप्रति इस ग्रंथ में केवल तीन अध्याय हैं और यह अपूर्ण प्रतीत होता है। 'नग्नव्रत' नामक प्रथम अध्याय में एक ब्राह्मण बालक की अकाल मृत्यु होने पर ब्रह्मा द्वारा उसकी प्रतिलिपि के निर्माण से चित्रकला की उत्पत्ति का वर्णन है। दूसरे अध्याय में वर्णन है कि संसार के कल्याण के निमित्त ब्रह्मा की प्रेरणा से महादेव, विष्णु, इंद्र इत्यादि सभी देवों ने अपनी विशिष्ट आयुधों और मुद्राओं से युक्त प्रतिकृतियां बना कर दीं, जिन्हें ब्रह्मा ने पूजा-अर्चनार्थ मर्त्यलोक में प्रेषित किया। तृतीय अध्याय में राजाओं एवं अन्य प्राणियों के अंगों के अनुपात तथा अंकन की सविस्तार चर्चा की गई है। वराहमिहिर द्वारा नग्नजित के नाम से निर्दिष्ट एक नाम का उल्लेख इस ग्रंथ में पाया जाता है (अध्याय 3, श्लोक 574-618) जिससे स्पष्ट है कि यह कृति प्राचीन परंपराओं पर आधारित है। भट्टोत्पल के अनुसार नग्नजित के 'चित्रलक्षण' में आयुधों और प्रहरणों का भी वर्णन था किंतु तिब्बती अनुवाद में यह उपलब्ध नहीं है। इससे स्पष्ट है कि तिब्बती 'चित्रलक्षण' उस संस्करण से भिन्न है जो उत्पल को ज्ञात था अथवा वह अपूर्ण है। जो भी हो, उपर्युक्त संदर्भों से यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि नग्नजित की कृति प्राचीन काल में बहुत लोकप्रिय थी।[4]

सुप्रसिद्ध परमार नरेश भोज (ई० 1000-1055) एक कुशल राजनीतिज्ञ ही नहीं अपितु भावुक कवि, लेखक, सहृदय विद्यानुरागी एवं कलाओं और विद्याओं के उदार संरक्षक भी थे। उन्होंने ज्योतिष, काव्यशास्त्र, योग, राजनीति, धर्मशास्त्र, शिल्प, आयुर्वेद, व्याकरण, कोश आदि शास्त्रीय तथा काव्य, नाटक प्रभृति साहित्यिक विषयों पर अनेक ग्रंथों की रचना की। इनमें से 'समरांगणसूत्रधार' नामक शिल्पविषयक ग्रंथ में चित्रकर्म की चित्रोद्देश्य, भूमिबंधन, लेप्यकर्मादि, अंडकप्रमाण, मनोत्पत्ति और रसदृष्टिलक्षण इन छः अध्यायों में विस्तृत एवं सांगोपांग विवेचना की गई है।

कल्याण के सुप्रसिद्ध चालुक्य नरेश षष्ठ विक्रमादित्य के पुत्र एवं उत्तराधिकारी तृतीय सोमेश्वर (ई० 1126-1138) ने 'मानसोल्लास' अथवा 'अभिलषितार्थचिंतामणि' नामक एक ज्ञानकोशात्मक ग्रंथ का प्रणयन किया जिसमें अन्यान्य विषयों के अतिरिक्त चित्रकर्म पर भी बड़े क्रमबद्ध रूप में विचार किया गया है (तृतीय विंशति, प्रथम अध्याय)। इसमें चित्रकारस्वरूप, चित्रभित्ति, लेखनीलेखन, शुद्धवर्ण, मिश्रवर्ण, चित्रवर्ण, पक्षसूत्रलक्षण, ताललक्षण तिर्यकमानलक्षण और सामान्यचित्रप्रक्रिया जैसे शीर्षकों के अंतर्गत चित्रकला के विविध अंगों की सविस्तार चर्चा की गई है। सोमेश्वर स्वयं को चित्रविद्या का विरंचि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहता है जो इस प्रकरण में व्यक्त उसके चित्रकलाविषयक निस्संदेह ज्ञान को देखते हुए उपयुक्त जान पड़ता है।

प्रस्तुत संदर्भ में वात्स्यायन के 'कामसूत्र' की चर्चा अप्रासंगिक न होगी। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, 'कामसूत्र' में चौंसठ कलाओं का वर्णन किया गया है। चित्रकला का निर्देश 'आलेख्य' शब्द से किया गया है। यशोधर की 'जय-मंगला' टीका में आलेख्य के छः अंग—रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्ययोजन, सादृश्य तथा वर्णिकाभंग बताए गए हैं।[5]

इन तथा अन्य शिल्पविषयक ग्रंथों में चित्रकर्म का एक शिल्प के रूप में निरूपण किया गया है। इनके अतिरिक्त बहुसंख्यक साहित्यिक कृतियों में चित्र-कला संबंधी अनेक उल्लेख बिखरे मिलते हैं जिनसे तत्कालीन जन-जीवन में चित्र-कर्म के महत्व, उपादेयता तथा लोकप्रियता का ज्ञान होता है। इनमें से कुछ की संक्षिप्त चर्चा यहां अप्रासंगिक न होगी।

संस्कृत नाटककारों ने तो कथा को गति देने के उद्देश्य से चित्रकलाविषयक निर्देशों का इतना अधिक उपयोग किया है कि उन्हें हम एक प्रकार से कविसमय ही मान सकते हैं। कालिदास के पूर्ववर्ती सुप्रसिद्ध नाटककार भास के नाटकों में प्रसंगवश चित्रकला के छिटपुट उल्लेख प्राप्त होते हैं। 'स्वप्नवासवदत्त' तथा 'प्रतिज्ञायौगंधरायण' में नायक-नायिका के चित्रपटों की चर्चा आई है। 'दूत-वाक्य' में द्रौपदीवस्त्रहरण के चित्रपट की विस्तृत चर्चा है जिसमें कौरव राज-सभा में विभिन्न मुद्राओं में बैठे कौरवों, पांडवों, भीष्म आदि गुरुजनों तथा दयनीय द्रौपदी का अंकन इस कुशलता से हुआ था कि दुर्योधन कह उठता है :

अहो अस्य वर्णाढ्यता।
अहो भावोपपन्नता !
अहो युक्तलेखता !

तथा चित्र की विषयवस्तु अप्रिय होने पर भी कृष्ण 'अहो दर्शनीयोऽयं चित्रपटः' कह कर चित्र के रंग, भाव तथा रेखाओं की प्रमाणबद्ध आलेखता की प्रशंसा करते हैं।[6]

कविकुलगुरु कालिदास की 'अभिज्ञानशाकुंतल', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', 'मेघदूत' तथा 'रघुवंश' आदि कृतियों में भी चित्रनिर्माण के अनेक उल्लेख मिलते हैं। कालिदास ने मंगलकामना की दृष्टि से नगरवासियों के घरों तथा राजमहलों की भित्तियों को चित्रों से अलंकृत करने की प्रथा का उल्लेख किया है। भवभूति ने नायक-नायिकाओं के चित्रों के अतिरिक्त चित्रवीथिका का भी उल्लेख किया है। 'उत्तररामचरित' में लक्ष्मण द्वारा सीता को वनवास के चित्र दिखाए जाने तथा उन्हें देखकर सीता के भाव विह्वल तथा मूर्छित हो जाने का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णन उपलब्ध होता है। 'मालतीमाधव' में माधव एवं मालती द्वारा एक दूसरे के चित्रांकन की चर्चा आती है।

बाणभट्ट ने 'कादंबरी' तथा 'हर्षचरित' में स्थान स्थान पर चित्रकला के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिनसे तत्कालीन समाज में चित्रकला के प्रचलन एवं तकनीक पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। 'कादंबरी' में नील, पीत, लोहित, धवल (शुक्ल) तथा हरित (कृष्ण) इन पांच रंगों के साथ साथ वर्णचित्रों (वर्णाढ्यता), भावचित्रों (भावोत्पन्नता) तथा रेखाचित्रों (युक्तिलेखता) की भी चर्चा आई है। राजप्रासादों की चित्रशालाओं के विषय में भी ज्ञातव्य बातें मिलती हैं। 'हर्षचरित' में यम के चित्रों से अंकित पट्ट (यमपट्ट) को दिखाकर आजीविका कमानेवाले लोगों का उल्लेख किया गया है।[7]

हर्षवर्धन के 'नागानंद' एवं 'रत्नावली', विशाखदत्तकृत 'मुद्राराक्षस', राजशेखररचित 'विद्धशालभंजिका', बिल्हण की 'कर्णसुंदरी' नाटिका, जयदेव के 'प्रसन्नराघव', दामोदरगुप्तप्रणीत 'कुट्टनीमत',[8] श्रीहर्ष के 'नैषधचरित' प्रभृति अन्य अनेक कृतियों में भी चित्रकला की चर्चा मिलती है। इन समस्त उल्लेखों से भारतीय चित्रकला की समृद्ध परंपरा की पुष्टि होती है।[9]

भारतीय चित्रकला की ऐतिहासिक रूपरेखा : भारत में पुरातत्व संबंधी जो महत्वपूर्ण खोजें हुई हैं उनमें चित्रों की खोज अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन खोजों के फलस्वरूप प्रागैतिहासिक काल से ले कर मध्ययुग के अंत तक के महत्वपूर्ण चित्र उपलब्ध हुए हैं। इन चित्रों से तत्कालीन संस्कृतियों का समग्र अध्ययन करने की दिशा में बहुत सहायता मिली है।

प्रागैतिहासिक चित्र नदियों के कछारों में स्थित चट्टानाश्रयों तथा पहाड़ों की प्राकृतिक गुफाओं की दीवारों पर अंकित पाए गए हैं। अधिकांश चित्र गेरू से बने हैं। कुछ चित्र सफेद, हरे तथा काले रंग से भी बने दृष्टिगत होते हैं। ये चित्र भारत के विभिन्न भागों से उपलब्ध हुए हैं। सुविधा की दृष्टि से इन्हें पुरातत्ववेत्ताओं ने विभिन्न समूहों में विभाजित किया है। इनका वितरण इस प्रकार है :

1. **उत्तर प्रदेश** : मिर्जापुर, बनारस, बांदा, आगरा तथा कुमायूं जिले।
2. **राजस्थान** : भरतपुर जिला।
3. **मध्य प्रदेश** : रायगढ़, जबलपुर, रीवां, पन्ना, छतरपुर, सागर, नरसिंहपुर, बैतूल, होशंगाबाद, पंचमढ़ी, भोपाल, रायसेन, नरसिंहगढ़, शिवपुरी, गुना, दतिया, ग्वालियर तथा मंदसौर जिले।
4. **दक्षिण भारत** : हैदराबाद, कोप्पल, बिल्लारयण, ऋष्यमूक पर्वत, पिकलिहाल, गुड्डा, मस्की, बैंकल वनक्षेत्र, वीला सरगम, कुप्पगल्लु, एदकल, कोडाईकनाल, बसवनगुड़ी डाई—कर्मेल्ली और नेल्लोर क्षेत्र।[10]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन प्रागैतिहासिक चित्रों में वन्य पशु, मानवी आकृतियां तथा कुछ ज्यामितीय आकृतियां प्रमुख हैं। उत्सव तथा आखेट के दृश्य, जिनमें पशु को घेर कर वार करते मानव, घायल पशु शिकार के पश्चात विजयोल्लास से नाचते आखेटकों का अंकन है, मात्र रेखांकित होते हुए भी अपनी गत्यात्मकता तथा सुघड़ रेखांकन के कारण सजीव प्रतीत होते हैं। कई स्थानों पर इन प्रागैतिहासिक चित्रों पर उत्तरकालीन चित्रों का आरोपण भी दृष्टिगत होता है। अर्थात आज से लगभग 50,000 वर्ष पूर्व के इन चित्रों से अनुप्राणित होकर ऐतिहासिक काल तक के जनमानस ने अपनी चित्रात्मक अनुभूतियां इन शैलाश्रयों में अंकित कर रखी हैं। चित्रों के विषय प्राय: वे ही हैं, केवल साजसज्जा में वृद्धि हुई है।

आद्यैतिहासिक काल के चित्रों के विषय में हमें मृद्भांडों पर किए गए चित्रांकनों पर निर्भर रहना पड़ता है। भारत के पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर भाग में व्याप्त सैंधवी संस्कृति तथा अन्यान्य ताम्राश्म एवं बृहदश्मयुगीन संस्कृतियों के मृद्भांड प्रमुखत: ज्यामितीय आकृतियों से सज्जित हैं। पशु-पक्षियों तथा मांगलिक चिह्नों का अंकन भी प्राप्त होता है। ये चित्र भांड पकाने के पूर्व ही खनिज रंगों से अंकित किए जाने के फलस्वरूप पक्के हैं। इनके अतिरिक्त ठप्पे से थाप कर तथा ऊपर से मिट्टी जोड़ कर भी मृद्भांड अलंकृत करने की प्रथा रूढ़ थी।

ऐतिहासिक काल में मृद्भांडचित्र तो अपेक्षाकृत कम प्राप्त होते हैं, किंतु पुन: गुफाओं तथा अन्य वास्तुओं की भित्तियों और मूर्तियों को चित्रित करने की परंपरा आरंभ होती दिखाई देती है। साहित्यिक उल्लेखों से विदित होता है कि इस काल में कपड़े अथवा चमड़े आदि आधारों पर चित्र बनाने की प्रथा भी प्रचलित थी। किंतु ये वस्तुएं नश्वर होने के कारण इनके अवशेष दुर्लभ हैं। सबसे प्राचीन ऐतिहासिक चित्र मध्यप्रदेश के सरगुजा जिले में स्थित जोगीमारा अथवा सीताबेंगा नामक गुफा में प्राप्त होते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार ये भित्तिचित्र ईसापूर्व तृतीय शताब्दी के आसपास के हैं। किंतु वर्तमान मान्यता के अनुसार इनका काल ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के आसपास है। इन चित्रों का विषय जैनधर्म से संबंधित निरूपित किया गया है।

लगभग इसी समय अथवा इसके कुछ काल पश्चात अजंता की विख्यात गुफाओं में चित्रांकन का कार्य आरंभ हुआ। मूलत: प्राय: सभी गुफाएं चित्रों से अलंकृत थीं। ये गुफाएं, जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है, दो कालखंडों में निर्मित एवं चित्रित हुई हैं। गुफा क्र० 9 तथा 10 में सातवाहन काल में तथा शेष गुफाओं में वाकाटक एवं वाकाटकोत्तर काल में चित्रों का निर्माण हुआ। मूलत: गुफाओं की भित्तियां, छत तथा मूर्तियां सभी चित्रित थीं। परंतु इस समय तो केवल छ: गुफाओं (क्र० 1, 2, 9, 10,16 तथा 17) में चित्रों के अवशेष दृष्टिगत होते हैं। अन्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकांश गुफाओं में चित्रांकन के चिह्न यहां वहां विद्यमान हैं।

बाघ के गुफाचित्र अजंता की महायान शैली के प्रतिनिधि उदाहरण हैं। बाघ मध्यप्रदेश में धार जिले में स्थित है। नर्मदा की बाघ नामक एक सहायक नदी के तट पर कुल नौ गुफाएं स्थित हैं। इनमें से पहली गुफा (गृहगुफा) नष्टप्राय है। दूसरी गुफा, जो 'पांडवों की गुफा' नाम से प्रसिद्ध है, आकार-प्रकार में सबसे बड़ी है। यहीं महाराज सुबंधु का एक ताम्रपत्र प्राप्त हुआ था। इस ताम्रपत्रलेख से विदित होता है कि इन गुफाओं का निर्माण ईस्वी चौथी-पांचवीं शताब्दी के पूर्व हो चुका था तथा इस गुफाविहार का नाम कलयन (कलायन) था। बाघ के चित्र संप्रति अत्यंत क्षत-विक्षत स्थिति में हैं, किंतु समय रहते कई कलाविदों ने, जिनमें आचार्य नंदलाल बसु, असितकुमार हालदार, एस० एन० सरकार प्रभृति हैं, इन चित्रों की प्रतिकृतियां तैयार कर ली थीं, जिनके कारण बाघ की चित्रकला का अध्ययन संभव हुआ है। बाघ के चित्रों के विषय विविध हैं। बुद्ध, बोधिसत्व, राजपुरुषों, राजस्त्रियों, गायकों, वादकों, नर्तकों, घुड़सवारों, लतापत्रक और पशु-पक्षियों का बहुत सुंदर तथा प्रभावशाली चित्रण प्राप्त हुआ है।

चित्रों की योजना, रंगों का चयन और रेखाओं की सजीवता बड़ी ही मनोहारी है। बाघ की तीसरी गुफा 'हाथीखाना' तथा चौथी 'रंगमहल' कहलाती है। पांचवीं गुफा भिक्षुओं के प्रवचन हेतु बनाई गई प्रतीत होती है। अंतिम तीन गुफाएं नष्ट हो चुकी हैं।[11]

चालुक्य काल (ईस्वी छठी से आठवीं शताब्दी) में कला का जो उन्नयन हुआ उसमें चित्रकला का समावेश है। बादामी के गुफाचित्र सौंदर्य के मनोहर अंकन के लिए विख्यात हैं। यहां के नारीचित्र समकालीन चित्रों में बेजोड़ हैं। इसी काल में शिट्टण्णवाशल तथा एलोरा की गुफाओं का निर्माण और चित्रण किया गया। शिट्टण्णवाशल तमिलनाडु राज्य में तंजौर के समीप स्थित है। पल्लवकालीन (ईस्वी छठवीं सातवीं शताब्दी) सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियों में इस स्थान के चित्रों की गणना की जाती है। ये चित्र बहुतांश में नष्ट हो गए हैं। किंतु केवल अवशिष्ट रेखाओं से ही चित्रों के कुशल और भावपूर्ण अंकन की श्रेष्ठता ज्ञात हो जाती है। बहुत कम रंगों का चित्रों में प्रयोग हुआ है। चित्र पौराणिक जैन प्रसंगों, कमलाकृतियों तथा नृत्यरत नायिका का प्रदर्शन करते हैं।[12] अजंता से लगभग 80 मी० की दूरी पर एलोरा स्थित है। यहां का गुफासमूह हिंदू, बौद्ध तथा जैन तीनों धर्मों से संबद्ध रहा है। ईस्वी आठवीं से दसवीं शताब्दी तक के चित्र यहां अंकित थे। दक्षिण में अजंता शैली का प्रवाह बादामी, शिट्टण्णवाशल और एलोरा इन तीनों स्थानों के चित्रों में दृष्टिगत होता है। दक्षिण के कुछ उत्तरकालीन मंदिरों में भी भित्तिचित्रों के उदाहरण पाए जाते हैं। इसके पश्चात भित्तिचित्रों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का स्थान लघु चित्रों ने ले लिया और तालपत्र, भूर्जपत्र तथा कागज आदि पर चित्र बनाए जाने लगे। मध्ययुग में भित्तिचित्रों की प्रथा संपूर्णतः नष्ट तो नहीं हुई, किंतु उसका प्रचलन बहुत सीमित हो गया तथा चित्रों का अंकन पारंपरिक शैली में आबद्ध हो गया। मध्ययुगीन भित्तिचित्र राजस्थान, महाराष्ट्र, विंध्य-प्रदेश तथा कांगड़ा घाटी के कुछ स्थानों से प्राप्त हुए हैं। काल की दृष्टि से बहुत बाद के होते हुए भी ये चित्र मूलभूत रूप में अजंता परंपरा से अनुप्राणित प्रतीत होते हैं और उसका उत्तरकालीन रूप माने जा सकते हैं।[13]

अजंता के चित्र

अजंता के चित्र धार्मिक आधार पर दो—हीनयान और महायान—वर्गों में विभाजित किए जाते हैं। गुफा क्र० 9 तथा 10 के चित्र हीनयान परंपरा से अनुप्राणित हैं तथा तत्कालीन बौद्ध मान्यता का अनुसरण करते हुए उनमें भगवान बुद्ध की उपस्थिति प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त की गई है। शेष समस्त गुफाओं के चित्र महायान परंपरा के अनुरूप हैं तथा उनमें हम भगवान बुद्ध को मनुष्य रूप में अंकित पाते हैं। गुफा क्र० 10 का निर्माणकाल अभिलेखीय आधार पर ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी तथा गुफा क्र० 9 का ईसा पूर्व पहली शताब्दी माना गया है। किंतु दोनों का चित्रांकन एक ही काल में हुआ, जैसाकि चित्रों की शैली तथा रंगविन्यास और आकृतियोजना के सादृश्य से स्पष्ट है। कुछ विद्वानों ने गुफा क्र० 10 में चित्रित एक लेख का काल सातवाहन नरेश सातकर्णि के काल के लेखों की लिपि से साम्य के आधार पर ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी निश्चित किया है। पहले सातकर्णि का काल ईसापूर्व दूसरी शताब्दी माना जाता था, किंतु अब कई प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया है कि सातवाहन काल का आरंभ ईसापूर्व पहली शताब्दी के मध्य के पूर्व नहीं रखा जा सकता। अतः गुफा क्र० 9 और 10 के चित्र भी ईसापूर्व पहली के मध्य के ही प्रमाणित होते हैं।

गुफा क्र० 16 तथा 17 वाकाटक काल में बनाई गई थीं। गुफा क्र० 16 में पाए गए वाकाटक नृपति हरिषेण के अमात्य वराहदेव के एक अभिलेख में इस गुफा की 'सुवीथि' के रूप में चर्चा की गई है। 'सुवीथि' सुंदर चित्रों से अलंकृत वास्तु के अर्थ में अन्य साहित्यिक ग्रंथों (यथा 'उत्तररामचरित', 'त्रिकांडशेष') में भी प्रयुक्त हुआ है। गुफा क्र० 17 भी इसी वाकाटक नरेश के एक मांडलिक ने खुदवा कर और अलंकृत करवा कर भिक्षुसंघ को दी थी। इन गुफाओं के चित्रों के अनुरूप चित्र अन्य कई गुफाओं में भी दृष्टिगत होते हैं। वस्तुतः इस काल में अजंता की चित्रकला अपनी चरम विकासावस्था पर पहुंच गई थी तथा उच्चतम कलात्मकता और प्रासाद गुणों से भूषित हो गई थी। गुफा क्र० 1 के चित्र इसी अवस्था के हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुफा क्र० 2 के कुछ चित्र इस परंपरा में रखे जा सकते हैं, किंतु अधिकांश चित्र तकनीकी तथा अभिव्यंजना की दृष्टि से हीन हैं। इस गुफा के चित्रों में अलंकरण तथा पारंपरिकता का दर्शन अधिक होता है। भावाभिव्यक्ति तथा भव्यता में पूर्ववर्ती चित्रों की तुलना में इस गुफा के चित्र उन्नीस हैं। अतः इनका काल लगभग आधी शताब्दी बाद का माना गया है। गुफा क्र० 1, 9 तथा 10 के कुछ वाकाटकोत्तरकालीन चित्र भी इसी समूह के अंतर्गत रखे जाते हैं।

जैसाकि अन्यत्र कहा जा चुका है, संप्रति केवल छः गुफाओं (क्रमांक 1, 2, 9, 10, 16 तथा 17) के चित्र शेष हैं, जब कि सभी पूर्ण गुफाएं मूलतः चित्रित थीं। यह अत्यंत खेदजनक है कि इन अनुपम और अमूल्य चित्रों को नष्ट करने में प्रकृति की अपेक्षा मानव का हाथ अधिक रहा है। आधुनिक काल में ई० 1919 में जब ये गुफाएं सर्वप्रथम प्रकाश में आईं तब भी नैसर्गिक कारणों से जर्जरित होने पर भी ये चित्र काफी अच्छी स्थिति में थे। 1822 ई० में विलियम एर्स्किन तथा 1824 ई० में जेम्स ई० अलेग्जेंडर ने अपने विवरणों में अजंता के चित्रों की ताजगी एवं सुरक्षित स्थिति की चर्चा की थी। किंतु इसके पश्चात ही अजंता के चित्रों का विनाश आरंभ हो गया। राल्फ, ग्रेस्ले, जेम्स बर्ड तथा अन्य कई व्यक्तियों ने इन चित्रों की प्रतिलिपियां तैयार करने में सुविधा की दृष्टि से एवं अन्य प्रयोजनों से वार्निश लगाने आदि के प्रयोग किए जिनसे चित्रों की जीवनी शक्ति क्षीण होती गई अथवा चित्र धुंधले पड़ गए। स्वयं को 'अभिरक्षक' (क्योरेटर) कहनेवाले एक नारायण एकनाथ ने तो दर्शकों को चित्र काट कर स्मृतिचिह्न के रूप में भेंट करना आरंभ कर दिया था तथा कुछ दर्शकों ने इन गुफाओं में भोजन बनाने के लिए आग जलाने और अपने नाम सर्वविदित करने के उद्देश्य से चित्रों को खरोंचने में भी लज्जा का अनुभव नहीं किया। चित्रों को क्षति पहुंचाने वाले इन प्रयत्नों के अतिरिक्त छतों से रिसनेवाले पानी, वायुवेग, प्रकाश, मधुमक्खियों एवं चमगादड़ों ने भी इस विनाश में अपनी भूमिका निभाई। 1879 ई० में जहां सोलह गुफाओं में कम-अधिक मात्रा में चित्र उपलब्ध तथा अधिकांश अन्य गुफाओं के मूलतः चित्रित होने के चिह्न विद्यमान थे,[14] वहां 1910 ई० में केवल छः गुफाओं में ही चित्र शेष रहे।[15] हैदराबाद राज्य के पुरातत्व विभाग और बाद में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के तत्वावधान में चित्रों की सुरक्षा तथा देखभाल की दृष्टि से विगत कुछ दशाब्दियों में बहुत कार्य हुआ है।

तकनीक : अजंता के चित्रों के घटकों तथा तकनीक की जानकारी प्राप्त करने एवं उनके क्षय के कारण तथा संरक्षण के उपाय निर्धारित करने के उद्देश्य से उनका वैज्ञानिक दृष्टि से परीक्षण किया गया है। इसके परिणामस्वरूप चित्राधार तैयार करने की विधि एवं उनमें प्रयुक्त पदार्थ जैसे प्रश्नों पर महत्वपूर्ण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाश पड़ा है। इन परीक्षणों के परिणामों की संक्षिप्त चर्चा यहां की जा रही है।

गुफा तथा शिल्प का निर्माणकार्य पूर्ण होने पर उनकी ऊपरी ऊबड़-खाबड़ सतह को, जो इन चित्रों के वाहक का कार्य करती है, मिट्टी के पलस्तर से समतल किया जाता था। छेनियों के आघात तथा पत्थरों की प्रकृति के कारण कई बार बड़े बड़े चिप्पड़ निकल जाते जिनसे उनमें गहरी खरोचें पड़ जाती थीं। यह असमतल सतह गारे की पकड़ के लिए दांत का काम करती थी और लेप अच्छी तरह जम जाता था। इस पलस्तर को और अधिक मजबूती से जमाने के उद्देश्य से मिट्टी में वनस्पतियों के रेशे, धान के छिलके, घास, रेत अथवा पत्थरों का चूर्ण और गोंद अथवा सरेस मिलाए हुए दृष्टिगत होते हैं। कुछ गुफाओं में गोंद की जगह जिप्सम का प्रयोग पाया गया है। इस खुरदरे मोटे पलस्तर को चिकना करने के उद्देश्य से उसपर महीन शिलाचूर्ण अथवा बालू तथा बारीक रेशेदार वानस्पत्य पदार्थ से युक्त कीचड़ और लोहमय मिट्टी की एक और तह दी गई है तथा इसके ऊपर चूने का लेप कर चिकना चित्राधार तैयार किया गया है। बारीक पलस्तर की यह ऊपरी तह अंडे के छिलके जितनी महीन है। इस सतह के ऊपर विविध रंगों से चित्रों का निर्माण किया गया है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' (खं० 3, अध्याय 40, श्लो० 1-10) में चित्राधार अथवा मणिभूमि के निर्माण की जो विधि दी गई है वह अजंता के चित्रों में इस्तेमाल तकनीक से काफी मिलती-जुलती है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में दो (और आवश्यकता होने पर अधिक) लेपों के भीत पर लगाने का निर्देश है। इन लेपों में प्रयुक्त पदार्थों में ईंट का चूरा, मिट्टी, गुग्गुल, मोम, मधु, गुड़, मूंग, कुसुंभ, तेल, चूना, बेल का लसदार भाग, रेत इत्यादि का उल्लेख पाया जाता है। दूसरा लेप प्रथम लेप के सूखने पर दिया जाता था।

इस प्रकार ब्योरे की बातों में कुछ भेद होते हुए भी अजंता के चित्राधारों की रचना की पद्धति सिद्धांततः 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में वर्णित विधि से अभिन्न प्रतीत होती है।[16]

अजंता के चित्रों में प्रमुखतया पीले, लाल, नीले, सफेद, काले और हरे रंग का प्रयोग हुआ है। रंगों के विविध अनुपातों में सम्मिश्रण से कई अन्य रंगछटाएं तैयार की गई हैं। छः मुख्य रंगों में से काले को छोड़ कर शेष रंग खनिजों से तैयार किए गए हैं। पीला तथा लाल रंग क्रमशः पीली मिट्टी और गेरू से तैयार किए गए हैं। सफेद रंग के लिए चीनी मिट्टी, जिप्सम और चूने का उपयोग किया गया है। काला रंग काजल से तैयार किया गया है। नीले रंग के लिए लाजवर्द तथा हरे रंग के लिए ग्लेकोनाइट पत्थरों का उपयोग किया गया है। इनमें से लाजवर्द को छोड़ कर शेष सभी खनिज आज भी स्थानीय रूप से उपलब्ध हैं। अतः केवल लाजवर्द का आयात किया जाता था। इन रंगों के अतिरिक्त यदि वनस्पतियों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तैयार किए गए रंगों का उपयोग हुआ हो तो उसके कोई भी चिह्न संप्रति शेष नहीं हैं। उपर्युक्त छः रंगों के रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इन रंगों को गोंद अथवा सरेस के साथ पानी में घोल कर तैयार किया गया है। शिल्प-शास्त्रीय कृतियों में भी रंग तैयार करने की यही विधि दी गई है। उनमें मूल रंग पांच बताए गए हैं—सफेद, पीला, लाल, काला और नीला। इस सूची में हरे रंग को स्थान नहीं दिया गया है, क्योंकि यह वास्तव में एक मिश्रित रंग है जो नीले और पीले रंगों के मिश्रण से बनता है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' के चित्रसूत्र प्रकरण में कहा गया है कि इन पांच मूल रंगों की आवश्यकता और कल्पना के अनुसार विभिन्न अनुपातों में मिश्रण से सैकड़ों-हजारों रंगों का निर्माण किया जा सकता है। इस संदर्भ में चमड़े के क्वाथ की उपयोगिता का भी उल्लेख किया गया है (3.40.16-29)। अजंता के अनाम किंतु चिरचर्चित चित्रकारों ने छः रंगों के बहुविध विधान से जो बहुरंगी चित्रसृष्टि रच दी है वह चित्रकला के इतिहास मे स्वर्णाक्षरों में उल्लेखनीय है।

रंगकर्म की तकनीक की दृष्टि से भित्तिचित्र साधारणतया दो प्रकारों में विभक्त किए जाते हैं। प्रथम प्रकार वास्तविक फ्रेस्को अथवा फ्रेस्को बुओनो कहलाता है और दूसरा फ्रेस्को अ सेक्को अथवा टेंपरा नाम से प्रसिद्ध है। प्रथम प्रकार ईस्वी सन के आरंभ के पूर्वी यूरोप में बहुप्रचलित था और विट्रूवियस एवं प्लिनी ने इसकी सविस्तार चर्चा की है। इस पद्धति के अनुसार दीवार पर पलस्तर की एक मोटी तह दे कर चित्राधार का निर्माण किया जाता था और इस आधार के सूखने के पूर्व ही रंगकर्म किया जाता था। पलस्तर की आर्द्रता के फलस्वरूप रंग पलस्तर के भीतर तक पैठ जाते हैं तथा इस प्रकार वे चित्राधार के अभिन्न अंग बन जाते हैं। इस पद्धति में पलस्तर का उतना ही चित्राधार तैयार किया जाता है जितने पर चित्रकार उसके सूखने के पूर्व चित्रांकन कर सके और यदि चित्रकर्म पूर्ण होने के पूर्व ही पलस्तर का कुछ भाग सूख जाए तो उसे काटना पड़ता है। इस कारण फ्रेस्को बुओनो पद्धति से निर्मित भित्ति चित्रों में सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर जोड़ दृष्टिगत होते हैं। इस विधि में चित्रों के लिए प्रयुक्त रंगों को टिकाऊ बनाने हेतु उनमें गोंद, सरेस अथवा अन्य लसदार पदार्थ मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इसके विपरीत फ्रेस्को अ सेक्को अथवा टेंपरा पद्धति के अनुसार पलस्तर के सूख जाने के पश्चात उस पर चित्रांकन किया जाता है तथा रंग के घोल में लसदार पदार्थ मिलाए जाते हैं। रंगकर्म के समय चित्राधार के शुष्कावस्था में होने के कारण रंग पलस्तर के भीतर न पैठ कर केवल उसकी सतह पर ही रहता है और इस पद्धति के अनुसार निर्मित चित्र सरलता से अपने आधार से पृथक किया जा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकता है। पहली विधि के अनुसार बनाए हुए चित्र दूसरी विधि द्वारा निर्मित चित्रों की अपेक्षा कहीं अधिक टिकाऊ होते हैं तथा उन्हें आधार से हटाया नहीं जा सकता। मिश्र तथा मेसोपोटामिया के प्राचीन चित्र टेंपरा पद्धति से बनाए गए हैं।[17]

अजंता के चित्रों का इस दृष्टि से विश्लेषण करने पर उनमें तीन तहों के अस्तित्व का पता चला है जो एक दूसरे से आसानी से पृथक की जा सकती हैं। सबसे निचली तह उपरिलिखित विभिन्न पदार्थों से मिश्रित मिट्टी के पलस्तर की है और दूसरी तह, जो बहुत पतली है, चूने के लेप की है। तीसरी और अंतिम तह रंगों की है। रंगों में सरेस अथवा गोंद के मिश्रण के भी स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। चित्रकर्म के मात्र ऊपरी सतह पर आरोपित होने के कारण चित्रों में दरारें दिखाई देती हैं तथा कई स्थानों पर चित्र की तह प्यालों की तरह पलस्तर के ऊपर उठी हुई दिखाई पड़ती हैं। इससे स्पष्ट है कि अजंता के चित्र टेंपरा विधि से बनाए गए हैं।[18] इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि चित्रांकन की प्राचीन शिल्पशास्त्रों में वर्णित शैली टेंपरा पद्धति से मिलती-जुलती है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' (3.40.11) के अनुसार पलस्तर के सूखने पर ही उस पर रंगकर्म किया जाता था।

मूलतया गुफाओं की दीवारें ऊपर से नीचे तक चित्रित थीं, किंतु अब केवल मध्य भाग के चित्र ही शेष बचे हैं। मूलतः चित्र दीवारों पर धरातल से ऊपर तक तीन समानांतर पट्टिकाओं के रूप में बनाए गए थे। कथा के प्रसंग एक क्रम से, बिना किसी व्यवधान के अंकित किए गए हैं। प्रसंगों को बांटने की दृष्टि से अथवा विषय की भिन्नता दर्शाने के उद्देश्य से कोई विभाजक रेखा नहीं खींची गई है। कुछ स्थानों पर इस प्रयोजन से वृक्ष अथवा भवनों का चित्रण किया गया अवश्य दृष्टिगत होता है।

चित्रों का आकृतिविधान अत्यंत रमणीय है। शिल्पशास्त्रविषयक कृतियों में विभिन्न प्रकार की आकृतियों, अंग-प्रत्यंगों तथा प्रकृति के विविध पहलुओं के चित्रण का विशद विवेचन उपलब्ध होता है।[19] अजंता के चित्रकारों ने शास्त्रीय निर्देशों एवं कल्पना का समन्वय कर एक अनुपम रूपसृष्टि का निर्माण किया है। चित्र में तीसरे आयाम (गहराई) को सफलतापूर्वक व्यक्त करना एक सिद्धहस्त चित्रकार के लिए ही संभव है। अजंता के कलाकारों ने इसमें अद्भुत कुशलता का परिचय दिया है। वर्णिकाभंग द्वारा भावाभिव्यक्ति का इतना सुंदर दृष्टांत अन्यत्र दुर्लभ है।

अजंता के चित्रों का प्राण वास्तव में वे रेखाएं हैं जिनसे अभिव्यंजना की दृष्टि से समर्थ आकृतियों का निर्माण संभव हो सका है। शरीराकृतियों तथा अवयवों एवं अन्य रूपों की सुघड़ता रेखाओं के सजीव एवं सहजातिक अंकन से और रंगों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की अनुरूप अभियोजना के कारण अत्यंत आकर्षक एवं मुखर हो उठी है।

इन चित्रों का प्रयोजन मुख्यत: भगवान बुद्ध के जीवन के विविध प्रसंगों तथा उनके असंख्य पूर्वजन्मों की कथाओं (जातक) का अंकन है। इन कथांकनों से अवशिष्ट स्थान को लतापत्रक, पशु-पक्षियों, ज्यामितिक आकृतियों तथा अन्य वैविध्यपूर्ण रूपसज्जा से अलंकृत किया गया है।

जैसाकि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है, अजंता के प्राचीनतम चित्र दसवीं एवं नवीं गुफाओं में पाए जाते हैं। ये चित्र सातवाहनकालीन हैं। प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से इनमें से अधिकांश चित्र इतने क्षतिग्रस्त एवं अस्पष्ट हो गए हैं कि उनकी पहचान आज संभव नहीं है। शेष गुफाओं (1, 2, 16 तथा 17) के चित्र उत्तरकालीन हैं। गुफा क्र० 10 और 9 में भी कुछ स्थलों पर प्राचीन चित्रों के नष्ट होने अथवा धुंधले पड़ जाने पर उनके स्थान पर परवर्ती काल में नवीन चित्रों के अंकन के कुछ उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। इस नवीन चित्रांकन का एक अन्य कारण वह धार्मिक क्रांति भी हो सकती है जिसके परिणामस्वरूप भगवान बुद्ध के प्राचीन चित्रों में दृष्टिगत प्रतीकांकन और प्रतीकपूजा का स्थान उनके मानुषी रूप में अंकन ने ले लिया था। वास्तव में यह धार्मिक परिवर्तन इन चित्रों की विभाजक रेखा का काम करता है।

आगे चित्रों का वर्णन उनके कालक्रम के अनुसार किया गया है। इस संदर्भ में उन चित्रावशेषों की चर्चा नहीं की गई है जो अत्यंत धुंधले अथवा कटे पिटे रूप में दिखाई पड़ते हैं।

सातवाहनकालीन चित्र

गुफा क्र० 10

1. बोधिवृक्षपूजा : गुफा की बाईं वीथिका की दीवार पर एक राजपुरुष दो स्त्रियों तथा एक बच्चे के साथ बोधिवृक्ष की ओर जाता हुआ अंकित किया गया है। राजा के पीछे गदा, धनुष-बाण आदि आयुध लिए सैनिक हैं। बोधिवृक्ष के दूसरी ओर कुछ स्त्रियां नृत्य करती तथा वाद्य बजाती हुई चित्रित की गई हैं। यद्यपि इस दृश्य की ठीक ठीक पहचान संभव नहीं है, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि इस चित्र में किसी राजा द्वारा अपने पुत्र की मनौती के निमित्त बोधिवृक्ष की पूजा का अंकन है। राजपुत्र ठीक वृक्ष के नीचे खड़ा हुआ दिखाया गया है।[20] यह चित्र अत्यंत सूक्ष्मता से और किसी कुशल कलाकार की कूची से निर्मित है। चित्र की योजना, प्रत्येक व्यक्ति की भावभंगिमा तथा सशक्त रेखाएं और रंग कुल मिला कर चित्र की भव्यता की अमिट छाप दर्शक के मन पर प्रतिबिंबित कर देते हैं।

2. स्तूप पूजा : बोधिवृक्षपूजा के दृश्य के दाईं ओर स्तूपपूजा का अंकन है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संभवतः पूर्वचर्चित कथा का ही अगला खंड इस दृश्य में योजित है। इस चित्र में राजपुरुष एक स्तूप की पूजा हेतु जुलूस में जा रहा है। स्तूप एक प्राकार से घिरा हुआ है जिसके सम्मुख भाग में एक तोरणद्वार बना हुआ है। तोरण दो खड़े स्तंभों पर एक उष्णीष रख कर बनाया गया है तथा सांची और भरहुत के तोरणों से भिन्न है। स्तूप मेधियों, हर्मिका तथा छत्रों से युक्त है। चित्र के अंत में हाथी पर सवार राजा एक पात्र लिए चित्रित है जिसमें से एक टहनी बाहर की ओर निकलती दिखाई देती है।[21]

3. साम जातक : गुफा की दाईं ओर की वीथिका की भित्ति पर साम जातक का अंकन चित्रकार ने बहुत सूझबूझ के साथ किया है। जातक कथा के अनुसार बोधिसत्व ने अपने अंधे माता-पिता के इकलौते पुत्र साम के रूप में जन्म ग्रहण किया था। एक दिन जब वे नदी में मटका भर रहे थे तभी वाराणसी के राजा ने जंगली पशु के भ्रम में विषबुझा बाण चला दिया जिससे साम की मृत्यु हो गई। इसपर राजा ने उसके अंधे माता-पिता के पोषण का भार स्वयं लेना चाहा, किंतु एक देवी की कृपा के फलस्वरूप साम को पुनः जीवनदान तथा अंधे माता-पिता को नेत्र ज्योति प्राप्त हुई।

चित्र के पहले दृश्य में राजा साम की ओर तीर चलाता हुआ दर्शाया गया है। साम के बाएं कंधे पर घड़ा रखा हुआ है। इसके ठीक दाईं ओर पश्चातापपूर्ण मुद्रा में राजा अंकित है। तीसरे दृश्य में आश्रम में पुत्र की मृत्यु से शोकाकुल साम के माता-पिता साम के शव के साथ चित्रित हैं। इसके ठीक दाईं ओर के दृश्य में साम पुनः जीवित होकर राजा को उपदेश करता हुआ दर्शाया गया है। इस दृश्य में राजा और साम तथा पर्णशाला अंकित हैं। साम एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ है तथा दो मृग उसकी ओर देख रहे हैं।[22] साम की यह कथा श्रवणकुमार की कथा से बहुत मिलती-जुलती है। श्रवण राजा दशरथ के शब्दवेधी बाण से आहत होता है तथा उसके माता-पिता भी पुत्रशोक से राजा को शाप देकर मर जाते हैं। जातक कथा में उत्तरार्ध बिल्कुल बदल दिया गया है। चित्र बहुत सुंदर बना है। दृश्यों की योजना में चितेरे कलाकार ने अत्यंत कुशलता का परिचय दिया है। विशेषतः आश्रम के अंकन में चित्रकार ने जो पर्णकुटी तथा हरिणों की उपस्थिति दिखाई है वह उसकी गहरी पकड़ की परिचायक है।

4. षड्दंत जातक : उपरोक्त जातक के दाईं ओर षड्दंत जातक का चित्रण है। एक बार बोधिसत्व हाथियों के राजकुल में छः दांतों वाले हाथी के रूप में जन्मे। वे हिमालय के समीप एक झील के किनारे अपनी दो रानियों—महासुभद्रा तथा क्षुद्रसुभद्रा—के साथ रहते थे। एक बार षड्दंत ने एक साल वृक्ष को टक्कर मारी जिससे महासुभद्रा पर शहद और फूल गिर पड़े, किंतु क्षुद्रसुभद्रा पर चींटियां और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टहनियां गिरीं। क्षुद्रसुभद्रा यह सोचकर कि षड्दंत महासुभद्रा को प्रेम करता है, मर कर अगले जन्म में वाराणसी की रानी बन कर बदला लेने की भावना से मरण की कामना करने लगी। ऐसा ही हुआ। क्षुद्रसुभद्रा अगले जन्म में वाराणसी के राजा की प्रिय रानी बनी। षड्दंत से बदला लेने के लिए उसने एक दिन बीमारी का बहाना किया और राजा से षड्दंत के दांत मंगवाने के लिए कहा। सोनुत्तर नामक व्याध सात वर्ष तक षड्दंत को फांसने का प्रयत्न करता रहा। अंत में वह षड्दंत को घायल करने में सफल रहा। षड्दंत ने अपने दांत कटवाने में स्वयं सहायता की। सोनुत्तर जब दांत लेकर महल में पहुंचा तो रानी दुखित और मूर्छित हो गई और उसने अपने प्राण त्याग दिए।[23] षड्दंत जातक चित्रकारों का बहुत प्रिय विषय था जैसाकि अजंता के अन्य गुफाचित्रों (उदाहरणार्थ गुफा क्र० 17) से स्पष्ट है। किंतु इस चित्रण जैसी सफलता अन्यत्र दृष्टिगत नहीं होती। इस चित्र में कथा के चुने हुए दृश्य संयोजित हैं। प्रथम दृश्य में हिमालय की तराई में झील के तट पर हाथियों के यूथ का अंकन है। पर्वतश्रेणियों का प्रतीकांकन, झील में कमलदल, वट वृक्ष की लटकती जड़ें तथा विभिन्न मुद्राओं में हाथियों की आकृतियों का चित्रण बहुत खूबी से हुआ है। हाथियों की क्रीड़ाएं तथा भिन्न भिन्न मुद्राएं देखते ही बनती हैं। अजगर से स्वयं को छुड़ाते हुए एक हाथी तथा झील से एक कमल तोड़ कर हथिनी की ओर बढ़ाते एक दूसरे हाथी का चित्रण कर चित्रकार ने अपनी कुशलता सहज रूप से व्यक्त कर दी है। षड्दंत का डीलडौल अन्य हाथियों से भव्य तथा बड़े आकार में है। यह विशेषता भारतीय शिल्प में प्रमुख रूप से दृष्टिगत होती है। अगले दृश्य में महल में लेटी बीमार रानी तथा राजा और उसके ऊपरी भाग में व्याध अंकित हैं। यह दृश्य बहुत ही छोटे आकार में चित्रांकित है। इसके बाद के दृश्य में सोनुत्तर द्वारा षड्दंत के दांतों का काटा जाना, कावर में छहों दांतों का लाया जाना, रानी का मूर्छित होना आदि अंकित हैं। इस चित्रमाला की समाप्ति एक युगल के कुछ महिलाओं सहित चैत्यगृह की दिशा में प्रस्थान में हुई है। अरण्य के चित्रण की भांति महल के चित्रण में भी कलाकार की कुशलता प्रकट हुई है। न केवल पात्रों के व्यापार-व्यवहार का ही चित्रकार ने सुघड़ता से अंकन किया है, अपितु तत्कालीन वेशभूषा तथा उपस्करों का भी विस्तृत चित्रण हुआ है।

गुफा क्र० 9

नागराजा : गुफा की सम्मुख भित्ति के भीतरी भाग पर बाईं ओर की खिड़की के ऊपर पर्वतकंदरा के परिवेश में एक वृक्ष की छांह में दो नागपुरुष बैठे हुए अंकित किए गए हैं। इनमें से एक के सिर पर सात नागों का घटाटोप होने के कारण यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि वह नागराजा है तथा साथ का नाग उसका संबंधी अथवा अनुचर है। इसके पश्चात चट्टानों का चित्रण है और उसके बाद सिंहासनासीन एक राजा का चित्र है। सिंहासन के पास पांच व्यक्ति बैठे हैं तथा उनके हाथ अंजलि मुद्रा में हैं। इन व्यक्तियों के बाईं ओर एक युगल खड़ा है। इस समूह की ओर उड़ कर आती हुई मानवाकृतियां भी चित्रित हैं।[24] इस चित्र-पट के अन्य चित्रों के नष्ट हो जाने के कारण इसका विषयनिरूपण अत्यंत कठिन है। चित्र में राजा अपने निकट बैठे हुए प्रजाजनों की बात बड़े ध्यान से सुनता हुआ अंकित किया गया है। अतः यह संभवतः किसी जातक कथा का चित्रण है। सभी आकृतियां अत्यंत प्रभावशाली ढंग से तथा स्वाभाविक मुद्रा में चित्रित की गई हैं। उड़ती आकृतियां—अप्सराएं—भी गति का आभास प्रकट करती हैं।

2. पशुओं का खेदा : गुफा की बाईं ओर की वीथिका में स्तंभों के ऊपर कुछ चित्र बच गए हैं जिनमें पशुओं को खदेड़ते हुए चरवाहे अंकित किए गए हैं। पशुओं की भगदड़ तथा उनकी विभिन्न अवस्थाओं में भागने की मुद्रा बहुत ही सुंदर ढंग से चित्रित है।[25]

3. स्तूपपूजा : बाईं वीथिका की भित्ति पर एकदम बाईं ओर लगभग सोलह व्यक्तियों का एक समूह स्तूप की ओर बढ़ता अंकित किया गया है। कुछ व्यक्ति हाथ जोड़े हैं तथा कुछ तालियां बजाने की मुद्रा में हैं। स्तूप दो तोरणों से युक्त प्राकार से घिरा है। स्तूप मेधि अर्धांड, हर्मिका, छत्र आदि से युक्त है। एक तोरण की धरण गजपृष्ठाकार है जबकि दूसरे की धरण सांची और भरहुत के तोरणों के सदृश है। सभी उपासक लट्टूदार पगड़ी, बेलनाकार ताटंक, फलकहार, केयूर, कटक, सकच्छ धोती एवं पटकों से सज्जित हैं। दाईं ओर के भाग में शंख, शहनाई, झांझ तथा मृदंग बजाते हुए वादक अंकित हैं। स्तूपप्राकार के बाहर दो वृक्ष—पीपल तथा वट—एवं एक विहार अंकित हैं। अगले दृश्य में एक विहार के सम्मुख दो व्यक्ति खड़े हैं। यह चित्र संभवतः किसी राजा अथवा श्रेष्ठी द्वारा विहार बनवाकर किसी संघ को भेंट देने का समारोह अंकित करता है। इससे अगले दृश्य में एक वृक्षकुंज में बैठे उपासक तथा एक वास्तु में सखियों से वार्तालाप करती एक स्त्री दिखाई देती है।[26]

ये सभी चित्र सातवाहन कला के प्रतिनिधि उदाहरण हैं। इन चित्रों के आकृतिविधान तथा योजना की कल्पनाशक्ति की संक्षिप्त चर्चा ऊपर की जा चुकी है। किंतु इन चित्रों की कतिपय विशेषताओं की कुछ विस्तार से चर्चा अप्रासंगिक न होगी। आकृतियों का अंकन जहां प्रसंगोचित विशेषतानुसार तथा अत्यंत स्वाभाविक रूप से हुआ दृष्टिगत होता है वहीं सभी मानव चेहरों की एकरूपता खटकती है। वेशभूषा को छोड़ दिया जाए तो एक व्यक्ति को दूसरे से भिन्न करना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असंभव है। ऐसी अव्यक्तिवाचक मुखाकृतियों का अंकन गुफा क्रमांक नौ के चित्रों में विशेष रूप से दृष्टिगत होता है। अधिकांश चित्रों में हाथों की मुद्राएं भी अविकसित हैं तथा आंखों में भावशून्यता दीख पड़ती है।

परिवेश के चित्रण में चित्रकारों को अत्यधिक सफलता मिली है। तत्कालीन शिल्पचित्रों की तुलना में इन चित्रों में पृष्ठभूमि को भरने के उद्देश्य से अवसरोचित उपकरण चुने गए हैं। जैसे अरण्य के दृश्यों में वृक्षों तथा झाड़ियों का अंकन एवं महल आदि के दृश्यों में स्थापत्य के अंगों (उदाहरणार्थ चैत्यवातायन, गवाक्ष, प्राकार प्रभृति) तथा उपस्करों (जैसे आसन, छत्र, पर्यंक, भांड आदि) का समुचित चित्रण हुआ है। विभिन्न वृक्षों की पत्तियों, फलों एवं शाखाओं का सफल चित्रण चितेरे कलाकार की निरीक्षणशक्ति का परिचायक है।

परवर्ती चित्रकारों की तुलना में इस काल के कलाकारों ने कम रंगों का प्रयोग किया है। काला, पीला, हिरौंजी तथा हरा ये रंग प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुए हैं। इन गुफाओं में वाकाटक तथा वाकाटकोत्तर काल के चित्र भी अंकित मिले हैं जिनकी चर्चा आगे चलकर यथावसर की गई है।

वाकाटककालीन चित्र

अजंता की अधिकांश गुफाएं वाकाटक काल की हैं। गुफा क्र० 16 वाकाटकों की वत्सगुल्म शाखा के अंतिम ज्ञात नरेश हरिषेण (ई० 475-500) के सचिव वराहदेव ने तथा 17 और 19वीं गुफा हरिषेण के एक मांडलिक ने खुदवाई थीं। गुफा क्र० 1 अंजता के समीपस्थ जंजाल नामक ग्राम में स्थित वाकाटककालीन घटोत्कच गुफा के सदृश योजना तथा अलंकरण के आधार पर वाकाटक काल की मानी जा सकती है। कुछ चित्रों के आधार पर यद्यपि विद्वानों ने इसे ईस्वी छठी शताब्दी के मध्य में रखा है तथापि अन्य चित्र स्पष्टतः ईस्वी पांचवीं शताब्दी में रखे जा सकते हैं। हाल ही में हुई रासायनिक सफाई से अब तक धुंए तथा गर्द में छिपे कुछ चित्रों का उद्घाटन हुआ है जिससे चित्रों का कथाप्रवाह समझने में बहुत सहायता मिली है। वाकाटक काल के चित्र विषयवस्तु के आधार पर अधोनिर्दिष्ट तीन श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं :

1. बुद्धजीवन से संबंधित घटनाएं,
2. जातक कथाएं,
3. संकीर्ण।

बुद्ध के जीवन से संबद्ध घटनाओं में मायादेवी का स्वप्न, बुद्धजन्म, असित आदि ऋषियों की भविष्यवाणी, बुद्ध की शिक्षा-दीक्षा, वृद्ध, व्याधिग्रस्त, मृतक एवं संन्यासी को देखने पर विराग उत्पन्न होना, मारविजय, बुद्धत्वप्राप्ति, नलगिरि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामक हाथी का दमन, श्रावस्ती का चमत्कार, राहुलभिक्षा, तुषित स्वर्ग में जाना आदि का समावेश होता है।

जातक कथाएं भी अजंता के चित्रकारों का प्रिय विषय रही हैं। शंखपाल, महाजनक, शिबि, चांपेय, महाउम्मग्ग, हस्ति, विश्वंतर, षड्दंत, हंस, सुतसोम, शरम, महाकपि, मातृपोषक, मृग, न्यग्रोध प्रभृति कितनी ही जातक कथाओं का अंकन पाया गया है। न जाने कितने जातकचित्र नष्ट हो गए होंगे, किंतु जो इस समय अवशिष्ट हैं उनकी संख्या भी कम नहीं है। इन्हीं के साथ साथ कुछ अवदान कथाओं का भी चित्रण दृष्टिगत होता है।

तीसरे प्रकार के चित्रों में सात मानुषी बुद्ध, बोधिसत्व, संसारचक्र, शृंगार करती नायिका, उड़ते हुए देवी-देवता, विभिन्न कार्यकलाप करते बौने, किन्नर तथा खाली स्थानों को भरने के लिए प्रयुक्त ज्यामितीय, पशु-पक्षी और लता-पत्रकादि की आकृतियां आदि समाविष्ट हैं।

गुफा कृ० 1

1. शिबि जातक : गुफा के मुख्य द्वार से मंडप में प्रवेश करते ही बाईं ओर की भित्ति पर मुख्य द्वार तथा वातायन के मध्य शिबि जातक का अंकन दृष्टिगत होता है। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि यहां पालि जातकों में वर्णित शिबि जातक का अनुसरण न करते हुए चित्रकार ने 'महाभारत' तथा 'सूत्रालंकार' में वर्णित कथा का चित्रण किया है। पालि कथाओं में शिबि द्वारा अपनी आंखें, मांस आदि दान में देने का विवरण मिलता है, किंतु श्येन से उसके भक्ष्य कपोत की रक्षा के निमित्त स्वयं का दान देना अनुल्लिखित है। 'महाभारत' की कथा के अनुसार अग्नि तथा इंद्र राजा शिबि की परीक्षा लेने के उद्देश्य से क्रमशः कबूतर तथा बाज का रूप धारण करते हैं। कपोत श्येन से अपने प्राण बचाने की प्रार्थना करता हुआ राजा शिबि से शरण मांगता है। शिबि शरण देना स्वीकार करता है तथा श्येन द्वारा अपना भक्ष्य मांगने पर उसकी तौल के बराबर अपना मांस देने के लिए तत्पर हो जाता है। शिबि तुला के एक पलड़े पर कपोत को रख कर अपने मांस का एक टुकड़ा दूसरे पलड़े में डालता है। किंतु कपोत के वजन के तुल्य न होने पर वह अधिकाधिक मांस काट काट कर पलड़े में डालता जाता है और अंत में शिबि स्वयं पलड़े पर बैठ जाता है। तब परीक्षा में उसे सफल होते देख इंद्र तथा अग्नि अपने अपने रूप को धारण करते हैं तथा शिबि को पूर्ववत स्वस्थ कर देते हैं।

अजंता के चित्रकार ने उपर्युक्त कथा का चित्रण दो-तीन दृश्यों में किया है। प्रथम दृश्य में नीले और सफेद रंग का एक कबूतर राजा शिबि की गोद में शरण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेता हुआ तथा दूसरे दृश्य में राजा शिबि तराजू के पलड़ों के पास खड़ा हुआ अंकित किया गया है। राजा स्त्रियों से घिरा अंकित किया गया है। यहां बाज अनुपस्थित है। संभवतः राजा के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत करते समय उसने मानवी रूप धारण कर लिया हो। अंतिम दृश्य में राजा साधु-संन्यासियों से घिरा हुआ चित्रित किया गया है। वे राजा की करुणा के प्रति अपनी श्रद्धाभिव्यक्ति के उद्देश्य से फूल आदि का उपहार दे रहे हैं।[27]

प्रस्तुत चित्र में चेहरे लंबोतरे हैं और उनकी आंखें भावहीन तथा नाक लंबी है। दृश्यसंयोजन भी योजनाबद्ध नहीं है। वास्तु के अंकन में बारीकी नहीं है। अतः यह चित्र वाकाटक काल के अंत का प्रतीत होता है।

2. नंद की दीक्षा : शिबि जातक के पश्चात एक बहुत ही प्रभावशाली तथा सुंदर चित्र शृंखला है जिसे विद्वानों ने बुद्ध के सौतेले भाई नंद के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के प्रसंग से समीकृत किया है। इस चित्रपट्टिका के मध्यभाग में एक दुखी राजकन्या का अंकन है। वह अत्यंत कृशकाय तथा विषादमयी दिखाई देती है। अपनी सखियों अथवा दासियों से वह कुछ वार्तालाप कर रही है। एक दासी के हाथ में प्रसाधन की सामग्री से युक्त थाल है। कक्ष के पक्ष द्वार पर खड़े कंचुकी से कोई समाचार सुन कर एक परिचारक राजकन्या से कुछ कह रहा है। कंचुकी कुछ आभूषण तथा एक सफेद रंग का कोट पहने हुए है एवं उसके हाथों में दंड है। अतः इसे कुछ लोगों का बुद्ध अथवा भिक्षु मानना समीचीन प्रतीत नहीं होता। इस चित्रपट के आगे का तथा निचला भाग पूर्णतः नष्ट हो गया है। अतः अगले दृश्यों के विषय में कुछ कहना संभव नहीं है।[28] कुछ वर्ष पूर्व (1975 ई०) हुई रासायनिक सफाई से इस चित्रपट्टिका के कुछ चित्र प्रकाश में आए हैं जिनसे इनके अभिज्ञान पर नया प्रकाश पड़ा है। प्रो० श्लिग्लोफ ने इस कथा को सूदन तथा किन्नरी की कथा से संबद्ध किया है। सूदन तथा किन्नरी की प्रेमकथा का अंकन इस चित्र का विषय है, इस मत से एस० आर० राव भी सहमत हैं।[29]

3. शंखपाल जातक : मंडप की बाईं ओर की भित्ति पर शंखपाल जातक का चित्रण है। शंखपाल जातक बोधिसत्व के नाग रूप में जन्म लेने और त्याग करने की कथा है। एक बार बोधिसत्व मगध के राजकुमार के रूप में जन्मे। शंखपाल नामक नागराज के ऐश्वर्य से उन्हें मोह उत्पन्न हुआ और अगले जन्म में उनका नागकुल में ही जन्म हुआ। पूर्वजन्म के ज्ञान के कारण बोधिसत्व शीघ्र ही नाग-लोक के ऐश्वर्य से ऊब गए और स्वयं को एक बांबी के समीप इस इच्छा से निष्क्रिय छोड़ दिया कि जिसे उनके शरीर की आवश्यकता हो वह ले ले। एक दिन सोलह व्यक्तियों के एक समूह ने उसे मार कर घायल कर दिया तथा एक रस्सी से बांध लिया। आलार नामक एक गृहपति ने, जो अपने पांच सौ गाड़ियों के सार्थ के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ उस महामार्ग से गुजर रहा था,[30] द्रव्य देकर शंखपाल को मुक्त करवा दिया। इस कृपा के बदले शंखपाल ने आलार को अपने महल में एक वर्ष रख कर उसका आतिथ्य किया। बाद में आलार भिक्षु बन गया। बाईं ओर के ऊपरी भाग में हम नागराज को एक भिक्षु से, जो पहले मगध का राजा था, उपदेश ग्रहण करते हुए पाते हैं। चित्र का अधिकांश नष्ट हो चुका है, किंतु अवशिष्ट भाग अपनी गहरी छाप मन पर छोड़ जाता है। उपदेश सुनने वालों में एक स्त्री भी ध्यानपूर्वक सुनती चित्रित की गई है। उसके बैठने की मुद्रा बड़ी लुभावनी है। हमारी ओर उसकी पीठ है। चित्रकार की कल्पना प्रखरता तथा मुद्रा का अध्ययन श्लाघनीय है। दाईं ओर शिकारियों द्वारा ले जाया जाता हुआ शंखपाल और उसी के नीचे शंखपाल को छोड़ने की प्रार्थना करता हुआ आलार अंकित है। निचले भाग में बाईं ओर शंखपाल मानव रूप धारण कर अपने उद्धारकर्ता आलार को झील की ओर ले जा रहा है।[31] इस चित्र में आकृतियां बहुत सौष्ठव-पूर्ण बनाई गई हैं। शंखपाल तथा उसके पीछे बैठी राजपरिवार की स्त्रियां अत्यंत सानुपातिक रेखाओं में एवं सुनियोजित ढंग से चित्रित की गई हैं। प्रवचन सुनने वालों में पीठ फेरे बैठी एक स्त्री आकृति की चर्चा की जा चुकी है। उसके बैठने का ढंग अत्यंत मनोहारी है। बायां हाथ जमीन पर टेके, दोनों घुटने पालथी मारने की मुद्रा में किंतु कुछ उठे तथा दायां हाथ कुहनी से मोड़ कर सिर तक पहुंचा अंकित किया गया है। यह चित्र न केवल अजंता के अपितु संसार के सर्व-श्रेष्ठ चित्रों में स्थान पाने योग्य है।

4. महाजनक जातक : शंखपाल जातक के चित्रण के पश्चात महाजनक जातक का अंकन किया गया है। मिथिला के राजा के युद्ध में अपने ही भाई द्वारा मारे जाने पर उसकी रानी अपने बच्चे के साथ चुपचाप चंपा चली जाती है। लड़का महा-जनक बड़ा होने पर व्यापार करता है तथा एक बार सुवर्णभूमि के लिए जहाज से रवाना होता है। जहाज रास्ते में दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है, किंतु एक देवी की कृपा से महाजनक मिथिला पहुंच जाता है और वहां एक अनाथ कन्या सीवली से विवाह करता है। कुछ दिनों पश्चात महाजनक को वैराग्य होता है तथा वह दीक्षा लेना चाहता है। सीवली महाजन का मन फेरने के कई प्रयत्न करती है, किंतु असफल होने पर वह स्वयं भी संन्यास ले लेती है। इस कथा का अंकन समुचित क्रम से नहीं हो पाया है। दाईं ओर महाजनक के जहाज के दुर्घटनाग्रस्त होने का तथा बाईं ओर सीवली द्वारा महाजनक को भौतिक सुखों की ओर आकर्षित करने के प्रयत्नों का अंकन किया गया है।[32] चित्र में एक राजपुरुष सौंदर्यवती स्त्री के साथ एक भव्य वितान के नीचे बैठा अंकित किया गया है। एक नर्तकी अत्यंत भावपूर्ण मुद्रा में नृत्य कर रही है। राजा जड़ाऊ किरीट, कर्णाभूषणों, मुक्ताहार, केयूर तथा कटक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से भूषित है, जो अत्यंत कलात्मक शैली में बनाए गए हैं। रानी की मुद्रा तथा वस्त्राभूषण उसके भावों के अनुरूप तथा उपस्थित वातावरण के प्रति अनुराग व्यक्त करते प्रतीत होते हैं। इसके ठीक विपरीत महाजनक इन सबसे अलिप्त शांत भाव-भंगिमा में अंकित है। अंतिम दृश्य में राजा घोड़े पर सवार होकर अपनी राजधानी छोड़ता हुआ चित्रित है। सीवली निरुपाय हो उसका अनुसरण कर रही है। समस्त अंकन में चित्रकार की कुशलता झलकती है।

5. बोधिसत्व पद्मपाणि : अजंता का सबसे प्रख्यात चित्र बोधिसत्व पद्मपाणि का है, जो गर्भद्वार की बाईं भित्ति पर अंकित है। बोधिसत्व का अंकन अजंता के चित्रकारों का प्रिय विषय था। लगभग दस बारह स्थानों पर बोधिसत्वों के चित्र चित्रित थे। किंतु अब अधिकांश नष्ट हो गए हैं। प्रस्तुत चित्र इस दृष्टि से बहुत कुछ सुरक्षित स्थिति में है। इस चित्र में चित्रकार ने बोधिसत्व के स्वभाव के अनुरूप करुणामय भाव से युक्त आकृति की रचना की है। त्रिभंग मुद्रा में खड़े बोधिसत्व दाएं हाथ में कमल का पुष्प लिए हैं जो मंगल का प्रतीक है। विशाल आकृति व्यक्तित्व की विशालता तथा अर्धनिमीलित नेत्र करुणा की अगाधता के परिचायक हैं। संसार के दुख से बोधिसत्व मानो अपने भावपूर्ण नेत्रों से समस्त सृष्टि पर करुणावृष्टि कर देने की कामना व्यक्त कर रहे हैं। बोधिसत्व रत्नजटित मुकुट, कुंडल, यष्टि[33], मुक्तायज्ञोपवीत, केयूर तथा कटक आदि आभूषणों से सज्जित हैं तथा घुटनों से ऊपर तक धारीदार अधोवस्त्र पहने हुए हैं।

बोधिसत्व के दोनों ओर कुछ गण भी चित्रित हैं। ये बोधिसत्व के परिचारक रूप में अंकित हैं। 'बोधिसत्व' के बाईं ओर एक सुंदर स्त्री का अंकन है जिसे काली राजकुमारी के नाम से संबोधित किया गया है। वह संभवतः बोधिसत्व की पत्नी है। वस्तुतः यह चित्र सिंदूर से बनाया गया था और उस पर सीलन लगने से अब वह काला दिखाई देता है। दूसरी ओर एक कृष्णवर्ण गदाधारी व्यक्ति का अंकन है। इन चित्रों के पृष्ठभाग में पहाड़ी का अंकन है जिसमें यज्ञ, किन्नर, विद्याधर आदि विभिन्न वाद्य बजाते, गाते अथवा विहार करते अंकित हैं।[34] सारा प्रदेश प्रतीकात्मक गिरिकंदराओं तथा वृक्षों के हरित रंगपट से झांकते पशु-पक्षी आदि की सुंदर झांकी प्रस्तुत करता है।

6. महाउम्मग्ग जातक : बोधिसत्व पद्मपाणि के चित्र के पीछे बाईं ओर एक वितान अंकित है। इस चित्र के एक ओर आसनस्थ एक राजा तथा दूसरी ओर भिक्षा की अपेक्षा में खड़े चार अभ्यर्थी चित्रित किए गए हैं। वितान में एक युवा भिक्षु चीवर पहने तथा भिक्षापात्र हाथ में लिए चार उपासिकाओं के मध्य खड़ा अंकित है। कुछ विद्वानों ने इस दृश्य की पहचान महाउम्मग्ग जातक से की है। इस कथा में प्राज्ञ महोसध की पत्नी अमरा चार व्यक्तियों को खदेड़ देती है, जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्धिमान व्यक्तियों के रूप में छलना चाहते थे।[35]

7. मारविजय : अंतराल की बाईं ओर की भित्ति पर मारविजय का भव्य चित्रण है। बौद्ध साहित्य में काम, मोह, मद आदि विकारों को मार कहा गया है। इनपर विजय पाकर ही बुद्धत्वप्राप्ति संभव है। भगवान बुद्ध जब बोधिप्राप्ति के दृढ़ संकल्प से वज्रासन पर आसीन हो गए तब उन्हें विचलित करने के लिए मार ने अपनी सेना के साथ उन पर आक्रमण कर दिया। विभिन्न विकारों के भयानक दानवाकार सैनिकों तथा वासना आदि को सुंदर स्त्रियों के रूप में चित्रित कर चित्रकार ने अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है। बुद्ध के दाएं-बाएं तथा वज्रासन के नीचे विभिन्न हाव-भावों के साथ सुंदरियां अंकित हैं। ये मारकन्याएं बुद्ध को लुभाने की असफल चेष्टा कर रही हैं। एक सुंदरी के हाथों में कलश है। वह संभवतः मद्य अर्पित कर रही है। चारों ओर विभिन्न अस्त्र-शस्त्र लिए आक्रामक मुद्रा में मनुष्य, पशु और राक्षसाकृतियां बनी हैं। इस समस्त व्यवहार से तटस्थ बुद्ध भूमिस्पर्श मुद्रा में निर्विकार भाव से बैठे अंकित हैं। दाईं ओर निचले भाग में असफल मार महाराज पलायन करता अंकित है।[36] एक ही चित्र में विभिन्न भावों में हलचल करते मार के दूतों तथा निर्वेद एवं दृढ़ता की मूर्ति बुद्ध के चित्रण में चित्रकार को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। इस चित्र का संयोजन तथा भावाभिव्यक्ति की सफल व्यंजना इसे श्रेष्ठतम चित्रों की पंक्ति में स्थान दिलवाने में सफल है।

8. बोधिसत्व वज्रपाणि : गर्भद्वार के दाईं ओर बोधिसत्व वज्रपाणि का भव्य अंकन किया गया है। सांसारिक वासनाओं को नष्ट करनेवाले वज्रधारी बोधिसत्व की कल्पना बौद्ध परंपरा में बड़ी गहरी जड़ें जमा चुकी है। बोधिसत्व विभिन्न प्रकार के रत्नों तथा मुक्ताहार से जटित तीन शिखरों वाले किरीट मुकुट, मध्य में नीली मध्यमणिवाली यष्टि, मुक्तामहाहार, केयूर, कुंडल आदि आभूषणों से भूषित हैं। चेहरे के भाव पद्मपाणि की भांति करुणामय हैं। दाईं ओर फल-फूल अर्पित करते राजपुरुष तथा स्त्रियां अंकित हैं।[37] बोधिसत्वों के अंकन में महापुरुषलक्षणों को आरोपित किया गया है।

9. श्रावस्ती का चमत्कार : लोक में अपनी धाक स्थापित करने के उद्देश्य से बुद्ध ने कई चमत्कार भी प्रदर्शित किए थे। इनमें से एक श्रावस्ती चमत्कार के नाम से प्रसिद्ध है। श्रावस्ती नगर में राजा प्रसेनजित तथा अन्य लोगों को संतुष्ट करने के लिए बुद्ध ने स्वयं को असंख्य रूपों में तथा विभिन्न मुद्राओं में प्रकट किया। चित्र में कई समानांतर पट्टिकाओं में, जो एक के ऊपर एक चित्रित की गई हैं, पद्मासन में बैठे बुद्ध अंकित हैं।[38]

10. चंपेय्य जातक : बोधिसत्व वज्रपाणि के दाईं ओर चंपेय्य जातक का अंकन है। नागराज चंपेय्य के रूप में जन्मे बोधिसत्व अपनी स्थिति से ऊब कर तप करने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की इच्छा से मनुष्य लोक में जाकर एक बांबी के ऊपर रहने लगे। एक संपेरे ने उन्हें पकड़ लिया और उन्हें नचा कर जीविका अर्जित करने लगा। एक बार जब वाराणसी के राजदबार में संपेरा बोधिसत्व को नचाने लगा तो वहां पहुंचकर नागराज्ञी सुमना ने राजा से प्रार्थना कर उन्हें मुक्त करवा दिया। बोधिसत्व ने कृतज्ञ होकर नागलोक में राजा उग्रसेन का एक सप्ताह आतिथ्य कर खूब धन-संपत्ति देकर उन्हें वापस भेजा। चित्र में ऊपरी बाएं कोने में चंपेय्य अपने महल में अपनी रानी सुमना सहित बैठे हैं। दूसरे दृश्य में चंपेय्य के चले जाने पर विरह से पीड़ित सुमना विषाद मुद्रा में अंकित है। अगले दृश्य में वाराणसी के राजा उग्रसेन सांप को नाचते हुए देख रहे हैं। भीड़ में सुमना तथा उसका पुत्र मानव रूप में अंकित हैं। अंतिम दृश्य में चंपेय्य तथा राजा का अंकन है। राजा का चित्र नष्ट हो गया है। किंतु चंपेय्य नागों के घटाटोप से युक्त चित्रित किया गया है। यहीं चंपेय्य राजा को उपदेश देते हुए पुनः मानव रूप में अंकित है। नाग स्त्री-पुरुष उसके प्रति आदर व्यक्त कर रहे हैं।[39]

इस चित्र के अंकन में चित्रकार ने बहुत कम रंगछटाओं का उपयोग किया है, किंतु कलाकार ने चित्र के संयोजन में कल्पनात्मकता तथा दृश्यों के चयन में बुद्धि-मत्ता का परिचय दिया है। इससे चित्र की कथावस्तु एक सहज प्रवाह के रूप में आपसे आप मस्तिष्क में उतरती चली जाती है।

11. समादृश्य : मुख्य द्वार के दाईं ओर की भित्ति पर द्वार तथा वातायन के मध्य अंकित राजदरबार का यह दृश्य अभिज्ञान की दृष्टि से विद्वानों के मतभेद का शिकार बन गया है। इस दृश्य में एक सिंहासनासीन राजा का अंकन है। उसके चारों ओर दरबारी तथा दास-दासियां अंकित हैं। दाईं ओर के पक्षद्वार में कुछ विदेशी खड़े हैं तथा कुछ प्रवेश कर रहे हैं। ये नुकीली टोपियां (कुलह) पहने हैं और कुछ लोगों के मुंह पर दाढ़ी है। तीन व्यक्ति राजा को बहुमूल्य उपहार भेंट कर रहे हैं। पहले के हाथों में मोतियों की माला है जबकि दूसरे के हाथों में संभवतः थैली है और तीसरा व्यक्ति आभूषण से भरा थाल लिए हुए है। इनकी पहचान सर्वप्रथम वान लेकाक ने मध्य एशियाई जाति के लोगों के रूप में की। इस चित्र को चालुक्य नरेश द्वितीय पुलकेशी (ई० स० 610-642) के दरबार में ईरानी नरेश द्वितीय खुसरू (ई० स० 596-628) द्वारा प्रेषित दौत्य के अंकन के रूप में बड़े जोरशोर से प्रचारित किया गया है।[40] किंतु इस समीकरण का कोई ठोस आधार नहीं है। कुछ विद्वानों के मतानुसार ईरानी नरेश द्वारा कोई दूत भेजे जाने के प्रमाण नहीं मिलते। अतः यह समीकरण व्यर्थ है। साथ ही चूंकि अजंता के चित्र बौद्ध धर्मानुयायियों के लिए बनाए गए हैं अतः अन्य चित्रों के समान इस चित्र के भी बौद्ध धर्म से संबद्ध होने की संभावना कहीं अधिक है। संभवतः यह दृश्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्राट अशोक द्वारा विदेशी दूतों का स्वागत करने की ओर इंगित करता है।[41] अन्य विद्वानों के मतानुसार पश्चिमी भारत और ईरान के तत्कालीन व्यापारिक एवं कूटनीतिक संबंधों के संदर्भ में हुए सांस्कृतिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप प्रसंगानुसार इन विदेशियों का अंकन किया गया है। एलोरा की गुफाओं में पार्वती-मंगल के एक दृश्य में भी ऐसी आकृतियां मिलती हैं जो संभवत: हिमालय के दृश्य को ठीक ठीक इंगित करने के लिए बनी होंगी।[42]

12. अलंकरणाकृतियां : छत के अलंकरण में चित्रकार ने रंगों की खड़ी तथा आड़ी पट्टियां बनाकर आयताकार स्थानों में पशु-पक्षी, वेल-बूटे आदि चित्रित किए हैं। स्तंभ के आमलक शीर्ष के ऊपर की चौकी पर भी चित्र बनाए गए थे जिनमें से दो बैलों की लड़ाई का एक दृश्य आज भी अच्छी स्थिति में सुरक्षित है। दोनों बैलों की युयुत्सु मुद्रा और पूंछों का ऊपर उठ कर मुड़ना बहुत ही सशक्त रूप से कम से कम रेखाओं में चित्रित किया गया है। छत की चित्रकारी में कोने के स्थान कुब्ज विदूषकों, मिथुनों तथा मद्यपान के दृश्यों से अलंकृत हैं। कुब्ज विदूषक वाद्य बजाते अंकित हैं। मिथुनाकृतियां विभिन्न स्थितियों में बैठी चित्रित हैं। तीन मद्यपान दृश्यों में कुछ विदेशी आकृतियां दृष्टिगत होती हैं जिन्हें कुछ विद्वानों ने पुन: ईरानी राजा द्वितीय खुसरू तथा उसकी सौंदर्यशालिनी रानी शिरीन से जोड़ने का प्रयत्न किया है। भारतीय कला में मद्यपान के प्रसंगों के अंकन की कमी नहीं है। अत: ईरानी दौत्य की भांति यह समीकरण भी अयुक्ति-संगत है। छत की चित्रकारी कुल मिला कर एक बहुरंगी चित्रित वितान का आभास देती है।

गुफा क्र० 6

इस गुफा के अधिकांश चित्र धुएं तथा गर्द की घनी परतों में दब गए हैं। बुद्ध के जीवन से संबद्ध दो दृश्य बाईं तथा दाईं ओर की दीवार पर कहीं कहीं से दिखाई देते हैं। प्रथम दृश्य है श्रावस्ती का चमत्कार जिसमें चारों ओर बुद्ध ही बुद्ध दिखाई देते हैं तथा दूसरे दृश्य में मार के आक्रमण का प्रसंग चित्रित है। कुछ वर्षों पूर्व इस गुफा के चित्रों की सफाई की गई। चित्रों की सुरक्षा हेतु आरंभिक शोध-कर्ताओं ने जो वार्निश लगाई थी वह गहरी होकर चित्रों को ढंक देने का कारण बनी। सफाई से आसीन बुद्ध प्रतिमाओं की चार पंक्तियां प्रकाश में आईं। ये श्रावस्ती के चमत्कार से संबद्ध हैं। इसी गुफा के चित्रों से विदित हुआ कि मिट्टी के पलस्तर पर चूने की एक पतली तह देकर उसपर काला रंग लगाया जाता था तथा इसपर चित्र बनाते थे। चित्रों की काली पृष्ठभूमि तथा कई स्थानों पर काले रंग की प्रधानता का कारण यही है।[43] अंतराल की बाईं भित्ति पर उपस्थित बुद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतिमा पर जिप्सम की चमकदार तह तथा धूपदानी और कमल के फूल हाथों में लिए घुटने के बल बैठे एक उपासक का चित्र महत्वपूर्ण है। जिप्सम का पलस्तर संगमरमर की आभा देता है। घुटने के बल बैठे उपासक के हाथ में पकड़ी धूपदानी गोलाकार, ढक्कनदार तथा एक लंबे हत्थे से युक्त है। चित्र का अधिकांश अनुपस्थित होने के कारण कथा की पहचान संभव नहीं है। चित्र सुडौल रेखाओं तथा सानुपातिक आकृतिसंयोजन के आधार पर वाकाटक शैली के चित्रों में रखा जा सकता है।

एक स्थान पर एक स्त्रीमुख अवशिष्ट है जो अत्यंत आकर्षक है। कुछ द्वारपालों के चित्र भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होते हैं जो भाव एवं आलेखन की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। एक द्वारपाल के चित्र में वस्त्रों की प्रौढ़ रेखाएं तथा गजशुंडाकार पुष्ट बाहु, मांसल हाथ तथा उंगलियों की दर्शनीय मुद्राएं शेष हैं। इस गुफा के चित्रों का आलेखन कुशल कलाकारों द्वारा हुआ प्रतीत होता है। कलापारखियों के मतानुसार गुप्तकालीन (वस्तुतः वाकाटककालीन) चित्रकला की वह परिपक्व शैली यहां दृष्टिगोचर होती है जो अपनी चरम सीमा को पहुंच गई थी तथा जिसके जोड़ का आलेखन सत्रहवीं गुफा के बरामदे में मिलता है।[44]

अभी हाल ही में (जुलाई 1978) रासायनिक सफाई के फलस्वरूप इस गुफा में तब तक अज्ञात कई और चित्रपट्टों के प्रकाश में आने का समाचार मिला है। इनका अध्ययन होना अभी शेष है।

गुफा क्र० 16

अजंता की यह गुफा गुप्त-वाकाटक काल की चित्रकला का एक महत्वपूर्ण भंडार है। इसमें बुद्ध के जीवन तथा जातक कथाओं से संबद्ध कुल चौदह चित्र कम-अधिक रूप में अवशिष्ट हैं। बुद्ध के जीवन से संबंधित दृश्यों में मायादेवी का स्वप्न, असित ऋषि से चर्चा, गौतम का विद्याभ्यास, वृद्ध तथा अन्य तीन निमित्तों का दर्शन, सुजाता की खीर, धर्मोपदेश, नंद की दीक्षा आदि का समावेश है। जातक कथाओं में केवल सुतसोम, महाउम्मग्ग तथा हस्तिजातक का अंकन है।[45]

1. बुद्ध का तुषित स्वर्ग में उपदेश : गुफा के बाहर बाईं ओर की सम्मुख भित्ति पर बुद्ध को तुषित स्वर्ग में उपदेश करते तथा वहां से लौटते हुए अंकित किया गया है। बौद्ध साहित्य में यह कथा विस्तार से वर्णित है। विश्वंतर के रूप में जन्म लेने के पश्चात बोधिसत्व तुषित स्वर्ग के एक देव श्वेतकेतु के रूप में उत्पन्न हुए। दूसरे जन्म की अवधि तक बोधिसत्व इसी रूप में तुषित स्वर्ग में रहे। प्रथम दृश्य में बुद्ध तुषित स्वर्ग से अपने अंतिम जन्म हेतु अवतरित होते दिखाए गए हैं। बादलों का अंकन अत्यंत पारंपरिक ढंग से हुआ है। दूसरे दृश्य में बुद्ध सिंहासन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर बैठे उपदेश दे रहे हैं तथा देव-देवियों का समूह उन्हें घेर कर बैठा है।

2. हस्तिजातक : गुफा के पहले बरामदे में उपरोक्त चित्र के ठीक पिछली ओर हस्तिजातक का अंकन है। आर्यशूर की 'जातकमाला' में हस्तिजातक की कथा दी गई है। एक जन्म में बोधिसत्व ने एक शक्तिशाली हाथी के रूप में जन्म लिया। वे जंगल में अकेले रहते थे। एक दिन किसी के रोने की दर्दभरी आवाज सुनकर वे उस दिशा में गए और पाया कि सात सौ यात्रियों का एक समूह भूख तथा प्यास के कारण मृतप्राय है। एक विशाल हाथी को अपनी ओर बढ़ते देख वे यात्री भय-भीत हुए, किंतु बोधिसत्व ने उनका भय दूर कर उनके विषय में पूछताछ की। उन लोगों ने बताया कि राजा द्वारा निष्कासित एक हजार व्यक्तियों में से वे सात सौ लोग भूख और प्यास के मारे मृत्यु की बाट जोह रहे हैं। बोधिसत्व ने उन्हें एक पर्वत की ओर जाने का निर्देश दिया जिसके समीप एक बड़ी झील तथा एक हाथी का शव पड़ा था। शेष यात्रा के लिए उक्त हाथी का मांस खाने की बात कह कर बोधिसत्व एक अन्य मार्ग से उस पर्वत पर पहुंचे तथा वहां से कूद कर मृत्यु का वरण किया। जब वे सात सौ व्यक्ति वहां पहुंचे तब उन्होंने मृत हाथी को पहचाना तथा उनके द्वारा अपने लिए किए त्याग को जाना। उनकी दया के प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर उन्होंने उनका मांस तथा झील से पानी लेकर अपनी यात्रा पूर्ण की।

चित्र में यात्रियों का एक समूह चित्रित है जिनके बिखरे केश तथा फूले पेट क्षुधार्तता के प्रतीक हैं। उनकी पीठ पर सामान लदा है तथा वे पहाड़ पर खड़े एक सफेद हाथी की ओर इंगित कर रहे हैं। दूसरे दृश्य में वह दयालु हाथी मरा पड़ा है तथा दो यात्रियों द्वारा बड़ी बड़ी छुरियों से उसका मांस काटा जा रहा है। कुछ व्यक्ति मांस भूनते, खाते तथा कुछ पानी लाते चित्रित किए गए हैं।[46]

3. महाउम्मग्ग जातक : मंडप में प्रवेश करने पर सर्वथा बाईं ओर बनी कोठरी के द्वार के दाईं ओर महाउम्मग्ग की कथा चित्रित है। इस जातक कथा में दैवी शक्ति से युक्त महोसघ नामक बालक को कुछ गंभीर विवादों का बुद्धिमत्तापूर्वक समाधान प्रस्तुत करते हुए अंकित किया गया है। चित्र के ऊपरी भाग में महोसघ के तालाब तथा कुछ लोगों से चर्चा करते हुए महोसघ का चित्रण किया गया है। इसके नीचे महोसघ द्वारा सच्ची माता घोषित करने के प्रसंग का चित्रण है। एक चुड़ैल द्वारा दूसरे के बच्चे को अपना बच्चा बताने पर उसकी असली मां कौन है इसका निर्णय कठिन हो गया। महोसघ ने दोनों को आदेश दिया कि वे बच्चे को अपनी अपनी ओर खींचें। इस प्रक्रिया में बच्चे को दर्द से पीड़ित देख वास्तविक माता ने उसे खींच कर छोड़ दिया और इस आधार पर महोसघ ने उसका पुत्र उसे दि लवा दिया। यहां पर कुछ भिन्न रूप से यह कथा चित्रित है। बच्चे को दो भागों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में काट कर बांट लेने का निर्णय देने पर बच्चे की वास्तविक मां ने अपना अधिकार छोड़ने की तत्परता प्रकट की। यही यहां चित्रित है। इसके निचले दाएं भाग में एक रथ के स्वामित्व के निर्णय का दृश्य अंकित किया गया है। एक रथ के दो दावेदार हो उठने पर महोसघ ने एक सरल परीक्षा द्वारा असली स्वामी को रथ दिलवा दिया। इसी भित्ति के एक कुड्यस्तंभ पर इस कथा का तीसरा प्रसंग अंकित है। महोसघ के तालाब में स्नान करती हुई एक महिला का एक सूत का गोला एक अन्य स्त्री ने चुरा लिया तथा वह उसे स्वयं अपना बताने लगी। पर महोसघ ने उससे पूछा कि गोला किस वस्तु पर लपेटा गया था और इस प्रकार नकली दावेदार का झूठ उजागर हुआ।[47]

4. नंद की दीक्षा : मंडप की बाईं ओर की भित्ति पर नंद की दीक्षा का दृश्य अंकित है। बोधिप्राप्ति के पश्चात एक बार बुद्ध कपिलवस्तु आए। बुद्ध के महल में आने पर यशोधरा एवं राहुल से उनकी भेंट हुई (जिसका अत्यंत सुंदर चित्रण सत्रहवीं गुफा में किया गया है)। तत्पश्चात भिक्षा के लिए वे अपने मौसेरे भाई नंद के घर गए जो उस समय अपनी पत्नी सुंदरी के प्रसाधन में व्यस्त था। नंद के बाहर आने पर बुद्ध ने अपना भिक्षापात्र उसके हाथों में रख दिया और वे उसे विहार में ले गए जहां उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका मुंडन करवा कर उन्होंने उसे प्रव्रज्या दे दी। नंद ने प्रव्रज्या तो जिस किसी प्रकार स्वीकार कर ली, परंतु उसका मन उसकी सुंदर पत्नी सुंदरी में ही लगा रहा। तब उसका मन वहां से हटाने के लिए बुद्ध ने उसे स्वर्ग ले जाकर दिव्य अप्सराएं दिखाईं तथा भिक्षुव्रत का आचरण करने पर उनकी प्राप्ति का आश्वासन दिया। इन अप्सराओं की प्राप्ति के उद्देश्य से उसने धार्मिक व्रतों का कठोरता से पालन करना आरंभ कर दिया। परंतु अन्य भिक्षुओं के उपहास से वह सही रास्ते पर आ गया और उसे अर्हत्पद प्राप्त हुआ।

इस चित्रकथा के बहुत से चित्र नष्ट हो गए हैं। प्रथम दृश्य में नंद के राज्याभिषेक का चित्रण है। दूसरे दृश्यों में नंद का सुंदरी के लिए विषाद और बुद्ध के साथ उड़ते हुए दिव्य लोक की ओर प्रस्थान का दृश्य भलीभांति दिखाई देता है। इस कथा का उत्तरार्ध एक बड़ी चित्रपट्टिका के रूप में बाईं ओर चित्रित किया गया है। नंद के दीक्षित होने पर एक सेवक द्वारा नंद का मुकुट सुंदरी के समीप भेजा जाता है। उसे देखकर सुंदरी विषाद से मूर्च्छित हो खाट पकड़ लेती है। यह दृश्य बहुत ही भव्य रूप में चित्रकार ने अंकित किया है। सुंदरी पर्यंक पर बिलकुल निढाल अवस्था में एक लोड के सहारे बैठी है। उसे बैठने में पीछे से एक दासी बगलों में हाथ डाले सहायता कर रही है। एक दासी सुंदरी के दाईं ओर बैठी उसका दायां हाथ पकड़े हुए है। संभवतः वह नाड़ी टटोल रही है। उसके बगल में एक लंबे दंडवाले पंखे को लिए बहुभंग स्थिति में खड़ी एक अन्य दासी अंकित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके और बाईं ओर एक चिंतित मुखवाले सेवक का चित्र है। दाईं ओर दो स्त्रियां मौन खड़ी हैं, किंतु उनकी मुद्राओं से स्पष्ट है कि उनमें प्रश्नोत्तर हुआ है और उसी की परिणति उनकी स्तब्धता में हुई है। बाईं ओर की दासी का दायां हाथ कुछ मांगने की मुद्रा में आगे बढ़ा है तथा दाईं ओर की स्त्री, जो बाएं हाथ में प्याले से ढके एक भृंगार को लिए खड़ी है, दाएं हाथ की तर्जनी तथा मध्यमा उंगलियों द्वारा 'दो' का संकेत कर रही है। मंडप पर बैठा मोर भी मानो शोकाकुल है और अपनी गर्दन बढ़ा कर दोनों स्त्रियों के वार्तालाप से कुछ जानना चाहता है। संभवतः दाईं ओर की स्त्री वैद्य है और सुंदरी की स्थिति देख कर वापस लौट रही है। उससे दासी औषध मांग रही है और वह संकेत से यह बता कर कि सुंदरी मात्र दो घड़ियों अथवा दो दिनों की मेहमान है, स्थिति की गंभीरता प्रकट कर रही है।[48]

यह चित्र भी विश्व के श्रेष्ठतम चित्रों में गिना जाता है। इसकी प्रशंसा विविध कलाविदों ने की है। ग्रिफिथ के शब्दों में शोक, करुणा तथा स्पष्टरूपेण कथोपकथन की पद्धति की दृष्टि से प्रस्तुत चित्र को उन्नीस सिद्ध करने वाली कोई कृति कला के इतिहास में नहीं मिलेगी। फ्लोरेंस के चित्रकार संभवतः इस चित्र की अपेक्षा अधिक सुंदर आकृति खींच सकते हैं और वेनिस के चित्रकार शायद इससे सुंदर रंग भर सकते हैं किंतु उनमें से किसी के लिए भी चित्र में इससे अधिक तीव्र भावाभिव्यक्ति भरना संभव नहीं था।[49] इससे बढ़कर इस चित्र का और क्या मूल्यांकन किया जा सकता है।

5. आकाशचारी अप्सरा : मंडप की बाईं भित्ति पर सर्वथा दाईं ओर हवा में उड़ती अप्सरा का दर्शनीय चित्र अंकित है। इस अप्सरा की अलकावली लहराती हुई अंकित है। केशपाश तथा उससे लटकती ललाटिका, जूड़े में गूंथी पुष्पमाला, कान में झूलते कुंडल, बड़े मणियों की एकावली, बाहुओं में केयूर तथा कलाइयों में कंकण पहने यह अप्सरा बहुत भव्य दृष्टिगत होती है। पट्टिकाओं से अलंकृत अर्धोरुक भलीभांति चित्रित हुआ है।[50]

6. अजातशत्रु—बुद्ध भेंट : अंतराल के बाईं ओर की सम्मुख भित्ति पर अजातशत्रु और बुद्ध की भेंट का भव्य दृश्य अंकित है। एक बड़े जुलूस के साथ राजा अजातशत्रु बुद्ध से मिलने के लिए जाते हुए चित्रित हैं। जुलूस में विभिन्न अलंकरणों से सज्जित हाथी, प्यादे, बांसुरी तथा तुरही बजाते वादक आदि सम्मिलित हैं। कुछ हाथियों पर स्त्रियां भी सवार हैं। राजा का हाथी सबसे प्रभावशाली रूप से चित्रित है। 'दीघनिकाय' में इस प्रसंग का वर्णन आया है। एक बार बुद्ध राजगृह पहुंचे तथा अजातशत्रु के राजवैद्य जीवक के आम्रवन में ठहरे। एक दिन चांदनी रात में राजा अपने महल में बैठा था। अपने पिता का वध करने पर जो अशांति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके मन में उठ खड़ी हुई थी उसके शमनार्थ उसने किसी महापुरुष का उपदेश सुनने की इच्छा व्यक्त की। उसके मंत्रियों ने कुछ साधुओं के नाम सुझाए। राजा द्वारा जीवक से पूछने पर उसने बुद्ध की महानता का वर्णन किया तथा राजा को उनके दर्शन करने के लिए प्रेरित किया। अपने रनिवास सहित हाथियों पर सवार हो अजातशत्रु ने आम्रोद्यान की ओर प्रस्थान किया और बुद्ध से भेंट की। उसने बुद्ध से कई प्रश्न पूछे तथा अपने पिता के वध का अपराध स्वीकार कर बुद्ध की शरण ली। इसके बाद वह निश्चित मन से लौटा।[51]

7. **बुद्ध का धर्मोपदेश** : अंतराल की सम्मुख भित्ति पर दाईं ओर धर्मोपदेश करते हुए बुद्ध का चित्र है। यह बहुतांश में नष्ट हो गया है। इसमें अनेक किरीटधारी पुरुषों तथा अत्यंत श्रद्धापूर्वक उपदेश सुनते हुए भिक्षुओं का अंकन दृष्टिगोचर होता है।[52]

8. **बुद्ध के जीवन से संबद्ध चित्र** : दाईं दीवार के मध्य भाग पर बाएं से दाईं ओर चित्रित तीन दृश्यों में क्रमशः मायादेवी के स्वप्न, असित ऋषि से भेंट तथा सिद्धार्थ के विद्याभ्यास का अंकन किया गया है। प्रथम दृश्य में राजमहल में पर्यंक पर मायादेवी सोई हैं। समीप ही भूमि पर उनकी दो दासियां लेटी हैं। इसके समीप ही शुद्धोदन को अपने स्वप्न के विषय में बताती मायादेवी चित्रित हैं। दूसरे दृश्य में नवजात बालक को अपनी गोद में लिए असित ऋषि एकाग्रता से निरीक्षण करने के पश्चात उसके भविष्य का कथन कर रहे हैं। इसके बाद कुछ बच्चों के साथ सिद्धार्थ विद्याभ्यास करते हुए चित्रित हैं। ऊंची कोनदार टोपी (कुलह) पहने सिद्धार्थ फलक पर अक्षराभ्यास कर रहे हैं। इसके निचले भाग में प्रत्यालीढ़ मुद्रा में खड़े सिद्धार्थ द्वारा धनुर्विद्या के अभ्यास का दृश्य चित्रित है। इसके अनंतर बाईं ओर से क्रमशः दाईं ओर बढ़ने पर दो दृश्य अंकित हैं। प्रथम में सिद्धार्थ द्वारा वृद्ध, व्याधिग्रस्त, मृत तथा संन्यासी इन चार निमित्तों को देखने का दृश्य अंकित है। इसका बहुतांश अब नष्ट हो गया है। दूसरे दृश्य में गौतम बुद्धत्वप्राप्ति के पश्चात त्रपुष तथा भल्लिक नामक दो व्यापारियों से शहद तथा चावल के अपूप और सुजाता से खीर ग्रहण करते हुए चित्रित हैं। इसके पश्चात बुद्ध द्वारा राजगृह जाने के दृश्य का अंकन है। राजगृह के सपाट छतोंवाले घर, उनपर लगे लकड़ी के छज्जे, जाल-वातायन आदि बहुत खूबी से चित्रित किए गए हैं।[53]

गुफा क्र० 17

सोलहवीं गुफा की अपेक्षा सत्रहवीं गुफा में चित्रों का अंकन विस्तार, आधिक्य तथा अधिक भव्यता से हुआ दृष्टिगत होता है। इस गुफा में जातक कथाओं के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंकन को प्रमुखता दी गई है। बुद्धजीवन से संबंधित चित्र बहुत कम हैं। सबसे अधिक सुरक्षित चित्र इसी गुफा में हैं।

1. संसारचक्र : बरामदे की बाईं भित्ति में एक भव्य चित्र अंकित है। यह संसार-चक्र का प्रतीक माना जाता है।[54] कुछ विदेशी विद्वानों ने इसे क्रांतिचक्र मानकर इस गुफा को 'क्रांतिचक्र गुफा' नाम दिया था, किंतु यह चित्र स्पष्टतः संसार का प्रतीकांकन है। संसार को कई बार चक्र की उपमा दी गई है।[55] इस विशाल चक्र को थामे दो हाथ ऊपर की ओर दृष्टिगत होते हैं। निचले भाग में हरे रंग से चित्रित तथा मणिभद्र नाम से अंकित एक खंडित मानवाकृति है। यह चक्र मूलतः आठ भागों में विभाजित करने की योजना थी, किंतु कुछ भाग में वातायन आ जाने के कारण चित्र केवल पांच भागों में बंटा अंकित है। चक्र की नाभि से परिधि पर्यंत अरे बने हुए हैं। शेष तीन भाग वातायन के कारण चित्रित करना संभव नहीं हो सका। कुछ विद्वानों ने इसे षट्चक्र माना है। इस चक्र की नाभि में वानर, मिथुन, कुम्हार, ऊंट आदि पशुओं तथा मानवाकृतियों का चित्रण है जब कि अरों के मध्य जीवन के विभिन्न दृश्य, जैसे, हाट-बाजार, उद्यानगोष्ठी, किसानों की बस्ती, राज-महल के जीवन के दृश्य, प्रेमी युगल, नृत्य-वाद्य की संगीतियां, अरण्य में साधना करते ऋषिगण प्रभृति अंकित हैं। इसके किनारे सर्पाकार—नदी के प्रवाह जैसा—एक व्याल चित्रित है जिससे भयभीत हो लोक अपने मालमत्ता सहित भाग-दौड़ कर रहे हैं। इस चक्र के चित्रण के पीछे स्पष्टतः कोई दार्शनिक विचार निहित है। तिब्बत में भी इस प्रकार के चित्र उपलब्ध हुए हैं।

2. विश्वंतर जातक : बरामदे की दीवार पर चित्रकार ने विश्वंतर जातक के चित्र बनाना आरंभ किया था, किंतु शीघ्र ही स्थानाभाव के कारण उक्त कथा के कुछ दृश्य, जो चित्रित हो गए थे, वैसे ही छोड़ कर सभामंडप की बाईं विस्तृत भित्ति पर इस जातक का अंकन पुनः किया गया।

बरामदे में अंकित विश्वंतर जातक के दृश्यों में विश्वंतर अपनी रानी के साथ महल में मधुपात्र पकड़े बैठा अंकित है। अपने देशनिकाले का समाचार वह अपनी पत्नी को सुनाता है जिसके फलस्वरूप सर्वत्र विषाद छा जाता है। दूसरे दृश्य में विश्वंतर दान दे रहा है। दान पाने के इच्छुक साधु-संन्यासियों, भिक्षुकों तथा विभिन्न वेशभूषा के लोगों की भीड़ इकट्ठी है। इन सबके चेहरों के भाव देखने लायक हैं। हर व्यक्ति अलग अलग भाव-भंगिमा में अंकित हैं।[56] सभामंडप में विस्तार से यह कथा चित्रित है। कथा के अनुसार एक बार बोधिसत्व राजा विश्वंतर के रूप में जन्मे। स्वभाव से करुणामय होने के कारण विश्वंतर ने अपने राज्य के हाथी को भी दान में दे दिया जिसके कारण अकाल के समय वर्षा होती थी। इस पर जनाक्रोश बढ़ा और फलस्वरूप विश्वंतर को उनके परिवार सहित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देशनिकाला दे दिया गया। जाते जाते भी विश्वंतर अपनी संपत्ति, आभूषण तथा बच्चों और पत्नी को भी दान में दे देते हैं। लोभी ब्राह्मण जूजक बच्चों को बेचने निकलता है तथा विश्वंतर के पिता उसे द्रव्य देकर अपने पोतों को संरक्षण में ले लेते हैं। विश्वंतर की पत्नी माद्री जिस ब्राह्मण को दान में दे दी जाती है वह स्वयं शक्र (इंद्र) था जिसने विश्वंतर की परीक्षा लेने के उद्देश्य से यह सारा नाटक रचा था। शक्र संतुष्ट होकर विश्वंतर को पुनः सब वस्तुएं वापस कर देता है तथा विश्वंतर अपने परिवार सहित अपने पिता के पास रहता है। प्रस्तुत चित्र के अंकन में चित्रकार ने अपने कौशल का अच्छा परिचय दिया है। उसकी तूलिका मानो हर व्यक्ति के स्वभावोचित भावों के अंकन में पूर्णतः कुशल है। चित्र में अपने माता-पिता से विदा लेते हुए विश्वंतर, चार अश्वों से युक्त एक रथ में बैठ कर हाट-वीथिका से गुजरते विश्वंतर, आश्रम में निवास, जूजक को बच्चों का दान, विश्वंतर के पिता द्वारा बच्चों को जूजक से प्राप्त करना, माद्री तथा विश्वंतर का नगर में लौटना, इन दृश्यों की सुंदर संयोजना की गई है। चित्र बहुत अच्छी अवस्था में नहीं हैं तथापि चित्रों का विवरण सुलभता से दृष्टिगत होता है।[57] चित्र की सशक्त योजना के अतिरिक्त शरीर के अवयवों का सुघड़ रेखांकन, पात्रों की चारित्रिक विशेषतानुसार चेहरे का भाव आदि प्रकट करने में चित्रकार आश्चर्यजनक रूप से सफल हुआ है।

3. आकाशचारी इंद्र तथा अप्सराएं : मुख्य द्वार के बाईं तथा दाईं ओर हवा में उड़ते शक्र (इंद्र), गंधर्व तथा अप्सराएं अंकित हैं। इंद्र के आगे-पीछे बांसुरी, मंजीरे, वीणा आदि वाद्य बजाती अप्सराएं हैं। इंद्र किरीट मुकुट, कुंडल, एकावली तथा जड़ाऊ हार, मुक्तायज्ञोपवीत, केयूर, कटक, असिपुत्रिका तथा असि से सज्जित है। आड़ी धारियोंवाले अधोवस्त्र पहने इंद्र के बाएं उठे तथा भूमि के समानांतर मुड़े दाएं हाथ की अंजलि में कुछ अस्पष्ट वस्तुएं हैं।[57] हवा में उड़ती अप्सरा का अंकन बहुत सुंदर है। उसके सिर पर बंधे शिरोभूषण से लटकती मोतियों की लड़ियां, मस्तक के कुछ ऊपर बंधा उष्णीषपट्ट, कानों में लटकते कुंडल, बड़ी बड़ी गोल तथा आयताकार मणियों का कंठा, नीलमणि के जड़ाऊ पदक से अलंकृत मुक्ताहार, केयूर तथा रत्नजटित कटकों का चित्रण बहुत ही सुंदर तथा वास्तविक रूप में हुआ है। अप्सरा के उड़ने की गति की व्यंजना उसके आभूषणों के दाईं ओर कुछ तिरछे रूप में किए गए चित्रण से की गई है। हार बांधने का फीता भी पीठ के पीछे से निकल कर दाईं ओर फहराता हुआ अंकित किया गया है। अप्सरा के दोनों हाथों में मंजीरे हैं। इस चित्र के आसपास का भाग क्षतिग्रस्त हो गया है।[59]

4. मानुषी बुद्ध : मुख्य द्वार की द्वारशाखा पर सात मानुषी बुद्धों—विपश्यी,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिखी, विश्वभू, क्रकुच्छंद, कनकमुनि, काश्यप तथा शाक्यमुनि तथा भावी बुद्ध मैत्रेय का सुंदर चित्रण है। ये सभी बुद्ध अपने अपने बोधिवृक्षों के नीचे बैठे हैं।[60]

5. नलगिरिदमन : गुफा के प्रवेशद्वार की दाईं ओर नलगिरिदमन का दृश्य चित्रित है। बुद्ध द्वारा दिखाए गए आठ प्रमुख चमत्कारों में से एक नलगिरि नामक हाथी का दमन है। राजा अजातशत्रु के साथ मिलकर बुद्ध के सौतेले भाई तथा प्रतिद्वंद्वी देवदत्त ने राजगृह में बुद्ध पर नलगिरि नामक एक पागल हाथी छुड़वा दिया। हाथी गलियों तथा मार्गों पर चिंघाड़ता हुआ भागने लगा और प्रत्येक सम्मुखागत वस्तु को तहस-नहस करने लगा। इससे लोगों में आतंक फैल गया तथा भगदड़ मच गई। बुद्ध के सामने से आते ही हाथी का उन्माद अचानक शांत हो गया तथा बुद्ध द्वारा करुणा से उसका मस्तक थपथपाते ही वह पालतू बन गया।

चित्र में बाईं ओर ऊपर की ओर महल में अजातशत्रु तथा देवदत्त षड्यंत्र गढ़ते चित्रित किए गए हैं। नीचे बाजार के रास्ते में स्त्री-पुरुष अंकित हैं। मद-मत्त नलगिरि के आतंक से दुकान बढ़ाते व्यापारी, सहम कर इधर-उधर छिपते लोग तथा छज्जों पर आतंकित खड़ी स्त्रियां दिखाई गई हैं। बुद्ध के सम्मुख नत हुए नलगिरि तथा उसके मस्तक को थपथपाते बुद्ध और अंत में भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय को उपदेश करते हुए बुद्ध चित्रित हैं।[61] पूरा चित्रण सुनियोजित विभिन्न व्यक्तियों के विचार तथा व्यवहार के अनुरूप भावभंगिमा प्रस्तुत करने में समर्थ तथा प्रभावशाली रंगयोजना से युक्त है।

6. षड्दंत जातक : इस जातक की चर्चा पहले हो चुकी है। अतः प्रस्तुत प्रसंग में केवल चित्रों की चर्चा करना ही उपयुक्त होगा। यह कथा गुफा के प्रवेशद्वार के बाईं ओर भित्ति पर अंकित है। इस चित्र का कुछ भाग फीका पड़ गया है, तथापि मुख्य दृश्य अच्छी तरह देखे और पहचाने जा सकते हैं। इनमें ऊपर बाईं ओर रानी का महल, सफेद हाथी के रूप में बोधिसत्व तथा उनका यूथ, गजयूथ द्वारा झील में क्रीड़ा, शिकारी द्वारा तीर चलाना तथा दांत देखते ही व्यथित रानी द्वारा राजा के हाथों में प्राण छोड़ देना आदि दृश्य अंकित हैं। चित्रकार ने चित्रों को प्रभावशाली बनाने की दृष्टि से यद्यपि पृष्ठभूमि को भी विविध विस्तारों से चित्रित किया है तथापि उसे सातवाहन काल के अंकन के तुल्य सफलता नहीं मिली है।[62]

7. महाकपि जातक : उपर्युक्त कथा के आगे महाकपि जातक का अंकन है। बोधिसत्व ने एक बार बंदरों के राजा के रूप में जन्म लिया। वे अपने समूह के साथ गंगा के तट पर रहते और एक आम्रवृक्ष के फल खाते और खूब धमाचौकड़ी मचाते। राजा ब्रह्मदत्त को यह नहीं भाया और उसने बंदरों को पकड़ने के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाल लगवाया। अपने दल को बचाने के उद्देश्य से बोधिसत्व ने एक बांस की सहायता से पुल बनाना चाहा किंतु बांस कुछ छोटा था। अतः बांस की लंबाई पूरी करने के लिए उन्होंने अपने शरीर का उपयोग किया तथा बंदरों को शीघ्र पुल पार कर भाग जाने का आदेश दिया। देवदत्त, जो बुद्ध का प्रतिद्वंद्वी था और हर समय बुद्ध को कठिनाई में डालना चाहता था, एक बंदर के रूप में उसी दल में था। वह इतनी जोर से बोधिसत्व के शरीर पर कूदा कि उनका हृदय टूट गया। राजा ने बोधिसत्व का त्याग देखकर उन्हें धीरे से नीचे उतारा और उनसे उपदेश ग्रहण किया। चित्र में बाईं ओर एक नदी अंकित है। नदी में मछलियां, अन्य प्राणी तथा मनुष्य नहा रहे हैं। राजा अपने धनुर्धारियों सहित घोड़े पर बैठा है। धनुर्धारी बंदरों पर तीर चला रहे हैं। ऊपर की ओर बंदर बोधिसत्व के तने शरीर पर से पार होकर अपने प्राण बचा रहे हैं। नीचे राजा के सेवक एक कंबल पकड़े हुए हैं। संभवतः इस कंबल में उन्होंने घायल बोधिसत्व को उतारा है। वातायन के ऊपर बोधिसत्व बैठे तथा राजा को उपदेश देते चित्रित हैं।[63]

8. हस्ति जातक : भित्ति के शेष भाग पर हस्तिजातक चित्रित है। सोलहवीं गुफा में भी हस्तिजातक का अंकन प्राप्त होता है जिसकी विस्तृत चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इस गुफा में चित्र बहुतांश में अस्पष्ट है। यहां मृत पड़े हाथी का मांस निकालते-खाते भूखे यात्रियों का अंकन दृष्टिगत होता है।[64]

9. हंस जातक : अगले चित्र का अंकन विषय हंस जातक है। यह चित्र भित्ति के साथ लगे कुड्यस्तंभ के ऊपरी भाग तक चित्रित है। कमल से भरी एक झील में हंस रहते थे। एक बार एक शिकारी वहां पहुंच कर दो हंसों को पकड़ लेता है। इन हंसों को वह वाराणसी के राजा के हाथों बेच देता है। हंस के रूप में बोधिसत्व राजा को धर्मोपदेश करते हैं। चित्र में कमल झील से उठते हंस और उनकी भगदड़ देखते ही बनती है। दूसरे दृश्य में वाराणसी का राजा-रानी तथा अपने परिचारकों सहित आसनस्थ हंसों से उपदेश सुन रहा है।[65]

10. सुतसोम जातक : गुफा की बाईं भित्ति के दाएं तथा अंतराल के बाएं भाग पर यह जातक कथा अंकित है। कुरु राज्य के राजकुमार के रूप में बोधिसत्व ने जन्म लिया। राजा सुदास के सिंहिनी से उत्पन्न पुत्र सौदास ने राजा बनने पर अपनी मनुष्य मांस भक्षण की वृत्ति के वशीभूत हो सौ आदमियों को पकड़ लिया। इनमें सुतसोम भी सम्मिलित था। उसने सौदास को उपदेश देकर उसकी यह घृणित आदत छुड़ा दी। यह कथा आर्यशूर की 'जातकमाला' में वर्णित है। पालि जातक कथा इससे कुछ भिन्न है। यहां सौदास के पूर्वजन्म में यक्ष होने के कारण उसके मनुष्यभक्षी होने का विधान किया गया है। उसका अपराध प्रकट हो जाने पर उसे यह आदत त्यागने के लिए कहा जाता है, किंतु उसके अस्वीकार करने पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसे देशनिकाला दे दिया जाता है। सुदास जंगलों में रहकर यात्रियों को पकड़ता और खाता रहता है। एक बार वह अपने गुरु को ही पकड़ लेता है तथा पुनः लौटने की शर्त पर छोड़ देता है। जब गुरु लौट आते हैं तो सुदास प्रसन्न हो उठता है तथा नरमांस खाने की आदत का त्याग कर देता है। चित्रकार ने अंतराल की बाईं ओर की भित्ति तथा बाईं ओर के पिछले बरामदे की कोठरी के ऊपरी भाग पर 'जातकमाला' की कथा का चित्रण किया है।[66] कथा दाईं ओर के निचले भाग से आरंभ होती है। राजा सुदास हरिणों के शिकार पर वन में जाता है जहां वह अपने सहयोगियों से पिछड़ जाता है। घोड़े पर सवार राजा विभिन्न आभूषणों एवं शस्त्रास्त्रों से सज्जित है। ऊपर की ओर हरिण तथा उनका पीछा करते शिकारी कुत्ते दौड़ रहे हैं। दूसरे दृश्य में अकेले सोए राजा के पैर चाटती एक सिंहिनी अंकित है। यहीं कुछ ऊपर एक चट्टान पर राजा तथा सिंहिनी बैठे चित्रित हैं। ऊपर दाईं ओर भरे बाजार में से महल के द्वार की ओर बढ़ती सिंहिनी तथा स्तब्ध लोग अंकित हैं। सबसे दाईं ओर गोद में बालक लिए राजा तथा सिंहिनी हैं। नीचे शस्त्रास्त्र और विद्याभ्यास करता सुदास, उसके बाईं ओर सुदास का राज्याभिषेक तथा मनुष्यमांसभक्षण के दृश्य अंकित हैं। राजा सुदास के शिकार पर जाने के दृश्य के ठीक ऊपर सुदास की पाकशाला से भागा एक व्यक्ति तथा उसके ऊपर सुदास से अपनी आदत छोड़ने की प्रार्थना करते लोग चित्रित हैं। शस्त्रास्त्राभ्यास के चित्र के नीचे सुदास पर आक्रमण करते सैनिक हैं। इसके बाईं ओर बहिष्कृत सुदास के वन में रहने का दृश्य है जो धुंधला पड़ गया है। बोधिसत्व सुतसोम कमल झील से पकड़े जाने पर सुदास द्वारा कंधे पर बैठाया हुआ अंकित है। इस चित्र का कुछ भाग चार-पांच वर्ष पूर्व किए गए रासायनिक प्रयोगों के द्वारा स्पष्ट हुआ है।

11. बुद्धजीवन के दृश्य : अंतराल की बाईं भित्ति पर बुद्ध के तुषित स्वर्ग में उपदेश तथा सारिपुत्रप्रश्न का चित्रण है।[67] गर्भगृह दोनों ओर क्रमशः राहुल की दीक्षा तथा श्रावस्ती का चमत्कार चित्रित है।[68] इनमें से राहुल की दीक्षा संबंधी चित्र अत्यंत भव्य तथा सर्वोत्तम चित्रों में से एक है। कपिलवस्तु में बुद्ध के लौटने के पश्चात यशोधरा राहुल को आगे कर के उसे दायभाग मांगने के लिए प्रेरित करती है। इस पर बुद्ध अपना भिक्षापात्र बढ़ाते हुए धर्म में दीक्षित करने की बात कहते हैं। बुद्ध आकार में यशोधरा और राहुल से कई गुने बड़े दिखाए गए हैं। यह उनकी आध्यात्मिक महत्ता को प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त करने की परंपरा के अनुरूप है। आकृतियों की सुडौलता, चेहरे के भाव तथा चुना हुआ रंगविधान चित्र की मनोहरता में चौगुनी वृद्धि कर देते हैं।

12. शरम जातक : अंतराल के द्वार के दाएं भाग पर यह जातक कथा अंकित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। बोधिसत्व हरिण के रूप में एक जंगल में रहते थे। एक बार वाराणसी के राजा ने शिकार करते हुए उनका पीछा किया। पीछा करते करते स्वयं राजा एक गहरे गड्ढे में गिर पड़ा। बोधिसत्व ने पत्थर उठा उठा कर राजा का भार ढोने का अभ्यास किया और अंत में स्वयं राजा को अपनी पीठ पर ढोकर बाहर निकाला। चित्र में आखेटक मध्य में अंकित है। दाईं ओर शरभ मृग पत्थर उठाकर राजा को उठाने का अभ्यास कर रहा है। अंतिम दृश्य में वह राजा को पीठ पर बैठा कर ला रहा है।[69]

13. मातृपोषक जातक : शरभमृग जातक के निचले भाग में मातृपोषक जातक का अंकन है। एक बार बोधिसत्व एक अंधी हथिनी के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। अपनी अंधी मां की देखभाल, भरण-पोषण आदि उनका प्रिय कार्य था। एक बार जंगल में एक आदमी भटक गया। मातृपोषक ने उसे अपनी पीठ पर बैठाकर जंगल के बाहर पहुंचा दिया। इस उपकार के बदले उस कृतघ्न व्यक्ति ने वाराणसी के राजा के हाथी के मरने पर मातृपोषक का पता देकर उन्हें पकड़वा दिया। इस पर अंधी मां के पालन-पोषण के विषय में चिंतित मातृपोषक ने अन्न-जल त्याग दिया और राजा द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर वस्तुस्थिति कह सुनाई। राजा ने उसे छोड़ दिया जिसपर वह दौड़ता हुआ मां के पास गया, उसे खिलाया, नदी में जाकर स्नान कराया और सेवा की।[70] हाथियों के व्यापार-व्यवहार तथा प्रकृति-चित्रण में यह चित्र षड्दंत जातक के चित्रांकन की टक्कर का है।

14. मत्स्य जातक : शरभ जातक के चित्रांकन के आगे मत्स्य जातक की कथा चित्रित की गई है। इस जातक कथा में मत्स्य रूप में जन्मे बोधिसत्व एक बार सूखा पड़ने पर अपने जातिबांधवों की रक्षा हेतु इंद्र से प्रार्थना करते हैं। पानी सूख जाने पर पक्षी आसानी से मछलियों का शिकार करते हैं तथा पानी की कमी के कारण मछलियां तीव्रता से मरने लगती हैं। मत्स्य की प्रार्थना पर वर्षा होती है। चित्र का केवल एक अंश अवशिष्ट है जिसमें एक बड़ी मछली को घेरती हुई छोटी मछलियां तथा जलपक्षियों से युक्त एक सरोवर दिखाई देता है।[71]

15. श्याम जातक : मंडप की दाईं भित्ति के आरंभिक भाग पर श्याम जातक चित्रित है। इस जातक का अंकन सातवाहनकालीन दसवीं गुफा में भी मिलता है। इस गुफा में तीन दृश्यों में इस जातक का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। सबसे ऊपर कमल झील के तट पर मटके सहित श्याम अंकित है। निचले भाग में कावड़ में अपने माता-पिता को ढोता तथा मध्य भाग में श्याम को उठाकर ले जाता राजा तथा राजा को उपदेश देता श्याम चित्रित है।[72]

16. महिष जातक : श्याम जातक के आगे महिष जातक का चित्रांकन है। इस कथा के अनुसार महिष के रूप में जन्मे बोधिसत्व को एक बंदर बहुत तंग करता था,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किंतु अपने स्वभाववश वे उसे कुछ न कहते थे। एक दिन एक अन्य महिष वहां आ गया और अपनी आदत के अनुसार बंदर ने उसे छेड़ा। वह महिष भला क्यों छोड़ता ? उसने बंदर को मार डाला। चित्र में निचले भाग में बोधिसत्व की आंखें बंद करता बंदर अंकित है। ऊपर दूसरे महिष द्वारा फेंके गए बंदर की आंखों में भय का अंकन है।[73]

17. सिंहलावदान : दाईं भित्ति के अगले भाग का अंकन सिंहलावदान की कथा से है। 'दिव्यावदान' तथा 'महावस्तु' में सिंहलावदान की कथा प्राप्त होती है। किंतु वह यहां चित्रित कथा से कुछ भिन्न है। मंडप की दाईं भित्ति पर अंकित इस कथा के अनुसार सिंहल नामक एक श्रेष्ठिकुमार ने ताम्रपर्णी द्वीप पर आक्रमण करके वहां के नरमांसभक्षी राक्षसों को मार भगाया और वह स्वयं उस द्वीप का राजा बन गया। तबसे उस द्वीप का नाम सिंहल द्वीप पड़ा। इस कथा का कुछ अंश 'वलाहस्य जातक' में भी मिलता है। निचले दाएं छोर से कथा आरंभ होती है। इसमें सिंहल के साथ यात्रा पर निकले पांच सौ अन्य व्यापारियों का जहाज दुर्घटनाग्रस्त होकर नष्ट हो जाता है। इस दृश्य के ऊपर राक्षसियों के द्वीप में पहुंचे यात्रियों को सुंदर स्त्रियों का रूप धारण कर लुभाती राक्षसियां अंकित हैं। सिंहल संकट का अनुभव कर उड़नेवाले घोड़े के रूप में उत्पन्न बोधिसत्व का कहना मानकर उनकी पीठ पर बैठ जाता है। एक द्वार के निकट पहुंचकर सिंहल बोधिसत्व के सामने घुटने के बल बैठकर कृतज्ञता ज्ञापन करता है। शेष यात्री राक्षसियों द्वारा खा लिए गए। एक राक्षसी ने सिंहल का पीछा कर एक बच्चे सहित उसके घर में प्रवेश किया तथा स्वयं को वहां सिंहल की पत्नी बताने लगी। उसके अस्वीकार करने पर वह वहां के राजा के पास फरियाद करने गई। राजा ने उसपर मुग्ध होकर उसे अपने पास रख लिया। लोगों द्वारा मना करने पर भी राजा नहीं माना। राक्षसी ने धीरे धीरे अपने पंजे गड़ाए और लोगों को खाने लगी। महल के दरवाजे बंद कर जब राक्षसियां राजा समेत सब लोगों को खा गईं और महल पर गिद्ध मंडराने लगे तब सिंहल ने सीढ़ी द्वारा महल में प्रवेश किया और सभी राक्षसियों को मार भगाया। इसके पश्चात सिंहल द्वीप में भी सेना भेज कर सभी राक्षसियों को मार कर वह उस द्वीप का राजा बना।[74] यह चित्र सभी दृष्टियों से एक श्रेष्ठ चित्रकृति है।

18. प्रसाधिका : उपरिवर्णित चित्र के बाद के कुड्यस्तंभ पर प्रसाधन का सुप्रसिद्ध दृश्य चित्रित है। इस चित्र में दो परिचारिकाओं और एक कुब्ज सेवक के मध्य त्रिभंग में खड़ी एक स्त्री बाएं हाथ में लिए एक गोलाकार दर्पण में मुख निहारती हुई अंकित है। बाईं ओर की परिचारिका चामरधारिणी तथा दाईं ओर की करंड-वाहिनी है। स्त्री अत्यंत सीमित वस्त्रों तथा विविध आभूषणों से अलंकृत है। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र का किस कथा से संबंध है यह अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है।[75] जो भी हो, यह अजंता की श्रेष्ठ कलाकृतियों में से एक है।

19. शिबि जातक : उपर्युक्त कुड्यस्तंभ के आगे भित्ति पर शिबि जातक का चित्रण किया गया है। राजा शिबि ने किसी के भी मांगने पर अपने शरीर का कोई भी अंग देने की प्रतिज्ञा की थी। एक बार शक्र ने परीक्षा लेने के लिए उनकी आंखें मांगी। लोगों के मना करने पर भी शिबि ने अपनी आंखें दे दीं। शक्र ने उनके त्याग से प्रभावित हो उनकी आंखें पुनः लौटा दीं। चित्र में शिबि दरबारियों तथा स्त्रियों के मध्य में बैठ कर प्रतिज्ञा कर रहे हैं कि शरीर का कोई भी अंग मांगने पर वे दे देंगे। बाईं ओर ऊपर के भाग में शक्र अंकित हैं। दाईं ओर आंखें निकालने की असह्य पीड़ा को झेलते हुए शिबि का चित्रण है तथा इसके ऊपर राजा द्वारा बनाया गया सत्र और कमल सरोवर है जिसमें कमल पर बैठे शक्र तथा शिबि अंकित हैं। पहले दृश्य के ऊपर शिबि के समारोहपूर्वक अपनी राजधानी लौटने का अंकन है।[76]

20. ऋक्ष जातक : इस जातक की विषयवस्तु रीछ के रूप में जन्मे बोधिसत्व द्वारा स्वयं अपने प्राणों के मूल्य पर एक शिकारी के जाल में फंसे मृग की रक्षा का वर्णन है। इस कथा का चित्रण मंडप की सम्मुख भित्ति के भीतरी ओर दाईं ओर की दो खिड़कियों के मध्य भाग में किया गया है। यह चित्र काल की गति से काला पड़ गया है तथा आकृतियां पूर्णतः स्पष्ट नहीं हैं, तथापि कथा की प्रमुख घटनाएं पहचानी जा सकती हैं। इस प्रकार शिकारी, उसके द्वारा फैलाए जाल में फंसा एक मृग तथा भालू द्वारा अपने अगले पंजों से शिकारी को पकड़ कर बचाया हुआ एक अन्य मृग, भालू पर बाण चलाता हुआ एक अन्य शिकारी और बाण लगने से घायल रीछ स्पष्ट हैं।[77]

21. रुरु जातक : इस जातक कथा के अनुसार एक बार बोधिसत्व ने रुरु के रूप में जन्म ग्रहण किया। उन्होंने नदी में डूबते एक मनुष्य के प्राणों की रक्षा की, किंतु उसने विश्वासघात कर पुरस्कार के प्रलोभन में रुरु का निवासस्थान बताकर उसे पकड़ने में राजा की सहायता की। मंडप की सम्मुख दीवार के भीतरी ओर दरवाजे के बाईं ओर अंतिम दृश्य का समीकरण इस जातक के साथ प्रस्तावित किया गया है। किंतु देवला मित्र ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षिक किया है कि इस चित्र और कथा के वर्णन में कोई साम्य न होने से यह समीकरण समीचीन प्रतीत नहीं होता। चित्र में जातक कथा की केंद्रीय घटना—बोधिसत्व द्वारा श्रेष्ठी के पुत्र की नदी में डूबने से रक्षा—का अंकन नहीं मिलता। इसके विपरीत हमें कुछ ऐसे दृश्य देखने को मिलते हैं—राजा द्वारा मृग के विषय में जानकारी देनेवाले को पुरस्कार की घोषणा, राजा को मृग का पता बताते हुए शिकारी,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजा का परिजनों और शिकारियों के साथ आखेट के लिए प्रस्थान, मृग को पकड़ने का प्रयत्न करते ही उसके हाथों का कट जाना तथा सम्मानपूर्वक रथ में बैठाकर लाए हुए मृग के साथ राजा का राजधानी लौटना—जिनका संबंध रुरु जातक से जोड़ना संभव नहीं है।[78]

22. न्यग्रोधमृग जातक : द्वार तक भित्ति के शेष भाग पर न्यग्रोधमृग जातक का चित्रण किया गया है। एक बार बोधिसत्व ने न्यग्रोधमृग के रूप में जन्म लिया और वे पांच सौ मृगों के यूथ के साथ एक वन में रहते थे। पास ही शाखामृग नामक एक अन्य मृग भी इतने ही बड़े मृगयूथ के साथ रहता था। वाराणसी का राजा भी शिकार और मृगमांस का बड़ा शौकीन था। एक दिन न्यग्रोधमृग और शाखामृग दोनों उसकी पकड़ में आ गए, किंतु उनके सुनहले रंग से मुग्ध होकर राजा ने उन्हें छोड़ दिया। मृगों का अंधाधुंध विनाश रोकने के उद्देश्य से न्यग्रोधमृग और शाखामृग ने प्रतिदिन बारी बारी से एक हरिण राजा के पास भेजने की व्यवस्था की। एक दिन एक गर्भिणी हरिणी की बारी आई। जब न्यग्रोधमृग को इसका पता चला तो वह स्वयं राजा की पाकशाला में जा पहुंचा। रसोइये से इस बात का पता लगने पर न्यग्रोधमृग के त्याग से प्रभावित होकर राजा ने न केवल न्यग्रोधमृग को अपितु समस्त प्राणियों को अभयदान दिया और बोधिसत्व ने राजा को पंचशील का उपदेश दिया। उसी समय से वह स्थान मृगदाव (वर्तमान सारनाथ) कहलाने लगा।

इस चित्र का निचला भाग बहुत क्षतिग्रस्त हो गया है। किंतु कथा की प्रमुख घटनाओं को पहचानना कठिन नहीं है। चित्र के द्वार और वातायन के मध्यवर्ती निचले भाग में उपवन में मृगों का अंकन है जबकि ऊपरी भाग में राजा के रसोईघर में वध के लिए उद्यत न्यग्रोधमृग दृष्टिगत होता है। दाईं ओर विस्मित रसोइये द्वारा राजा को इस घटना की सूचना देने की घटना चित्रित है। इसके आगे सिंहासनासीन बोधिसत्व भूमि पर बैठे राजा-रानी को उपदेश देते हुए दिखाए गए हैं। गवाक्ष के ऊपर अंकित अंतिम दृश्य में एक स्तूप और बोधिसत्व के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए पशु-पक्षियों का अंकन है।[79]

23. अलंकरण : बौद्ध धर्म से संबंधित उपर्युक्त दृश्यों के अतिरिक्त इस गुहा में विविध स्थलों पर अनेक अलंकरणाभिप्रायों का चित्रण भी दृष्टिगत होता है। इनमें वैविध्यपूर्ण लतापत्रक, ईहामृगों, विविध दरबारी दृश्यों, पशु-पक्षियों तथा ज्यामितीय आकृतियों का अंतर्भाव है। छत पर विविध अलंकरणाभिप्रायों के अंकन से युक्त एक के बाद एक कर बनाए गए अनेक वृत्तों से निर्मित अनेक सुंदर मंडलक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। छत के मध्य में हम छः मानवाकृतियां अंकित पाते हैं जिनके केवल छः हाथ हैं। किंतु वे इस कौशल के साथ बनाए गए हैं कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संख्या में छः होने पर भी बारह दिखाई देते हैं।[80] बरामदे की छत आज भी मूल रंग की चमक और ताजापन लिए हुए है।

वाकाटकोत्तरकालीन चित्र

चित्रों के फीके पड़ जाने अथवा किसी कारण नष्ट हो जाने पर उन पर दूसरा चित्र बना दिया जाता था। महायान बौद्ध धर्म में बोधिसत्व तथा बुद्ध की प्रतिमाएं पूजित होती हैं। अतः हीनयान काल की गुफाओं में—जहां बुद्ध के प्रतीक मात्र अंकित थे—बुद्ध के चित्र खींचने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इन दो प्रमुख कारणों के कारण गुफा क्र० 1, 9, 10 तथा 16 में कुछ चित्र वाकाटकोत्तरकाल में चित्रित किए गए। गुफा क्र० 2 का निर्माण तथा अलंकरण भी वाकाटकोत्तर काल में हुआ। वाकाटकोत्तर काल के इन चित्रों का संक्षिप्त वर्णन यहां किया जा रहा है।

गुफा क्र० 1

उपासक : संभवतः किसी वन्य जाति से संबद्ध एक युवा उपासक का चित्र पहली गुफा में उपलब्ध हुआ है। इसके परिसर के चित्र नष्ट हो गए हैं। आकृति का असंतुलन, रेखाओं की मोटाई तथा भिन्न रंगविधान के आधार पर यह चित्र परवर्ती काल का प्रतीत होता है।[81]

गुफा क्र० 2

इस गुफा में विभिन्न विषयों पर आधारित कई सुंदर चित्रों का अंकन मिलता है। कुछ जातक कथाएं जैसे क्षांति जातक, हंस जातक, विधुर पंडित जातक आदि; बुद्धजीवन से संबंधित घटनाएं जैसे बुद्धजन्म; एक अवदान कथा (पूर्ण) तथा सहस्र बुद्ध अलंकरण आदि संकीर्ण विषय यहां चित्रित हैं। अभिलेखों के आधार पर, जो चित्रों के साथ ही चित्रित हैं, ये चित्र ईस्वी छठी शताब्दी के माने जाते हैं।

1. महाहंस जातक : बाईं वीथिका में भित्ति के आखिरी सिरे पर महाहंस जातक का दृश्य चित्रित है। एक बार बनारस की रानी खेमा को स्वप्न दिखा कि वह बोधिसत्व का, जो सुनहरे हंस के रूप में अवतरित हुए हैं, धार्मिक प्रवचन सुन रही है। उसने जब यह प्रवचन सुनने की इच्छा व्यक्त की तब राजा ने एक नकली झील का निर्माण करा कर एक हंस को आकर्षित किया तथा पकड़ कर मंगवाया। रानी उसका उपदेश सुन कर बहुत प्रसन्न हुई और उसने हंस को मुक्त कर दिया।

चित्र में हम एक राजकीय अधिकारी के साथ पद्मसरोवर में हंसों के पास जाते हुए एक शिकारी (कोठरी के द्वार के बाईं ओर का निचला भाग), हंसों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पकड़ कर सरोवर से जाते हुए शिकारी, सिंहासन पर बैठ कर उपदेश देते हुए बोधिसत्व तथा कमलों से युक्त सरोवर में स्वर्णिम हंसरूपी बोधिसत्व का अंकन पाते हैं।[82]

2. बुद्ध के जीवन के दृश्य : मंडप की बाईं भित्ति पर सामने के कुड्यस्तंभ एवं तीसरी कोठरी के द्वार के मध्य भाग में गौतम के जन्म का दृश्य अंकित है। इस चित्र में माया के स्वप्न में उसके गर्भ में सफेद हाथी के प्रवेश, शुद्धोदन से माया द्वारा अपने स्वप्न की चर्चा, दरबार में लाए गए ब्राह्मणों द्वारा स्वप्न की व्याख्या, माया द्वारा गर्भधारण, दो स्तंभों के मध्य खड़ी माया, बुद्धजन्म, शक्र द्वारा नवजात शिशु को अपने हाथों में लेने तथा बुद्ध के सात कदमों का बड़ा प्रभावकारी अंकन है।[83] मानवाकृतियों के उनकी सामाजिक स्थिति एवं अवसर के अनुरूप अंकन तथा भावाभिव्यक्ति में चित्रकार काफी सफल रहा है।

3. सहस्र बुद्ध : गर्भगृह की अगल-बगल की दीवारें, अंतराल की भित्तियां तथा सभामंडप की बाईं ओर पिछली भित्ति का कुछ भाग बुद्ध की विभिन्न मुद्राओं में बनी आकृतियों से पटा हुआ है।[84] यह दृश्य मध्य एशिया के तुन हुआंग की 'सहस्र बुद्धों की गुफा' का स्मरण दिलाता है। वास्तव में यह सहस्र बुद्धों का ही अंकन है जैसाकि अंतराल की पिछली दाईं दीवार पर चित्रित सहस्र बुद्धों के दानविषयक लेख से स्पष्ट है।[85]

4. बोधिसत्व : गर्भगृह के भीतर सम्मुख भित्ति पर द्वार के दोनों ओर तथा मंडप की पिछली भित्ति पर एक एक कर कुल तीन विशालकाय बोधिसत्वों का अंकन भी इस गुफा में मिलता है। गर्भगृह के बाईं ओर के बोधिसत्व को प्रायः मैत्रेय माना जाता है, किंतु यह अभिज्ञान उचित प्रतीत नहीं होता। वास्तव में यह सिंह, हाथी, अग्नि, सांप, चोर, पानी, बेड़ी तथा राक्षसों के आठ महाभयों से मुक्ति दिलाने की भूमिका में बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का अंकन है।[86] शेष दो बोधिसत्वों का समीकरण भी कुछ संदेह के साथ अवलोकितेश्वर अथवा पद्मपाणि से किया गया है।[87]

5. विधुर पंडित जातक : यह जातक मंडप की दाहिनी भित्ति पर कई दृश्यों में चित्रित है। कथा इस प्रकार है : एक बार बोधिसत्व ने इंद्रप्रस्थ के राजा धनंजय के मंत्री के रूप में जन्म लिया। वे बहुत विद्वान और उत्कृष्ट वक्ता थे। अपने पति वरुण से उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा सुनकर नागरानी विमला उनका प्रवचन सुनने के लिए आतुर हो उठी। उसकी इस इच्छा की पूर्ति के निमित्त उसकी कन्या इरंदती के प्रेमी यक्ष सेनापति पुण्णक ने राजा धनंजय को जुए में पराजित कर विधुर पंडित को नागराज्ञी विमला के समक्ष उपस्थित किया। विधुर पंडित ने अपने प्रवचन से वरुण और विमला को मुग्ध कर दिया। अंत में यक्ष पुण्णक और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नागकन्या इरंदती का विवाह संपन्न हो गया। दाहिने भाग में झूले में झूलती हुई इरंदती तथा उसके समीप खड़े पुण्णक तथा अपने संबंधियों से पुण्णक और इरंदती के विवाह के विषय में मंत्रणा करते हुए नागराज अंकित हैं। बाईं ओर के दृश्य में इंद्रप्रस्थ के राजा के दरबार में पासों का खेल, पुण्णक के साथ विधुर पंडित की यात्रा, नागराजा के महल में विधुर पंडित के प्रवचन तथा प्रसन्न मुद्रा में पुण्णक और इरंदती का अंकन है।[88]

पासा खेलने के दृश्य में चित्रकार ने बड़ी कुशलता प्रकट की है। पूरे दृश्य की संयोजना इस खूबी के साथ की गई है कि कोई भी पात्र अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। सभी की आकृति अत्यंत सहजता से खींच कर चित्रकार ने अपनी निरीक्षणक्षमता उजागर की है। दर्शकों की प्रतिक्रिया और भाव भी बड़े सुंदर ढंग से अंकित किए गए हैं। पासा फेंकने वाला एक व्यक्ति अपनी झोंक में कुछ आगे बढ़ गया है। पुण्णक के साथ विधुर पंडित की यात्रा भी बहुत ही सूक्ष्म ढंग से चित्रित की गई है। विधुर पंडित काले हाथी पर आसीन हैं तथा उनके आगे और अगल-बगल कई अश्वारोही चल रहे हैं। घोड़ों की मुद्राएं प्रायः एक सी हैं, किंतु उनके मांसल शरीर का अंकन सुंदर है। इस जुलूस के आगे चल रहे खड्गधारी पदाति सैनिक के प्रयाण में जो दृढ़ता टपकती है उसके चित्रण में कलाकार ने चमकती तलवारों और चेहरेवाली ढालों की सृष्टि कर गंभीर वातावरण उपस्थित कर दिया है। जुलूस में सबसे आगे वाद्य बजाते वादक चल रहे हैं। समग्र रूप में चित्र एक प्रभावपूर्ण दृश्य उपस्थित करता है और इसे अच्छे चित्रों के उदाहरणों में स्थान दिया जा सकता है।

6. **एक अज्ञात कथा** : बरामदे के दाईं ओर के प्रकोष्ठ की दीवारों पर चित्रित इस कथा की पहचान न होने के कारण समुचित शीर्षक देना संभव नहीं है। चित्र के विस्तृत आलेखन से स्पष्ट है कि यह किसी महत्वपूर्ण कथा अथवा प्रसंग का चित्रण है। इस चित्र के आरंभ में एक दोमंजले वास्तु पर एक छोटे गर्भगृह में बोधिसत्व तथा दो भिक्षु चिंतामग्न अंकित हैं। दूसरे दृश्य में अनेक राजपुरुषों से घिरी एक पालकी जा रही है। पालकी चारों ओर से बंद तथा कहारों द्वारा तामझाम के साथ उठाई गई है। अगले दृश्य में वन में लेटी एक स्त्री तथा दो परिचारिकाएं चित्रित हैं। वहीं वधिक या दस्यु जैसी भयानक आकृति वाले दो व्यक्ति हैं जो दृश्य की गंभीरता बढ़ाने में कुछ हाथ रखते हैं। अगले दृश्य में पालकी जमीन पर रख दी गई है। उसके सामने एक सुंदर स्त्री विकल भावों में बैठी अंकित है। उसके पीछे कमलवन है। सरोवर में एक शिशु फेंक दिया गया है। चित्र कई स्थानों पर क्षतिग्रस्त हो गया है, किंतु समस्त अंकन से एक करुण भाव का संचार होता है। अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने में कलाकार अत्यंत सफल हुआ है।[89]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

7. **पूर्णावदान** : मंडप की दाईं भित्ति पर दूसरी तथा तीसरी कोठरियों के मध्य में यह कथा चित्रित है। पूर्ण एक धनी व्यापारी शूर्पारक का सबसे छोटा और प्रिय पुत्र था। उसकी मां एक दासी थी। पिता की मृत्यु होने पर अन्य भाइयों ने पूर्ण तथा उसके बड़े भाई भाविल को पारिवारिक संपत्ति से वंचित कर दिया। पूर्ण ने चंदन की लकड़ी के व्यवसाय में बहुत सफलता पाई तथा वह देश का प्रमुख व्यापारी बन गया। अपनी सातवीं समुद्र यात्रा के समय उसने बुद्ध की स्तुति में एक पद सुन कर बौद्ध धर्म ग्रहण करने का निश्चय किया। अपनी यात्रा की समाप्ति पर बड़े भाई भाविल की अनुमति ले पूर्ण ने सांसारिक जीवन को तिलांजलि दे दी और श्रावस्ती में बुद्ध के उपदेश सुने। शरीर के प्रति वैराग्य दर्शाने के लिए उसने श्रोणापरांतक नामक प्रदेश में, जहां भयानक और क्रूर लोग रहते थे, बसने का निर्णय किया और कई लोगों को दीक्षा दी। इस बीच भाविल समुद्र यात्रा कर एक ऐसे प्रदेश में पहुंचा जहां चंदनवृक्षों की बहुतायत थी। उसके कर्मचारियों ने वृक्ष काटना आरंभ कर दिया। इसपर उस स्थान के स्वामी महेश्वर नामक यक्ष ने क्रोधित होकर समुद्र में तूफान उठा दिया जिसके कारण भाविल तथा उसके कर्मचारी निरुपाय हो उठे। भाविल ने पूर्ण को पुकारा। पूर्ण अपनी अलौकिक शक्ति के कारण जहाज पर प्रकट हुआ और तूफान तथा यक्ष को उसने शांत किया। भाविल ने शूर्पारक लौटने पर अपने भाइयों की सहायता से बुद्ध का स्वागत किया तथा चंदनकाष्ठ से एक विहार का निर्माण कराया।

चित्र के एक दृश्य में पूर्ण बुद्ध के सम्मुख घुटनों के बल बैठा है। दूसरे दृश्य में नाव पर मछलियों तथा अन्य समुद्री प्राणियों का आक्रमण और उफनता सागर अंकित है। नाव पर भाविल ऊपर की ओर देखता हुआ सहायता के लिए प्रार्थना कर रहा है और पूर्ण उसके रक्षार्थ आकाश से उतर रहा है। अंतिम दृश्य में पूर्ण एक संघाराम में बैठे बुद्ध को भेंट करने के लिए उपहार लाता चित्रित किया गया है।[90]

8. **क्षांतिवादी जातक** : मंडप में प्रवेश करते ही दाईं ओर की भित्ति में बनी पहली कोठरी के ऊपर यह कथा चित्रित है। महल के एक दृश्य में एक राजा मोढ़े अथवा मंचक पर बैठा अंकित है। दाएं हाथ में तलवार लिए हुए वह कई स्त्रियों से घिरा है। सामने दाईं ओर एक स्त्री घुटने और सिर टेक कर उसके पांव पकड़े प्राणों की भीख मांग रही है। चित्र का ऊपरी भाग नष्ट हो गया है।

बहुत अधिक क्षतिग्रस्त हो जाने के कारण इस चित्र की समुचित पहचान कठिन है, किंतु यह क्षांतिवादी जातक का चित्रण प्रतीत होता है। इस जातक कथा के अनुसार एक बार बोधिसत्व ने क्षांतिवादी नामक संन्यासी के रूप में जन्म लिया। एक बार उस प्रदेश का राजा अपनी रानियों और नर्तकियों के साथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपवनक्रीडा के लिए उस वन में गया जहां क्षांतिवादी का निवास था। राजा के निद्राभिभूत होने पर रानियां एवं नर्तकी उस स्थान पर पहुंचीं जहां क्षांतिवादी उपदेश दे रहा था। जागने पर स्वयं को अकेला पाकर राजा ने क्रोधाभिभूत हो बोधिसत्व और नर्तकी के वध की आज्ञा दे दी।[91] जो भी हो इसका अंतर्भाव अजंता के अच्छे चित्रों में किया जा सकता है। राजा की क्रोधी मुद्रा तथा स्त्रियों की भयभीत और करुणाविगलित मुद्राएं बहुत अधिकारी चितरे की कला की परिचायक हैं।

9. अलंकरण : गुफा क्र० 1 की भांति इस गुफा की छत भी बहुत सुंदर ढंग से चित्रित की गई है। विभिन्न चौकोर खंडों में विभाजन कर उनमें विभिन्न प्रकार की असंख्य अलंकरणाकृतियां—लतापत्रक, पक्षी, फल, उड़ते हुए विद्याधर, ज्यामितीय प्रतीक और आकृतियां, विदूषक, कुब्ज इत्यादि—भर दी गई हैं। अजंता के चित्रकारों की श्रेष्ठ कला का प्रमाण इस गुफा के अलंकरणों में दिखाई देता है। विभिन्न मुद्राओं में तेइस हंसों की पंक्ति का चित्रण कर चित्रकार ने अपनी क्षमता का परिचय सहज रूप में प्रस्तुत कर दिया है। विभिन्न प्रकार के व्यालों का अंकन भी कोनों को सज्जित करने के लिए किया गया है। व्याघ्र तथा मकर के मुख के आधार पर ये व्याल गढ़े गए हैं। उनमें सींग तथा दाढ़ें भी जोड़ दी गई हैं। एक स्थान पर दो व्यालों की लड़ाई अंकित है। एक अन्य चित्र में चार कोनों से बादलों के मध्य तैर कर दिव्य लोक से भगवान बुद्ध को भेंट करने के निमित्त लाए फूलों के साथ चार गणों का चित्रण है।[92]

गुफा क्र० 9 तथा 10

इन सबसे प्राचीन गुफाओं में सर्वाधिक उत्तरकालीन कुछ चित्र हैं। दसवीं गुफा के स्तंभों तथा भित्ति पर पद्मासनस्थ एवं प्रलंबपादासनस्थ बुद्ध एवं बोधिसत्वों की प्रतिमाएं चित्रित की गई हैं,[93] जो बेडौल आकृतियों, भावहीनता तथा फीके रंग-विधान के आधार पर वाकाटकोत्तर काल की मानी जाती हैं। नवीं गुफा में बाईं भित्ति के अंतिम छोर पर दो भिक्षुओं के सिर दृष्टिगत होते हैं तथा ईस्वी पांचवीं शताब्दी में लिखा एक लेख है। इसी भित्ति के बाएं छोर पर छः बुद्धों का चित्र अंकित है। इसी भांति दसवीं गुफा की दीवारों तथा स्तंभों पर कई स्थानों में बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियां और सुंदर लतापत्रक आकृतियां (स्तंभ क्र० 5, 6 तथा 7) चित्रित मिलती हैं।

गुफा क्र० 16

सोलहवीं गुफा की बाईं भित्ति की एक कोठरी के ऊपरी भाग के मूल चित्र नष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो जाने पर वहां सात मानुषी बुद्धों एवं भावी बुद्ध मैत्रेय की आकृतियां अंकित दृष्टिगोचर होती हैं। ये दो रंगों में बनाई गई हैं। दो पंक्तियों में मानुषी बुद्ध बैठे हैं। निचली पंक्ति में लंबगोल आसन पर लोड से टिककर बैठे चार बुद्ध चित्रित हैं। इनके सिरों पर तीन तीन छत्रों का अंकन है। ऊपर की पंक्ति में सात-आठ बुद्धों की छत्ररहित आकृतियां हैं। ये सांप्रदायिकता की परिचायक हैं तथा वहीं पर लिखे एक लेख के आधार पर ईस्वी छठी शताब्दी में भदंत धर्मदत्त तथा भदंत बापुक द्वारा बनवाई गई थीं।[94]

इन चित्रों को अंकित करने का उद्देश्य स्पष्टत: सांप्रदायिक था तथा इस दृष्टि से उनका महत्व भी सीमित था। किंतु कला तथा सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से इनका महत्व अतुलनीय है। ये चित्र न केवल चित्रकला के विकास, तकनीक तथा परिष्कृत सुरुचि के ही परिचायक हैं, अपितु तत्कालीन संस्कृति के विभिन्न उपादानों के अध्ययन की दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी हैं। इन चित्रों में रहन-सहन, वेशभूषा, वस्त्राभूषण, खान-पान, शस्त्रास्त्र, स्थापत्य, उपस्कर, मनोविनोद, यातायात के विविध साधन, पशुसंपदा, वनस्पतिजगत तथा विभिन्न व्यापार-व्यवहार का जो सूक्ष्म अंकन है वह तत्कालीन संस्कृति के अध्ययन का एक श्रेष्ठ और अनूठा साधन है। इस दृष्टि से देखा जाए तो अजंता के चित्र समकालीन भारतीय संस्कृति के अनमोल विश्वकोश हैं जिनका निर्माण जनजीवन को निकट से देखने वाले पारखी कलाकारों के लिए ही संभव था।[95]

संदर्भ

1. गायकवाड ओरिएंटल सीरीज, संख्या 130 (प्रियबाला शाह द्वारा संपादित). स्टेला क्रेमरिश ने इसका अंगरेजी अनुवाद प्रकाशित किया.
2. अगले श्लोक में कहा गया है कि जिस प्रकार पर्वतों में सुमेरु, अंडजों (पक्षियों) में गरुड़ तथा मनुष्यों में राजा श्रेष्ठ है उसी प्रकार कलाओं में चित्रकर्म सर्वोत्तम है.
3. इन संदर्भों के लिए देखिए, अजयमित्र शास्त्री : इंडिया ऐज सीन इन दि बृहत्संहिता आफ वराहमिहिर, पृ० 437-38.
4. अजयमित्र शास्त्री : 'नग्नजित और उसका चित्रलक्षण', सम्मेलन पत्रिका, भाग 49, संख्या 1, पृ० 15-22.
5. चित्रभेदा : प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम्।
   सादृश्यं वर्णिकाभंग इति चित्रं षडंगकम्॥
6. ए. डी. पुसालकर : भास—ए स्टडी, (द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 1968), पृ० 424-25.
7. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 9.
8. अजयमित्र शास्त्री : इंडिया ऐज सीन इन दि कुट्टनीमत आफ दामोदरगुप्त, पृ० 229-30.
9. वाचस्पति गैरोला : भारतीय चित्रकला, पृ० 87-96.
10. रमानाथ मिश्र : भारतीय मूर्तिकला, पृ० 23.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

11. इन चित्रों के विस्तृत विवरण के लिए देखिए, माहेश्वरीदयाल खरे : बाघ की गुफाएं, पृ० 59-70; मार्ग, खं० 25, सं० 3, जून 1973.
12. मुनि कांतिसागर : खोज की पगडंडियां, पृ० 14 और आगे.
13. पर्सी ब्राउन : इंडियन पेंटिंग, अध्याय 1-3.
14. जेम्स फर्ग्युसन तथा जेम्स बर्जेस : दि केव टेंपल्स आफ इंडिया, पृ० 24; मदनजीत सिंह : दि केव पेंटिंग्स आफ अजंता, पृ० 7-8.
15. पर्सी ब्राउन : इंडियन पेंटिंग, पृ० 30.
16 तुलनीय गुलाम याजदानी : अजंता, खं० 4, पृ० 5.
17. पर्सी ब्राउन : इंडियन पेंटिंग, पृ० 113-15.
18. एस० परमशिवन : 'टेक्नीक आफ दि पेंटिंग प्रोसेस इन दि केव टेंपल्स आफ अजंता', ऐनुअल रिपोर्ट आफ दि आर्किओलाजिकल डिपार्टमेंट आफ हिज हाइनेस दि निजाम्स डोमिनियन्स, 1936-37, पृ० 25-30 तथा अमलानंद घोष (संपादक) : पूर्वोक्त, पृ० 53-55. इन विवरणों में कुछ भेद पाया जाता है; यद्यपि निष्कर्ष समान है.
19. विस्तृत विवेचन के लिए द्रष्टव्य, वाचस्पति गैरोला : पूर्वोक्त, पृ० 61 और आगे.
20. याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 3, पृ० 24-27; मदनजीत सिंह : पूर्वोक्त, फ० 48.
21. वही, आ. 5-6; याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 3, 27-28.
22. मदनजीत सिंह : पूर्वोक्त, आ० 3-4.
23. वही, आ० 7-8; याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 3, पृ० 32-37.
24. वही, पृ० 15-16.
25 वही, पृ० 22.
26. वही, पृ० 17-19; मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, आ० 5-6.
27. देवला मित्र : अजंता, पृ० 18.
28. वही, पृ० 18-19.
29. एस० आर० राव : दि इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया, जून 22, 1975, पृ० 12-13.
30. इस जातक कथा में उल्लिखित स्थानों के समीकरण के लिए द्रष्टव्य, चंद्रशेखर गुप्त : 'जातक साहित्य में वर्णित विदर्भ का ऐतिहासिक भूगोल', धम्मदीप, अ० 8 (1972), पृ० 72 और आगे.
31. याजदानी : अजंता, खं० 1, पृ० 13-14.
32. वही, खं० 1, पृ० 15.
33 कुछ विद्वान मध्यमणि से अलंकृत एक लड़ के मुक्ताहार को भ्रांतिवश एकावली कहते हैं, जबकि इसका वास्तविक नाम यष्टि है—अजयमित्र शास्त्री : इंडिया ऐज सीन इन दि बृहत्संहिता आफ वराहमिहिर, पृ० 232-33.
34. मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, फ० 25.
35. देवला मित्र : पूर्वोक्त, पृ० 21.
36. वही, पृ० 17.
37. मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, फ० 26; याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 1, पृ० 35 और आगे.
38. वही, पृ० 34-35, फ० 23 बी.
39 वही, पृ० 38-43.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

40. वही, पृ० 46-48.
41. देवला मित्र : पूर्वोक्त, पृ० 23, टि० 1.
42. राय कृष्णदास और आनंद कृष्ण : अजंता के चित्रकूट, पृ० 21.
43. एस० आर० राव : पूर्वोक्त, पृ० 12.
44. राय कृष्णदास और आनंद कृष्ण : पूर्वोक्त, पृ० 37.
45. इस गुफा में चित्रों का वर्णन देवला मित्र : पूर्वोक्त, पृ० 46-51; वासुदेव विष्णु मिराशी : वाकाटक राजवंश का इतिहास तथा अभिलेख, पृ० 101-106; अमलानंद घोष : पूर्वोक्त, में और पंत प्रतिनिधि : अजिंठा में प्रकाशित चित्रों के प्रत्यक्ष निरीक्षण पर आधारित है.
46. मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, आ० 13.
47. वही, आ० 9-10, फ० 50.
48 वही, फ० 51-53, 62; पंत प्रतिनिधि : पूर्वोक्त, चि० 34.
49. केव टेंपल्स आफ इंडिया, पृ० 307 पर उद्धृत.
50. गुलाम याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 3, पृ० 56.
51. गुलाम याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 3, पृ० 58-59.
52. वही, पृ० 60; मिराशी : पूर्वोक्त, पृ० 103.
53. वही, पृ० 102; याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 3, पृ० 68-70.
54 वही, खं० 4, पृ० 21 और आगे, फ० 4 अ-7 अ.
55. एवं प्रवर्तित चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।

—भगवद्गीता. 3 16, पृ० 109

56. याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 4, पृ० 4, पृ० 43 और आगे, फ० 19-26; मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, फ० 58.
57. वही, फ० 60-61; पंत प्रतिनिधि : पूर्वोक्त, चित्र 54, 64-67; याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 4, पृ० 43 और आगे, फ० 19-26.
58 पंत प्रतिनिधि : पूर्वोक्त, चि० 59.
59. वही, चित्र 61 : मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, फ० 69
60. देवला मित्र : पूर्वोक्त, पृ० 52.
61. वही, पृ० 54.
62. मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, फ० 3, 66, आ० 14; याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 4, पृ० 30, फ० 10-12
63 वही, पृ० 33 और आगे, फ० 11 बी, 12 सी० ई० 13 ए० सी; मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, फ० 58, 73 आ० 12.
64. याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 4, पृ० 35, फ० 14.
65. वही, पृ० 40-41, फ 17 ए-बी.
66. वही, पृ० 40 और आगे फ० 17 ए० बी; मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, फ० 65.
67. वही, फ० 49, 71-72, 77; याजदानी : पूर्वोक्त, पृ० 54 और आगे, फ० 27 सी-37.
68. वही, पृ० 66 और आगे, फ० 38-40 ए०, पंत प्रतिनिधि : पूर्वोक्त, चि० 71.
69. याजदानी : पूर्वोक्त, पृ० 70 और आगे, फ० 40-43; मदनजीत सिंह : पूर्वोक्त, फ० 38.
70. याजदानी : पूर्वोक्त, पृ० 73 और आगे, फ० 44-46.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

71. वही, पृ० 76 और आगे, फ० 47-48; मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, फ० 76.
72. याजदानी : पूर्वोक्त, पृ० 78-79.
73. वही, पृ० 79-80.
74. वही, पृ० 81.
75. वही, पृ० 82-95; मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, फ० 15, 75, आ० 1.
76. वही, फ० 63; याजदानी : पूर्वोक्त, पृ० 59-60; देवला मित्र : पूर्वोक्त, पृ० 62, फ० 11.
77. याजदानी : पूर्वोक्त, पृ० 96 और आगे.
78. वही, पृ० 102-103.
79. देवला मित्र : पूर्वोक्त, पृ० 63-64.
80. याजदानी : पूर्वोक्त, पृ० 103-106; देवला मित्र : पूर्वोक्त, पृ० 74-65.
81. पंत प्रतिनिधि : पूर्वोक्त, चित्र 80; याजदानी : पूर्वोक्त, पृ० 106-8, फ० 71-74.
82. घोष : पूर्वोक्त, फ० 84.
83. देवला मित्र : पूर्वोक्त, पृ० 28.
84. याजदानी, पूर्वोक्त, खं० 2, पृ० 16-21, फ० 18 बी-23; घोष : पूर्वोक्त, फ० 44.
85. वही, फ० 49.
86. देवला मित्र : पूर्वोक्त, पृ० 26-27,
87. याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 2, पृ० 27-28, फ० 28 ए; देवला मित्र : पूर्वोक्त, पृ० 27.
88. याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 2, पृ० 31, 33-34, फ० 31, 33 बी
89. वही, पृ० 36-45, फ० 35-41; घोष : पूर्वोक्त, फ० 53, 54; मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, फ० 37, 40, 41.
90. याजदानी : पूर्वोक्त, पृ 9 और आगे, फ० 12-14.
91. वही, पृ० 45 और आगे, फ० 42-44ए.
92. वही, पृ० 50-51; जातक के अभिज्ञान के लिए द्रष्टव्य—धीरेंद्रनाथवर्मा : अजंता की गुफाएं, पृ० 130.
93. याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 2, पृ० 52 और आगे, फ० 47-49; घोष : पूर्वोक्त, फ० 43, 45, 47, 48, 50, 52, 56; मदनजीतसिंह : पूर्वोक्त, फ० 80.
94. वही, फ० 54, 81; घोष : पूर्वोक्त, फ० 85.
95. याजदानी : पूर्वोक्त, खं० 3, पृ० 77-78, फ० 69-70. अभिलेख के लिए देखिए अध्याय 6.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

5

मूर्तिकला

कतिपय विद्वानों ने अजंता के शैलगृहों को गुफा शब्द से अभिहित करना भ्रामक मानकर उन्हें शिल्प की संज्ञा से संबोधित करना कहीं अधिक उपयुक्त माना है। वास्तव में प्रत्येक गुफा जिस योजनाबद्ध ढंग से काट कर उकेरी गई है उसे शिल्प मानना ही युक्तिसंगत है। किंतु साधारणतः स्वीकृत शब्दावली के अनुसार केवल काट कर बनाई हुई आकृतियां ही शिल्प कहलाती हैं। इस संकीर्ण परंपरागत अर्थ में भी मूर्तिकला की दृष्टि से अजंता कम समृद्ध नहीं है। परंतु आरंभ से ही उसके चित्र तथा शैल स्थापत्य दर्शकों एवं कलामर्मज्ञों के मानसपटल पर इतने अधिक छाए हुए हैं कि उसकी शिल्पसंपदा की ओर लोगों का ध्यान अपेक्षाकृत कम ही जाता है। अजंता की मूर्तियों का वाकाटक शिल्पकला की दृष्टि से अत्यंत महत्व-पूर्ण स्थान है, क्योंकि विदर्भ के रामटेक (रामगिरि), पवनार (प्रवरपुर) और मांढल जैसे इनेगिने स्थानों को छोड़कर तत्काल मूर्तिकला के उत्कृष्ट उदाहरण वाकाटक साम्राज्य में मात्र अजंता से ही प्राप्त होते हैं। विशेषतः वाकाटक शैली के बौद्ध शिल्प के उदाहरण तो अब तक केवल अजंता से ही उपलब्ध हुए हैं। इन मूर्तियों का प्रभाव उत्तरकालीन शिल्पकला पर इतने प्रखर रूप में पड़ा है कि उसे कलासमीक्षकों ने अजंता शैली की संज्ञा से संबोधित कर एक मानदंड के रूप में स्थापित किया है। इस दृष्टि से भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में अजंता के शिल्प का अपना विशिष्ट स्थान है। दक्खन की शिल्पकला के विकासक्रम में तो ये मूर्तियां मील के पत्थर का कार्य करती हैं।

शिल्प का विकास और शैली

जैसाकि आरंभ में ही प्रतिपादित किया जा चुका है, ये सभी शैलगृह निर्माण शैली की दृष्टि से वस्तुतः मूर्तिकला के उदाहरण हैं और इस दृष्टि से ये गुफाएं और इनमें प्राप्त शिल्प एक ही सिक्के के दो पहलू कहे जा सकते हैं। इस प्रकार शैल स्थापत्य एवं शिल्प के अन्य उदाहरणों की भांति अजंता के स्थपति और शिल्पी पृथक न होकर अभिन्न थे। शैल स्थापत्य में काष्ठ स्थापत्य के तत्वों का एकीकरण इस तथ्य का द्योतक है कि ये स्थपति-शिल्पी मुख्यतः बढ़ई थे।[1] इन शैलगृहों और उनके शिल्प के निर्माण में स्थपतियों और बढ़इयों के अतिरिक्त सुनारों एवं दंतकारों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। पितलखोरा की एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यक्ष प्रतिमा के हाथ पर उत्कीर्ण एक लेख से विदित होता है कि उसका निर्माण एक हिरण्यकार (सुनार) ने किया था।[2] यद्यपि दंतकारों के योगदान का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण जब तक उपलब्ध नहीं हुआ है तथापि भोकरदन (भोगवर्धदन),[3] तेर (तगर)[4] तथा पैठण (प्रतिष्ठान)[5] जैसे प्राचीन स्थानों से प्राप्त गजदंत एवं अस्थिशिल्प की इन गुफाओं में उपलब्ध मूर्तियों से शैलीगत समानता और सांची के प्रमुख स्तूप के तोरण से दंतकारों के संबंध[6] को देखते हुए यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि मूर्तिकला के विकास में इनका योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं था।

कालानुक्रम एवं संप्रदायों के आधार पर महाराष्ट्र के शैलगृहों का विभाजन मोटे तौर से दो वर्गों में किया जाता है। प्रथम अथवा हीनयान काल (ई० पू० प्रथम शती से ईस्वी द्वितीय शताब्दी तक) की मूर्तियां भाजे, पितलखोरा, कोंडाणे, नासिक, बेडसा, कार्ला, कान्हेरी प्रभृति स्थानों से प्राप्त हुई हैं। दुर्भाग्यवश अजंता के शैलगृहों में इस काल की एक भी मूर्ति अब तक उपलब्ध नहीं हुई है। किंतु इसकी क्षतिपूर्ति द्वितीय अथवा महायान काल में, जिसका प्रारंभ ईस्वी पांचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ, पूर्णतः हो जाती है। इस काल में जहां एक ओर हीनयान काल में निर्मित गुफाओं में महायान परंपरा का अनुसरण करते हुए नवीन शिल्प तथा चित्र बनाए गए वहां दूसरी ओर जो नई गुफाएं खोदी गईं उनमें विविध मुद्राओं में बुद्ध, बोधिसत्वों तथा अन्य देवयोनियों के शिल्पांकन एवं चित्रण को प्रधानता दी गई। पूर्ववर्ती हीनयान गुफाओं अथवा नवीन खोदे हुए शैलगृहों के विभिन्न भागों में इस काल में निर्मित बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियां पितलखोरा, कार्ले, नासिक, कान्हेरी, औरंगाबाद तथा एलोरा में भी बड़ी संख्या में पाई जाती हैं।[7]

अजंता का शिल्प वास्तव में मूर्तिकला की उस दक्खनी परंपरा का ही विकसित रूप है जिसका उदय सातवाहन काल में हुआ था तथा जिसके श्रेष्ठ उदाहरण प्रचुर परिमाण में महाराष्ट्र के बौद्ध शैलगृहों में बिखरे पड़े हैं। किंतु अजंता की भौगोलिक स्थिति कुछ ऐसी है कि उसकी मूर्तिकला समकालीन उत्तर और दक्षिण भारतीय कलापरंपराओं के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकी। गुप्त-वाकाटक काल भारतीय कला का स्वर्णयुग माना जाता है तथा इस काल में विकसित अजंता का शिल्प स्वर्णयुगीन दक्खनी कला का श्रेष्ठतम प्रतिनिधि है। उत्तर भारतीय प्रभाव के कुछ स्पष्ट प्रमाण अजंता में प्राप्त होते हैं। चौथी गुफा के गर्भगृह में निर्मित भगवान बुद्ध की प्रतिमा की पीठिका पर उत्कीर्ण एक लेख में कहा गया है कि यह शिल्प विहारस्वामी अभयनंदी के पुत्र माथुर का दान था।[8] माथुर, जैसाकि उसके नाम से प्रतीत होता है, संभवतः मथुरा का निवासी था। मथुरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तरी भारत में ईसा के पूर्व की कुछ शताब्दियों से वैदिक हिंदू, जैन तथा लोक-धर्मों के साथ साथ बौद्ध धर्म एवं कला का एक अतिशय महत्वपूर्ण केंद्र था। अतः यह अनुमान करना स्वाभाविक ही है कि उत्तर भारतीय कला का प्रभाव किसी न किसी रूप में अजंता पर पड़ा होगा। इसी भांति सारनाथ की गुप्तकालीन शिल्पकला का प्रभाव महाराष्ट्र के ईस्वी पांचवीं-छठी शताब्दी के कई कलाकेंद्रों की मूर्तिकला में परिलक्षित होता है। कान्हेरी की चैत्यगुफा क्र० 3 का शिल्प संयोजन तथा भावाभिव्यक्ति सारनाथ की परंपरा के अनुरूप है। अजंता की नवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं गुफाओं के गृहमुख पर खोदी गई बुद्ध की स्थानक मूर्तियां सारनाथ की गुप्तकालीन शिल्पकला की प्रमुख विशेषताओं—परिष्कृत शिल्पसंयोजन तथा आत्मिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति—से अनुप्राणित हैं। किंतु ऐसे उदाहरण बिरले हैं तथा इन पर जो भी उत्तरी प्रभाव परिलक्षित होता है वह केवल कतिपय प्रमुख विशेषताओं तक ही सीमित है। अन्यथा अन्य अधिकांश मूर्तियों की भांति ये भी दक्खन की शिल्पपरंपरा के विकसित रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। आकृति का भारीपन एवं स्थूलता, जो इन मूर्तियों का एक प्रमुख वैशिष्ट्य है, इन्हें महाराष्ट्र के शैलगृहों में उपलब्ध पूर्ववर्ती यक्ष मूर्तियों से संबद्ध करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि महायान काल में—जब बौद्ध धर्म में प्रतिमाओं की पूजा आरंभ हुई—इन यक्ष मूर्तियों का विकास बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियों में हुआ। प्रस्तुत संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि मथुरा की प्राचीनतम बुद्ध एवं बोधिसत्व मूर्तियों का विकास भी स्थानीय यक्ष प्रतिमाओं से ही हुआ है।

अजंता की गुफाओं के गर्भगृहों में स्थापित धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में वज्रासनासीन बुद्ध तथा स्तूपों के सम्मुख भाग पर प्रलंबपादासनस्थ बुद्ध की प्रतिमाओं में शिल्पकला की दृष्टि से कोई भी विकास दिखाई नहीं देता। किंतु मुख्य मूर्ति के परिकर में उकेरी गई अन्य प्रतिमाएं अवश्य क्रमशः विकसित होती दृष्टिगत होती हैं। यह विकास सहयोगी आकृतियों की संख्या में वृद्धि तथा अलंकरण के विस्तार की दिशा में है। आरंभिक बुद्ध मूर्तियों के दोनों ओर एक एक चामरधारी बोधिसत्व की प्रतिमाएं उत्कीर्ण की गई हैं जो कालांतर में बोधिसत्व पद्मपाणि तथा बोधिसत्व वज्रपाणि के रूप में विकसित हुईं। इन मूर्तियों के एक हाथ में चामर के स्थान पर यथाक्रम पद्म तथा वज्र लांछनों का अंकन किया जाने लगा जो प्रतिमालक्षण की दृष्टि से निश्चित किए गए थे। इसी भांति आसन के सम्मुख भाग पर पहले जहां धर्मचक्र के दोनों ओर बैठे हरिण बनाए गए हैं वहां कुछ काल बाद की प्रतिमाओं में भगवान बुद्ध का प्रथम प्रवचन सुननेवाले पांच भिक्षुओं का अंकन भी दृष्टिगोचर होता है और आगे चल कर धर्मोपदेश सुननेवाले भिक्षुओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं उपासकों के शिल्प ही नहीं अपितु संगीत और नृत्यरत प्रतिमाएं भी गर्भगृह की शोभा बढ़ाने लगीं। अलंकरणाकृतियों में भी इसी प्रकार की वृद्धि दिखाई देती है। बुद्ध का सादा आसन क्रमशः सिंह, मकर, व्याल, हाथी, कुब्ज मानवाकृतियों तथा नक्काशियों से अलंकृत होता गया और वह अब बुद्ध के वज्रासन के स्थान पर इंद्र का वैभवशाली भव्य सिंहासन प्रतीत होता है।[9]

अजंता की सबसे प्राचीन बुद्ध मूर्तियां ग्यारहवीं, छठी (पहली मंजिल) तथा सोलहवीं गुफाओं में हैं। ये मूर्तियां परवर्ती काल की मूर्तियों की भांति भित्ति से सटी न होकर कुछ हटी हुई उत्कीर्ण हैं जिससे इनके चारों ओर प्रदक्षिणा की जा सके। ग्यारहवीं गुफा की प्रतिमा का सिंहासन तथा प्रभावलय एक स्तूप से जुड़ा है जो स्तूपपूजा की समाप्ति तथा प्रतिमा पूजन के आरंभ के बीच के संक्रमण काल का परिचायक है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अजंता की शिल्पकला शैली की दृष्टि से स्वतंत्र रूप से अंकुरित और विकसित हुई है। वाकाटक गुप्त काल के समस्त संभावित सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संबंधों तथा संपर्कों को स्वीकारते हुए भी यही मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि अजंता की शिल्पकला स्थानीय शिल्पकारों का प्रदेय है, बाह्य आयात नहीं।

गुफाओं की दीवारों, स्तंभों और छतों की भांति मूलतः इन मूर्तियों पर भी पलस्तर की एक तह देकर चित्रांकन किया गया था। पलस्तर और रंगकर्म के अवशेष आज भी गुफा क्र० 1, 2, 16 तथा 17 में प्रचुर परिमाण में देखे जा सकते हैं। चित्रकर्म के फलस्वरूप इन मूर्तियों का आकर्षण कुछ अनूठा ही रहा होगा जिसकी आज कल्पना भी संभव नहीं है। पलस्तर और चित्रण की अनुपस्थिति में इन शिल्पों का वास्तविक मूल्यांकन संभव नहीं है, क्योंकि रंगकर्म के कारण शिल्प की त्रिआयामिकता तथा परिप्रेक्ष्यता में असाधारण वृद्धि हो जाती है।

विषयवस्तु की दृष्टि से अजंता की मूर्तियां मुख्य रूप से बुद्ध, बोधिसत्व, व्यंतर देवता तथा अलंकरणाकृतियों में विभक्त की जा सकती हैं। इनकी संक्षिप्त चर्चा यहां अप्रासंगिक न होगी।

बुद्ध प्रतिमाएं : महायान काल में बुद्ध प्रतिमाओं का निर्माण प्रारंभ हुआ। हीनयान काल में पूजा-अर्चा हेतु चैत्यगृह बनाए जाते थे जिनमें बुद्ध के महापरिनिर्वाण का प्रतीक स्तूप निर्मित किया जाता था। महायानियों ने चैत्यगृहों का निर्माण तो जारी रखा ही, किंतु इसके साथ ही विहारों में पिछले छोर पर गर्भगृह खुदवा कर उनमें बुद्ध प्रतिमाओं का निर्माण भी करवाया। महायान चैत्यगृहों में बुद्ध के जीवन के विविध प्रसंगों के शिल्पांकन के अतिरिक्त स्तूप के सम्मुख भाग पर भी बुद्धप्रतिमाएं बनाई जाने लगीं। विहारों के गर्भगृहों में स्थापित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भगवान बुद्ध की प्रतिमा प्रायः चामरधारी बोधिसत्वों की स्थानक प्रतिमाओं के मध्य धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में वज्रासनस्थ उकेरी गई हैं। विकसित उदाहरणों में आसन के सम्मुख भाग पर दो हरिणों के मध्य धर्मचक्र का तथा हरिणों के पीछे अंजलि मुद्रा में श्रोताओं का अंकन पाया जाता है। यह शिल्पांकन बुद्धत्वप्राप्ति के पश्चात मृगदाव (सारनाथ) में भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए प्रथम प्रवचन का प्रतीक है, जिसके द्वारा भगवान बुद्ध ने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया था।[10]

गुफा क्र० 19 के कुछ कोष्ठों[11] तथा छब्बीसवीं गुफा के स्तूप के सम्मुख भाग पर प्रलंबपादासन तथा धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बैठे बुद्ध का अंकन है। उन्नीसवीं गुफा में स्तूप के सम्मुख भाग में अभय मुद्रा में खड़े बुद्ध की प्रतिमा का अंकन है।[12] गुफा क्र० 9 के मुहार (सम्मुख भाग) पर चैत्यवातायन के बाजू में, गुफा क्र० 19 के सम्मुख भाग में,[13] गुफा क्र० 6 के गर्भगृह में तथा गुफा क्र० 26 के विभिन्न भागों में निर्मित बहुसंख्यक प्रतिमाओं में स्थानक तथा विभिन्न मुद्राओं में बुद्ध का अंकन किया गया है। गुफा में बुद्ध के जीवन से संबद्ध कुछ प्रसंगों—मार का आक्रमण,[14] श्रावस्ती का चमत्कार[15] (जो गुफा क्र० 7 में भी अंकित है[16]), महापरिनिर्वाण प्रभृति—का अंकन किया गया है। स्तूप पर बुद्ध प्रतिमा का अंकन मूलतः गंधार प्रदेश में आरंभ हुआ तथा महायान संप्रदाय के प्रचार-प्रसार के साथ साथ अन्य प्रदेशों में लोकप्रिय होता गया।

अजंता के विहारों के गर्भगृहों में भगवान बुद्ध के भव्य तथा विशाल शिल्पांकनों के साथ ही कभी कभी वरद मुद्रा में चीवर धारण किए स्थानक मूर्तियों (गुफा क्र० 4 तथा 6 के अंतराल में) तथा अभय मुद्रा में मुचलिंद नाग के साथ (छठी गुफा के गर्भद्वार पर) वज्रासनस्थ मूर्ति का अंकन भी दृष्टिगत होता है। इनके अतिरिक्त भगवान बुद्ध की प्रमुख मूर्ति के चारों ओर सुविधा-जनक स्थलों पर चौखट के रूप में विविध मुद्राओं में उनकी छोटी छोटी मूर्तियों के निर्माण की पद्धति भी प्रचलित थी।[17] गर्भगृहों में स्थापित बुद्ध की भव्य प्रतिमाएं उड़ते हुए मालाधारी गंधर्वों तथा चामरधारी बोधिसत्वों के मध्य वज्रासन तथा धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बैठी और शांत एवं करुणामय भावों से युक्त हैं।[18] शिला में निर्वेद का ऐसा सजीव संयोजन शिल्पकार की अद्भुत क्षमता का परिचायक है।

बोधिसत्व : महायान संप्रदाय में बोधिसत्वों की पूजा बहुत लोकप्रिय हुई। इस लोकप्रियता का मुख्य कारण संसारी जीवों के प्रति उनकी असीम करुणा तथा मानवता के कल्याण के निमित्त महत्तम आत्मत्याग—यहां तक कि परम ज्ञान एवं बोधि का त्याग—की भावना है। मूलतः बोधिसत्वों का अंकन भगवान बुद्ध के परिचारकों के रूप में आरंभ हुआ, किंतु आगे चल कर स्वतंत्र रूप से भी कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोधिसत्वों की मूर्तियों और चित्रों के निर्माण की प्रथा का प्रचलन हो गया। इनमें से बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का अंकन विशेष रूप से लोकप्रिय था। दूसरी गुफा के गर्भगृह तथा सत्रहवीं गुफा के बरामदे में अवलोकितेश्वर का चित्रांकन और गुफा क्र० 4 के बरामदे में एवं छब्बीसवीं गुफा के निकट दो—एक बड़े और एक छोटे—शिल्पपट्टों में शिल्पांकन दृष्टिगत होता है। साधारणतया इन शिल्प-पट्टों के मध्य में जटामुकुट एवं मस्तक पर ध्यानी बुद्ध अमिताभ को धारण किए हुए अवलोकितेश्वर का अंकन किया गया है। वे एक हाथ में कमलनाल तथा दूसरे में अक्षमाला लिए हुए दर्शाए गए हैं। कमल लांछन के फलस्वरूप वे पद्मपाणि नाम से भी प्रसिद्ध हैं। दोनों ओर निर्मित चार चार छोटे प्रकोष्ठों में उन्हें अपने भक्तों की विभिन्न प्रकार के भयों से रक्षा करते हुए प्रदर्शित किया गया है। ये भय अष्टभय कहलाते हैं तथा इनमें यात्रा के दौरान अनुभूत विविध कठिनाइयों—यथा रोग, चोर, डाकू, अग्नि, सिंह, हाथी, सांप, बाढ़ और पोतभ्रंश इत्यादि—का समावेश है। यात्रा की इन विपत्तियों से रक्षक होने के कारण भूमार्ग एवं जलमार्ग से यात्रा करने वाले व्यापारियों का बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की ओर विशेष रूप से आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। अजंता के शिल्पपट्टों में भय से भागते हुए मनुष्य तथा उनका पीछा करते हुए हाथी और सांप, बाघ इत्यादि वन्य पशु तथा चोर-डाकू, भूत-प्रेत इत्यादि अंकित दृष्टिगत होते हैं। कहीं कहीं अग्निकांड तथा क्षत-विक्षत नौकाएं भी अंकित पाई जाती हैं। भागते हुए मनुष्य की भयग्रस्तता तथा गति का अंकन पूर्णतः स्वाभाविक एवं सफल है। अवलोकि-तेश्वर के शिल्पपट्ट पश्चिमी भारत के अन्य महायानकालीन शैलगृहों में भी बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं।

व्यंतर देवता : नाग, यक्ष, किन्नर, गंधर्व, विद्याधर इत्यादि की पूजा भारत में जनसाधारण में अतिप्राचीन काल से प्रचलित थी। इन लोकदेवताओं के पूजक भी संस्कृतीकरण के फलस्वरूप शनैः शनैः वैष्णव, शैव, बौद्ध एवं जैन धर्मों की ओर बड़ी संख्या में आकर्षित हुए। परंतु इसके बावजूद उनमें अपने अपने मूल देवों की पूजा भी पूर्ववत प्रचलित रही और इसके परिणामस्वरूप इन प्रमुख धर्मों में इन लोकदेवताओं के समावेश की आवश्यकता प्रतीत हुई। इन लोकदेवों के अंतर्भाव के मूल में संभवतः उनके अनुयायियों को अपने अपने धर्म की ओर बड़ी संख्या में आकर्षित कर अपनी शक्ति और लोकप्रियता में वृद्धि की इच्छा भी निहित थी। किंतु इन धर्मों में व्यंतर देवताओं को इनके उपास्य देव के साथ संबंधित कर गौण अथवा परिवार देवताओं का स्थान दिया गया।

बौद्ध धर्मग्रंथों में भगवान बुद्ध के अनुयायियों एवं परिचारकों के रूप में प्रायः नाग, यक्ष, गंधर्व, विद्याधर इत्यादि की चर्चा दृष्टिगत होती है। हम उन्हें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध के जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए पाते हैं। बौद्ध शिल्प में भी उनका अंकन इसी रूप में पाया जाता है।

अजंता के विहारों के सभामंडपों एवं गर्भगृहों की द्वारशाखाओं पर नागों का अंकन रक्षक देवों के रूप में किया है।[19] गुफाओं में विभिन्न स्थलों पर पांच फणों के घटाटोप से युक्त गगनचारी नागों द्वारा स्तूपपूजा (उन्नीसवीं गुफा का सम्मुख भाग),[20] नागराजदंपती (गुफा क्र० 1, 2, 19[21] तथा 23), वज्रासनस्थ बुद्ध के कमलासन का दंड पकड़े हुए नंद एवं उपनंद नामक नागों (गुफा क्र० 7) तथा बुद्ध के ऊपर छाया करते हुए मुचलिंद नाग (छठी गुफा के गर्भगृह का प्रवेशद्वार) का अंकन दृष्टिगोचर होता है।[22] गुफा क्र० 16 के वराहदेव के लेख में 'नागेंद्रवेश्म' के नाम से निर्दिष्ट देवकुलिका में प्राप्त नागराज का अंकन काफी सुंदर बन पड़ा है। नागराजदंपती के अंकन के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि नागराज के सिर पर पांच फणों का घटाटोप तथा नागराज्ञी के सिर पर एक फण दर्शाया गया है।

यक्षों का अंकन भारतीय कला में प्रचुरता से दृष्टिगत होता है। अजंता की द्वितीय गुफा में एक देवकोष्ठ में चामरधारिणी परिचारिकाओं से घिरे दो आसीन यक्षों तथा दूसरे में पांचिक (जंभल अथवा कुबेर) और हारिती की भव्य मूर्तियां अंकित हैं।[23] हारिती और पांचिक की अलग अलग मूर्तियां गुफा क्र० 2 के बरामदे में बाईं ओर प्रकोष्ठ के ऊपर तथा तेइसवीं गुफा में उत्कीर्ण की गई हैं। उन्नीसवीं[24] तथा छब्बीसवीं चैत्यगुफाओं के चैत्यवातायन के दोनों ओर क्रमशः खड़े तथा बैठे यक्षों का अंकन है। गुफा क्र० 17 से प्राप्त एक चित्रित अभिलेख में मणिभद्र नामक यक्ष का उल्लेख पाया जाता है। यक्ष मूर्तियां भारी भरकम, तुंदिल तथा विभिन्न प्रकार के आभूषणों से भूषित उकेरी गई हैं। इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि अजंता के बौद्ध धर्मानुयायी नागपूजा की भांति यक्षपूजा को भी पूर्णतः अपना चुके थे।

इन व्यंतर देवताओं के अतिरिक्त गंधर्व, विद्याधर, कुब्ज परिचारक तथा किन्नर आदि का अंकन भी अजंता में यत्र-तत्र दिखाई देता है। बुद्ध के प्रभावलय के दोनों ओर माला लिए विद्याधर प्रायः उड़ते हुए अंकित मिलते हैं।[25] दिव्य गायक गंधर्व प्रायः युगल रूप में उड़ते हुए अंकित पाए जाते हैं।[26] चौबीसवीं गुफा के स्तंभशीर्षों के वक्रों के अंतिम भाग में गंधर्वमिथुनों का बड़ा ही सुंदर अंकन किया गया है। किन्नरमिथुनों का ऊपरी भाग मनुष्याकृति तथा निचला भाग पक्षियों के आकार का है और वे भी मेघों के मध्य वाद्य बजाते हुए दर्शाए गए हैं। सोलहवीं गुफा की छत यक्षों, गंधर्वों और किन्नरों पर आधारित दिखाई गई है। गंधर्वों के संगीत की ताल रखते हुए वाद्यधारी गणों का अंकन भी दृष्टि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गत होता है। मंदिरों की द्वारशाखाओं के दोनों ओर गंगा तथा यमुना की प्रतिमाएं उत्कीर्ण करने की प्रथा गुप्त वाकाटककालीन स्थापत्य की एक प्रमुख विशेषता है। प्रतीत होता है कि अजंता के कलाकारों तक इन नदीदेवियों के रूढ़ प्रतिमालक्षण नहीं पहुंच पाए थे। अजंता में दोनों देवियां मकर वाहन पर ही खड़ी अंकित की गई हैं, जबकि प्रतिमालक्षणों के अनुसार मकर गंगा का तथा कच्छप यमुना का वाहन है। यह भी संभव है कि यहां गंगा और यमुना का अंकन न होकर नदीदेवियों का केवल सामान्य अंकन अभीष्ट हो और इसीलिए शिल्पकार ने सामान्य रूप से मकरारूढ़ देवियों का अंकन कर दिया हो। गुफा क्र० 20 के गर्भगृह के द्वार पर दाईं ओर अंकित मकरारूढ़ देवी कछुए पर खड़े परिचारक के सिर पर अपना बायां कोहनी से मुड़ा हुआ हाथ रख कर त्रिभंग मुद्रा में खड़ी अंकित है।[27]

गुफा क्र० 27 के द्वार पर हम एक कुब्ज परिचारक के सिर पर अपना बायां हाथ रखकर कोहनी से मुड़े हुए दाहिने हाथ से शुकक्रीडा में मग्न एक मकरारूढ़ नदीदेवी को एक वृक्ष के नीचे खड़ी अंकित पाते हैं।

अजंता की कुछ गुफाओं (उदाहरणार्थ गुफा क्र० 4) के प्रवेशद्वार पर नदी देवियों के स्थान पर वृक्षिकाओं की आकृतियों का अंकन पाया जाता है।[28] ये वृक्षिकाएं दोहद मुद्रा में वृक्ष के नीचे खड़ी अंकित हैं। वृक्षिकाओं का मांसल तथा गोलाईदार अंकन स्पष्टतया मातृत्व का परिचायक है।

मिथुन : द्वारशाखाओं, स्तंभों के फलकों, कुड्यस्तंभों के मंडलकों तथा पादांगों पर विभिन्न श्रृंगार मुद्राओं में अंकित मिथुन अजंता की गुफाओं में अनेक स्थलों पर उत्कीर्ण दृष्टिगत होते हैं।[29] बौद्ध भिक्षुओं के आवास में इस प्रकार के मिथुनों का अंकन कुछ आश्चर्यजनक है। यह संभव है कि इनके अंकन के पीछे कोई विशेष कारण रहा हो अथवा स्थपतियों ने अपनी व्यावसायिक एवं कलात्मक परंपरानुसार बौद्ध विहारों और चैत्यगृहों में अन्य स्थापत्य से भेद न कर इनका अंकन कर दिया हो।

अलंकरणाकृतियां : कुड्यस्तंभ, स्तंभ, फलक, द्वारशाखा तथा पादांग इत्यादि पर लतापत्रक, पशु तथा कीर्तिमुख प्रभृति आकृतियों का अलंकरण बहुलता से किया गया है। गुफा क्र०1 के प्रवेशद्वार पर वन्य वातावरण में अथवा सूंडों में वृक्षों की शाखा लिए हुए हाथियों की पंक्ति, भैंसों का युद्ध, कमलसरोवर में हंसों की क्रीड़ा आदि अलंकरण उकेरे गए हैं। स्तंभों तथा कुड्यस्तंभों के मंडलकों पर पूर्ण विकसित कमल, शंख, मकर, हंस, कमललता, मोतियों की पंक्ति, जड़ाऊ आभूषणाकृति, कीर्तिमुख, काल्पनिक पशु-पक्षी (ईहामृग) प्रभृति अनेकानेक अलंकरणों का अंकन दृष्टिगोचर होता है। इन अलंकरणों से जहां वातावरण की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भव्यता तथा गरिमा में वृद्धि होती है वहीं शिल्पकार की बहुविज्ञता, सुरुचि, कुशलता, कल्पकता तथा सामर्थ्य का परिचय भी मिलता है।[30]

अजंता के शिल्प के इस संक्षिप्त विवेचन के पश्चात कुछ विशिष्ट शिल्पांकनों का विवरण अगली पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

शिल्पवर्णन

आसनस्थ बुद्ध : गुफा क्र० 1 के गर्भगृह में बुद्ध तथा परिचारक बोधिसत्वों आदि की तीन चौथाई गहराई में उकेरी भव्य प्रतिमा निर्मित है। उत्तरासंग धारण किए हुए बुद्ध वज्रासन में धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बैठे हैं। उनके नेत्र निमीलित हैं तथा सिर पर घुंघराली अलकों का उष्णीषयुक्त जटाभार है। आसन पर सम्मुख भाग में चक्र के दोनों ओर एक एक हरिण तथा पांच भिक्षु तथा उनके पीछे उपासक अंकित हैं।[31] यह बोधि प्राप्त करने के पश्चात मृगदाव (सारनाथ) में भगवान बुद्ध के प्रथम प्रवचन अथवा धर्मचक्र प्रवर्तित करने का प्रतीकात्मक अंकन है। इन पांच भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर बुद्ध ने संघ की स्थापना की थी। धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में भगवान बुद्ध को मध्यम मार्ग का उपदेश करते हुए तथा अपनी उंगलियों से सिद्धांतों की गणना करते हुए अंकित किया गया है। बुद्ध के सिर के पीछे प्रभावलय तथा दोनों ओर उड़ते मालाधारी विद्याधर बनाए गए हैं। आसन के दाईं तथा बाईं ओर चंवर लिए हुए बोधिसत्व खड़े हैं। विद्याधरों तथा बोधिसत्वों के विभिन्न अंग वैविध्यपूर्ण जड़ाऊ आभूषणों से सज्जित हैं। शांत मुखमुद्रा—जिससे दया और करुणाप्रस्फुटित होती है—में बैठी भगवान की विशाल प्रतिमा, परिचारकों की अभिजात्यपूर्ण वेशभूषा तथा आसन पर उत्कीर्ण आकृतियों और प्रभामंडल की प्रभावपूर्ण उकेरियां गर्भगृह के वातावरण में एक अनूठी भव्यता भर देती हैं जो दर्शक को अनायास ही भावाभिभूत कर देती है।

सिद्धार्थ के जीवन के कुछ प्रसंग : राजकुमार सिद्धार्थ को संन्यासभाव से विरत करने के उद्देश्य से राजा शुद्धोदन ने उन्हें अतिशय विलासपूर्ण वातावरण में रखा था। किंतु सिद्धार्थ हर समय चिंतनशील हो संसार के कष्टों से दूर रहने के उपाय का विचार करते रहते थे। एक बार भ्रमण करते हुए रोगी, बूढ़े, मृत तथा संन्यासी को देखकर उनके मन में एक अदम्य जिज्ञासा जाग उठी जिसका उत्तर खोज निकालने के उद्देश्य से उन्होंने सर्वस्व त्याग कर महाभिनिष्क्रमण किया। प्रथम गुफा के प्रवेशद्वार के बाईं ओर की कोठरी के ऊपर तीन पट्टिकाओं में इन प्रसंगों का अंकन है।[32] ऊपरी पट्टिका में आमोदपूर्ण वातावरण में सिद्धार्थ, मध्य में विभिन्न दृश्यों का दर्शन तथा निम्न भाग में चैत्यवातायनों में माला लिए खड़ी कुब्ज मानवाकृतियां अंकित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक शीर्ष और चार कायायुक्त हरिण : इस गुफा के एक स्तंभ के फलक पर शिल्पकार ने अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है और चार हरिणों का अंकन किया है जिनका एक ही सामान्य सिर है। प्रत्येक काया के साथ सिर बिलकुल स्वाभाविक रूप में जुड़ जाता है।[33]

हारिती तथा पांचिक : गुफा क्र० 2 के गर्भगृह में दाईं ओर के कोष्ठ में हारिती तथा पांचिक का मनोहारी तथा भव्य शिल्पांकन है। वाम ललितासन में बाईं जंघा पर एक बालक तथा दाहिने हाथ में दो पदकयुक्त रस्सियां लिए हारिती एवं उसके बाईं ओर दाहिने हाथ में बीजपूरज लिए बैठे पांचिक अंकित हैं। पृष्ठभाग में ऊपर दाईं ओर बुद्ध से क्रुद्ध मुद्रा में अपने पुत्र के विषय में घुटने टेक कर बैठी हारिती उकेरी गई है। दोनों ओर दो चामरधारिणियां खड़ी हैं तथा निचले भाग में विभिन्न क्रीड़ाओं तथा अध्ययन में मग्न बालक एवं सबसे दाईं ओर छड़ी लिए शिक्षक अंकित हैं। हारिती और पांचिक के मध्य एक स्त्री अपने दाएं हाथ में कमल और बाएं हाथ में तोता लिए खड़ी है।[34]

हारिती विशिष्ट प्रकार के भारी केशकलाप, चूड़ामणियुक्त पट्ट, भारी कुंडल, आमलकमणियों, फलकों तथा कई लड़ों के मुक्ताहार, केयूर, कटक तथा पादकटक से भूषित है। पांचिक जड़ाऊ किरीट, ग्रैवेयक, मुक्तायज्ञोपवीत, सर्पाकार वलय, उदरबंध तथा कटक से सज्जित है। बालकों के अंकन से युक्त निचला दृश्य तीन भागों में बांटा जा सकता है। बाईं ओर पांच बालकों का समूह है जो मेषयुद्ध का आनंद लूट रहे हैं। दो बालक एक ओर तथा तीन दूसरी ओर अपने अपने मेढ़े को उकसा रहे हैं। मध्य में दो बालक कुश्ती लड़ने के पैंतरे में (आलीढ तथा प्रत्यालीढ मुद्रा में) दोनों हाथ सामने किए खड़े हैं। दाईं ओर तीन बालक फलक लिए हुए लिखने में मग्न हैं। शिक्षक चौकी पर वामललितासन में बैठे हुए हैं।

हारिती मूलतः एक लोकदेवी थी जो बालकों का अनिष्ट करती थी। कालांतर में इसकी बालकों की हितकारिणी देवी के रूप में स्थापना हो गई[35] और बौद्ध धर्म में इस लोकदेवी का समावेश कर लिया गया। इस संबंध में कथा यह है कि हारिती राजगृह की यक्षी थी। वह दूसरों के बच्चे खा जाती थी। एक बार भगवान बुद्ध ने स्वयं उसके बच्चे को छुपा लिया। हारिती बहुत क्रुद्ध हुई। किंतु बुद्ध द्वारा उपदेश देने पर तथा पुत्रवियोग की व्यथा अनुभव करने पर उसने बच्चे खाना छोड़ दिया और बाल संगोपन शुरू कर दिया। तबसे बालकों की अधिष्ठात्रीदेवी के रूप में उसकी पूजा होने लगी। हारिती की मूर्ति बच्चों के साथ अंकित की जाती है। पांचिक कुबेर का बौद्ध संस्करण है।

हारिती तथा पांचिक का शिल्पांकन एलोरा (गुफा क्र० 8) तथा औरंगाबाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(गुफा क्र० 7) में भी प्राप्त होता है,[36] किंतु उनमें अजंता के अंकन जैसी नयनाभिरामता तथा भव्यता नहीं है।

श्रावस्ती चमत्कार : बौद्ध परंपरा के अनुसार भगवान बुद्ध ने अपने आलोचकों को प्रभावित करने के लिए कई चमत्कार दिखाए थे जिनमें से एक श्रावस्ती नगर में बुद्ध का स्वयं को कई रूपों में प्रकट करना था। सातवीं गुफा में इस घटना का शिल्पांकन है। मध्य में एक कमलासन पर बुद्ध बैठे हैं। इस कमलासन के दंड को नंद और उपनंद नामक दो नाग थामे हुए हैं। इसके दोनों ओर दो बुद्ध प्रतिमाएं तथा अंजलिबद्ध अनुयायी बैठे हैं। ऊपर की ओर आठ पंक्तियों में विभिन्न मुद्राओं में आसनस्थ बुद्ध अंकित हैं।[37] यह कथा 'दिव्यावदान' में विस्तृत रूप से वर्णित है। श्रावस्ती के इस चमत्कार का शिल्पांकन अजंता की छब्बीसवीं गुफा में तथा कान्हेरी और औरंगाबाद की गुफाओं में भी उपलब्ध हुआ है।[38]

प्रलंबपादानस्थ बुद्ध : सोलहवीं गुफा के गर्भगृह में अंकित इस भव्य मूर्ति में बुद्ध दोनों पैर जमीन पर टेके हुए सिंहासन पर बैठे हैं। दोनों ओर सिंह, व्याल तथा मकरमुख बने हैं। बुद्ध के पीछे भव्य चामरधारी बोधिसत्व खड़े हैं। बुद्ध चीवर पहने गंभीर भावभंगिमा में धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में अंकित हैं, जबकि बोधिसत्व किरीट, सर्पाकार केयूर, यष्टि, जड़ाऊ हार प्रभृति आभूषणों से अलंकृत हैं। व्याल तथा मकर का अंकन भी बहुत कुशलता तथा गहराई से हुआ है।

महापरिनिर्वाण : छब्बीसवीं गुफा की बाईं ओर की भित्ति में भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण तथा मारविजय के दृश्यों का भव्य अंकन है। एक विशाल पर्यंक पर बुद्ध दायां हाथ सिरहाने रखे निश्चेष्ट लेटे अंकित हैं। यह प्रतिमा लगभग 23′ 3″ लंबी है। पर्यंक के नीचे शोकग्रस्त अनुयायी बैठे हैं। बुद्ध के सिरहाने तथा पैताने एक एक वृक्ष अंकित है। बुद्ध की मुखमुद्रा तथा वेशभूषा अन्य अंकनों की भांति है। उनके सिरहाने एक तोषक रखा है। पर्यंक के पाए खराद कर बनाए गए प्रतीत होते हैं।

यह दृश्य पावा नगर के समीपस्थ शालवन में भगवान बुद्ध के निर्वाण का है। शालवन के प्रतीक स्वरूप दोनों ओर दो वृक्ष अंकित हैं। नीचे विभिन्न स्थितियों में बैठे भिक्षु-भिक्षुणियां विषाद व्यक्त करते हुए अंकित किए गए हैं। पैताने पर खड़े भिक्षु का अभिज्ञान भगवान बुद्ध के पट्टशिष्य आनंद से किया जाता है। यह प्रतिमा सिर तथा निचले कई स्थानों पर चिटक गई है, किंतु शिल्प की भव्यता अपना पूर्ण प्रभाव डालने में अब भी समर्थ है। बुद्ध के विशाल आध्यात्मिक व्यक्तित्व का प्रतीकात्मक अंकन, उनके चेहरे का शांत निर्वेदभाव तथा भिक्षु-भिक्षुणियों का अवसाद सशक्त रूप में उभर आया है।

मारविजय : मारविजय का शिल्पांकन महापरिनिर्वाण के दृश्य के आगे किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया है। इस दृश्य का संयोजन भी शिल्पी की कुशलता का परिचायक है। मध्य में भूमिस्पर्श करते हुए वज्रासनस्थ भगवान बुद्ध, बाईं ओर मार महाराज, ऊपर दोनों ओर बुद्ध पर झपटते मार के दानवाकार सैनिक तथा निचले भाग में नृत्य-संगीत से बुद्ध के निश्चय को डगमगाने के प्रयास में प्रवृत्त मारकन्याओं का अंकन किया गया है।[39] सभी आकृतियों में हम अनुरूप भावाभिव्यक्ति पाते हैं। बुद्ध की दृढ़ता तथा सौम्यता, मार की निराशा, भयानक मार सैनिकों की रौद्रता तथा आवेश और मारकन्याओं की विविध लालित्यपूर्ण मनोहारी मुद्राएं शिल्पकार के सफल शिल्पांकन की स्तुति में प्रशंसात्मक उद्‌गारों का एक ज्वार सा उठा देती हैं। त्रिभंग मुद्रा में थिरकती नृत्यलीन एक मारकन्या तथा मृदंग बजाती और तालियों से ताल देती अन्य कन्याओं का विशिष्ट हावभाव तथा पूरे ब्योरों के साथ उकेरने में शिल्पकार ने कितनी साधना की होगी, यह प्रत्यक्ष कृति से ही सिद्ध हो जाता है।

नागराज दंपती : गुफा क्र० 19 के बाह्य भाग में बाईं ओर की दीवार में एक नागराज तथा नागरानी का बहुचर्चित तथा प्रशंसित शिल्प खुदा हुआ है। नाग-युगल एक चौकी पर महाराजलीलासन में बैठे अंकित हैं जो प्रतीकात्मक रूप से पर्वत का अंकन है। नागराज के दाईं ओर चामरधारिणी परिचारिका खड़ी है तथा बाईं ओर नागरानी बैठी अंकित है। सात फन वाले नाग के घटाटोप, जड़ाऊ किरीटमुकुट, रत्नकुंडल, मुक्तायज्ञोपवीत, केयूर, कटक तथा ग्रैवेयक से अलंकृत नागराज आसन पर रखे दाहिने पैर के घुटने पर हाथ रखे अंकित है। इस हाथ के खंडित हो जाने से उसमें धारण की हुई वस्तु के विषय में अनुमान करना कठिन है। नागरानी के बाएं हाथ में कमल है। नागरानी एक नागफण, अलंकृत केश भार, कुंडल, हारगुच्छ, कटक तथा पादकटक आदि आभूषणों से सुशोभित है।[40] यह मूर्ति सशक्त भावव्यंजना तथा अंगों के सानुपातिक लक्षण के कारण अजंता के शिल्प के अत्यंत सुंदर उदाहरणों में गिनी जा सकती है।

बुद्ध, राहुल और यशोधरा : इसी गुफा के दाईं ओर कपिलवस्तु में बुद्ध का आगमन तथा राहुल और यशोधरा के समक्ष भिक्षापात्र लेकर खड़े होने का दृश्य अंकित है। चित्रकारों की भांति शिल्पियों को भी इस दृश्य को अंकित करने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है।

अजंता के शिल्पांकनों में से चुनकर सर्वश्रेष्ठ शिल्पों का विवरण यहां प्रस्तुत किया गया है। ये शिल्पांकन अपने मूल रूप में निस्संदेह कई गुने अधिक प्रभावशाली रहे होंगे। शिल्पांकन तथा चित्रांकन में विभिन्न प्रसंगों को सशक्त रूप में प्रस्तुत करने में मानो अजंता के अज्ञातनाम कलाकारों में होड़ सी लग गई थी। कई प्रसंगों का शिल्प तथा चित्र दोनों में अंकन मिलता है और यह निश्चित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करना कठिन हो जाता है कि किसमें कलाकार अधिक सफल हुआ है। हर बार का निरीक्षण यही आभास देता है कि दोनों माध्यमों में कलाकार समान रूप से सफल सिद्ध हुआ है।

गुफा क्र० 1 में उत्कीर्ण सिद्धार्थ के जीवन प्रसंग, गुफा क्र० 7 में अंकित श्रावस्ती का चमत्कार तथा गुफा क्र० 26 में उकेरे मारविजय के दृश्य का क्रमशः गुफा क्र० 16, 2 तथा 1 के तद्विषयक चित्रांकनों से तुलनात्मक अध्ययन करने पर उपर्युक्त मत की पुष्टि ही होती है।

संदर्भ

1. एक कार्ला स्तंभलेख के अनुसार गुहा के मुहार का निर्माण स्वामी नामक एक बढ़ई ने किया था—ल्यूड्र्स : ए लिस्ट आफ ब्राह्मी इंस्क्रिप्शंस, एपिग्राफिया इंडिका, खं० 10; परिशिष्ट, सं० 1092.
2. ऐंशिएंट इंडिया, सं० 15, पृ० 82.
3. शांताराम भालचंद्र देव (संपादक) : ऐक्स्कवेशंस ऐट भोकर्दन, पृ० 186-90, फलक 56, आ० 37-40.
4. दि डान आफ सिविलाइजेशन इन महाराष्ट्र, बंबई, 1975, पृ० 29, आ० 60.
5. सैयद यूसुफ : पैठन ऐक्स्कवेशंस, पृ० 8, फलक 12.
6 ल्यूडर्स : ए लिस्ट आफ ब्राह्मी इंस्क्रिप्शंस, सं० 345.
7. म० न० देशपांडे : सेमिनार आन इंडिया आर्ट हिस्ट्री (मोतीचंद्र द्वारा संपादित), पृ० 16-25.
8. इस अभिलेख का विवेचन षष्ठ अध्याय में किया गया है.
9. पितलखोरा, अमरावती, बमियन इत्यादि स्थलों की कुछ प्राचीन मूर्तियों पर भी मूलतः पलस्तर और रंगकर्म किया गया था—अमलानंद घोष (संपादक) : अजंता म्यूरल्स, पृ० 21, टि० 1.
10. वही, फलक जे.
11. वही, फ० ई.
12. वही, फ० जी.
13. वही, फ० ए-सी.
14. वही फ० एल.
15. वही, फ० आर.
16. देवला मित्र : अजंता, फ० 8 ए.
17. घोष : पूर्वोक्त, फ० ई.
18. वही, फ० जे.
19. वाल्टर स्पिंक : अजंता टु एलोरा, पृ० 50, आकृति 5-6; पृ० 51, आकृति 9 और 11.
20. घोष : पूर्वोक्त, फ० सी० इस स्थान पर साधारणतया विद्याधरों का अंकन पाया जाता है.
21. वही, फ० डी.
22. स्पिंक : पूर्वोक्त, पृ० 28, आ० 10-11, पृ० 62, आ० 1.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

23. देवला मित्र : अजंता, फ० 5 बी.
24. घोष : पूर्वोक्त, पू० ए-सी
25. वही, फ० बी, सी, ई और जे; स्पिंक : पूर्वोक्त, पृ० 48-49, आ० 1-2.
26. वही, पृ० 46-47, घोष : पूर्वोक्त, फ० ऐच.
27. वही, फ० एन; स्पिंक : पूर्वोक्त, पृ० 38-41, आ० 1-5, 8-9.
28. घोष : वही, फ० एम.
29. वही, फ० एम और पी; स्पिंक : पूर्वोक्त, पृ० 57, 59, 62.
30 वही, पृ० 56-60; घोष : पूर्वोक्त, फ० बी, सी, के, पी.
31. वही, फ० जे.
32. वही, फ० के.
33. देवला मित्र : अजंता, फ० 3 ए.
34. घोष : पूर्वोक्त, फ० क्यू.
35. वासुदेवशरण अग्रवाल : प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृ० 54-56.
36. स्पिंक : पूर्वोक्त, पृ० 67, आ० 15-17.
37. घोष : पूर्वोक्त, फ० आर.
38. स्पिंक : पूर्वोक्त, पृ० 28.
39 घोष : पूर्वोक्त, फ० एल.
40. वही, फ० डी.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

6

अभिलेख

अजंता के शैलगृहों में पाए गए अभिलेखों की संख्या काफी बड़ी है। इनमें से अनेक अभिलेख प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से नष्ट अथवा अस्पष्ट हो गए हैं। किंतु जो अभिलेख आज सुवाच्य हैं उनकी संख्या भी कम नहीं है। ये अभिलेख अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। कुछ अभिलेखों में किन्हीं राजवंशों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है तो अन्य अभिलेखों का काल स्थूल रूप से उनकी अक्षररचना के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है। इस कारण इन अभिलेखों से गुफाओं के निर्माण तथा चित्रांकन का कालक्रम निर्धारित करने में बड़ी सहायता मिली है। यदि यह कहा जाए कि इन अभिलेखों के अभाव में अजंता का कालक्रम अनिर्णीत रह जाता तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक दृष्टि से भी ये अभिलेख बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। शैल-गृह क्र० 16 तथा 17 में उत्कीर्ण दो लेखों से वाकाटक वंश की वत्सगुल्म शाखा तथा उसके मांडलिकों एवं अमात्यों के विषय में अन्यत्र अप्राप्त जानकारी उप-लब्ध होती है। इसी प्रकार छब्बीसवीं गुफा में उत्कीर्ण एक लेख अश्मक के इति-हास के बारे में महत्वपूर्ण सूचना देता है।

अजंता के अभिलेखों का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया जा सकता है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से देखा जाए तो हम यह पाते हैं कि अधिकांश लेखों का प्रयोजन किन्हीं व्यक्तियों द्वारा शैलगृहों के अंग विशेष अथवा संपूर्ण शैलगृह के निर्माण और दान का निर्देश करना है। किंतु कुछ अभिलेख शीर्षक अथवा लेबल का काम करते हैं और इनसे संबद्ध चित्रांकनों के अभिज्ञान में महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। कालक्रम की दृष्टि से भी इनका वर्गीकरण संभव है। इस दृष्टि से इन्हें मोटे तौर से दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है: सातवाहनकालीन एवं वाका-टक तथा वाकाटकोत्तरकालीन। तीसरा वर्गीकरण इनकी लेखन शैली के आधार पर किया जा सकता है। कुछ लेख गुफाओं में खोद कर लिखे गए हैं तो कुछ कूची से रंगे गए हैं। हम इन्हें क्रमशः उत्कीर्ण एवं चित्रित लेख कह सकते हैं। अब तक जिन विद्वानों ने इन लेखों के विषय में लिखा है उनमें से अधिकांश ने इस वर्गी-करण का अनुसरण किया है।[1] किंतु उपर्युक्त वर्गीकरणों में निहित कठिनाइयों के कारण इन पृष्ठों में गुफाक्रम का अनुसरण किया गया है जो कई दृष्टियों से सुविधाजनक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुफा क्र० 2

इस गुफा के सभी अभिलेख चित्रों पर लिखे गए हैं। इनमें से अधिकांश लेख बहुत छोटे हैं। कुछ लेख जो अपेक्षाकृत बड़े हैं काफी अस्पष्ट और अवाच्य हो गए हैं तथा वर्तमान स्थिति में उनका प्रयोजन निश्चित करना कठिन है। एक अर्वाचीन कन्नड़ लेख[2] को छोड़कर शेष सभी लेख संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में लिखे गए हैं और संबद्ध चित्रों के समकालीन हैं। किसी समकालीन ऐतिहासिक घटना अथवा तिथि के निर्देश के अभाव में इन लेखों का काल पूर्णतः निर्धारित करना संभव नहीं है, किंतु उत्कीर्ण लेखों से तुलना करने पर प्रतीत होता है कि ये लेख ई० छठी शताब्दी के प्रथमार्ध के आसपास लिखे गए हैं।

लेख क्र० 1[3] मंडप की पिछली दीवार पर चित्रित आसीन बुद्ध प्रतिमा के पद्मासन पर लिखा गया है। यह लेख काफी खंडित हो चुका है। इसका प्रयोजन इस बात का उल्लेख करना है कि यह चित्र शाक्यभिक्षु भदंत बुद्धगुप्त का दान था।[4]

गर्भगृह के द्वार के दाईं ओर अंतराल की पिछली भीत पर बुद्ध के अनेक चित्र अंकित हैं। उनके ऊपरी भाग में लेख क्र० 2 लिखा गया है। इस लेख का प्रयोजन भी एक शाक्य उपासक द्वारा अपने माता-पिता के अनुत्तरज्ञान के लिए इन चित्रों के दान का उल्लेख है। लेख इतना क्षतिग्रस्त हो गया है कि दाता उपासक का नाम एवं लेख में दी गई अन्य जानकारी का पता चलाना संभव नहीं रह गया है।[5]

इस गुफा में लिखित शेष लेख भित्तियों पर चित्रित जातक कथाओं के शीर्षक अथवा वर्णन का कार्य करते हैं।

बरामदे की पिछली भीत पर एक द्वार के दाईं ओर वेत्रासन पर आसीन एक साधु अंकित है। वेत्रासन पर उसके पैरों के दाईं ओर लेख क्र० 3 लिखा गया है जिसका पाठ है 'क्षांतिवादिः'।[6] यह 'क्षांतिवादी' का एक रूप प्रतीत होता है और इसका अर्थ है 'क्षांति' (क्षमा अथवा धैर्य) का उपदेश देने वाला। इसे 'क्षांति पर उपदेश' के अर्थ में भी लिया गया है। जिस दृश्य पर यह लेख लिखा गया है वह क्षांतिवादी जातक का अंकन है तथा वेत्रासन पर आसीन व्यक्ति स्वयं क्षांतिवादी है। इसी चित्र के विभिन्न अंगों पर क्र० 4 एवं 5[7] भी लिखे पाए जाते हैं। ये लेख बहुत खंडित हो चुके हैं, किंतु, जैसाकि ल्यूडर्स ने प्रतिपादित किया है, इन लेखों में वस्तुतः आर्यशूर की 'जातकमाला' के क्षांतिजातक से श्लोक उद्धृत किए गए हैं।[8]

क्र० 6 बरामदे के बाईं ओर देवकुल की दाईं भीत पर चित्रित एक गाय की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकृति पर लिखा हुआ है। लेख में इस गाय का नाम 'सरसुति' (सरस्वती का प्राकृत रूप) दिया गया है।[9]

इसी दीवार पर लिखित क्र० 7 का पाठ 'चैत्रीबलोर्कराजा' है। ल्यूडर्स ने प्रतिपादित किया है कि इष्ट पाठ 'मैत्रीबलराजा' है और मैत्रीबल जातक की ओर संकेत करता है।[10] क्र० 8, जो इसी दीवार पर अंकित है, अत्यंत खंडित हो चुका है, किंतु ल्यूडर्स ने सिद्ध कर दिया है कि इसमें 'जातकमाला' के मैत्रीबल जातक से एक श्लोक उद्धृत है।[11]

गुफा क्र० 4

गुफा क्र० 4 में लगभग बीस वर्ष पूर्व एक भी अभिलेख ज्ञात नहीं था। 1958 के लगभग इस गुफा में उत्कीर्ण एकमात्र ज्ञात लेख प्रकाश में आया। इस लेख की भाषा संस्कृत है तथा साधारणतः इसकी लिपि वत्सगुल्म शाखा के अंतिम ज्ञात वाकाटक राजा हरिषेण के समय के गुफा क्र० 16 और 17 तथा घटोत्कच गुफा में प्राप्त लेखों से सादृश्य रखती है। किंतु इसमें प्रयुक्त 'थ' अक्षर का स्वरूप कुछ परवर्ती होने के कारण इस लेख का काल ई० षष्ठ शताब्दी का पूर्वार्ध माना गया है। दूसरी पंक्ति के कुछ भाग को छोड़कर अभिलेख अच्छी स्थिति में है अथवा सुवाच्य है। यह लेख देवकुल में निर्मित विशाल बुद्ध प्रतिमा की पीठिका पर उत्कीर्ण है तथा इससे ज्ञात होता है कि इस मूर्ति का निर्माण अभयनंदिस्कंदवसु[12] के पुत्र कार्वटियागौत्री विहारस्वामी (विहार का निर्माता) माथुर[13] ने करवाया था और इसे दान किया था। अंत में प्रचलित महायान-फार्मूले का अनुसरण करते हुए कहा गया है कि यह दान माता-पिता तथा सौतेली मां के पुण्य तथा समस्त प्राणियों द्वारा अनुत्तरज्ञान की प्राप्ति के लिए दिया गया था।

इस लेख से इस विहार के निर्माणकाल संबंधी विवाद के समाधान में सहायता मिलती है। इस लेख की प्राप्ति के पूर्व इस गुफा का काल विभिन्न विद्वानों ने ई० छठी और आठवीं शताब्दियों के बीच निर्धारित किया था। किंतु प्रस्तुत लेख से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि इस शैलगृह का निर्माण छठी शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ था।[14]

गुफा क्र० 6

इस गुफा में केवल एक लेख प्राप्त हुआ है। यह ऊपरी मंजिल पर बाईं ओर के गलियारे में प्रथम कक्ष के द्वार के दाईं ओर चित्रित है। यह लेख भी संस्कृत में है और इसकी लिपि से इस गुफा के फर्ग्युसन और बर्जेस द्वारा निर्धारित निर्माण-काल (ई० छठी शताब्दी) का समर्थन होता है। इस लेख का कुछ भाग अस्पष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं अवाच्य हो गया है, तथापि इसका प्रयोजन यह निर्देश करना प्रतीत होता है कि इस गुफा का दान शाक्यभिक्षु तरणकीर्तन (?) ने किया था।[15]

गुफा क्र० 7

इस गुफा में अब तक सोलह लेख प्राप्त हुए हैं और ये सभी चित्रित हैं। अधिकांश लेख कम या अधिक खंडित हैं और कुछ तो इतने अवाच्य हो गए हैं कि उनसे उनका प्रयोजन ही स्पष्ट नहीं होता। सभी लेखों की भाषा संस्कृत है तथा लिपि के आधार पर उनका काल ई० पांचवीं अथवा छठी शताब्दी माना गया है। ये सभी लेख उत्तरकालीन चित्रों पर लिखे गए हैं और उनके कालनिर्धारण में सहायक हैं। इनमें से जो लेख अब तक कुछ सुरक्षित हैं तथा पढ़े जा सके हैं उन सबका प्रयोजन शाक्यभिक्षुओं एवं उपासकों द्वारा दिए गए दान का उल्लेख करना है। जो लेख अधिक खंडित हो जाने के कारण पूर्णतया अथवा अधिकांशतः अवाच्य हो गए हैं उनका प्रयोजन भी संभवतः दाननिर्देश ही था। इन लेखों में निर्दिष्ट दाताओं में संघप्रिय, धर्मसेन, भद्रसेन तथा गोपीपुत्र नामक शाक्यभिक्षुओं एवं जसदेव नामक उपासक का समावेश है। छः अन्य शाक्यभिक्षुओं के नाम अवाच्य हो गए हैं। इनमें से कुछ शाक्यभिक्षुओं के लिए भदंत और कुछ के लिए आचार्य भदंत अथवा भदंताचार्य उपाधि का प्रयोग किया गया है तो कुछ शाक्यभिक्षुओं का उल्लेख बिना किसी उपाधि के किया गया है।[16]

गुफा क्र० 10

इस गुफा में पाए जाने वाले लेखों की संख्या अन्य किसी भी गुफा में प्राप्त लेखों से अधिक है। बर्जेस एवं भगवानलाल इंद्रजी ने लगभग इक्कीस लेखों की चर्चा की है और दो लेख हाल ही में उपलब्ध हुए हैं। इनमें से कुछ लेख कम या अधिक खंडित हैं, किंतु कुल मिलाकर इनकी स्थिति गुफा क्र० 9 में प्राप्त लेखों की तुलना में कहीं अधिक अच्छी है। दो लेख उत्कीर्ण हैं तथा शेष सभी चित्रित। दोनों उत्कीर्ण लेख और दो चित्रित लेख अन्य लेखों की तुलना में बहुत प्राचीन हैं तथा अक्षररचना के आधार पर उनका काल ई० पू० द्वितीय शताब्दी के मध्य भाग के आसपास माना गया है। बर्जेस और भगवानलाल इंद्रजी ने इनमें से एक लेख की तुलना प्रथम सातकर्णि के लेखों से की है[17] जब कि एन० पी० चक्रवर्ती इसकी तुलना भरहुत के लेखों से करते हैं।[18] बर्जेस और इंद्रजी आंध्र-सातवाहन काल का आरंभ ई० पू० द्वितीय शताब्दी में मानते थे और इस कारण उन्होंने इस तथा ऐसे अन्य लेखों का काल भी इसी के आसपास निर्धारित किया। किंतु, जैसा कि द्वितीय अध्याय में प्रतिपादित किया जा चुका है, सातवाहन काल का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आरंभ ई० पू० प्रथम शताब्दी के मध्य के आसपास मानना अधिक तर्कसंगत है। इस प्रकार इनमें से अधिकांश लेखों का काल भी ई० पू० प्रथम शताब्दी मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। ये लेख ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हैं तथा इनकी भाषा प्राकृत है इनमें से दोनों उत्कीर्ण और एक चित्रित अभिलेख दानपरक हैं और एक चित्रित लेख चित्र में अंकित एक दृश्य का वर्णन करता है।

उत्कीर्ण लेख क्र० 1 अजंता का सबसे प्राचीन लेख माना जाता है। यह चैत्यगृह के बाहरी भाग में चैत्यगवाक्ष के बाईं ओर उत्कीर्ण है। इस लेख में कहा गया है कि इस चैत्यगृह का गृहमुख (सामने का भाग) वासिष्ठी पुत्र कटहादि का दान था।[19] कटहादि नाम कुछ विलक्षण प्रतीत होता है। यदि इसे कुलनाम अथवा स्थान नाम से निष्पन्न माना जाए तो इसका अर्थ होगा कि दाता के मातृपरक एवं कुल अथवा अभिजन (मूल निवास) के नाम तो दिए हैं, किंतु उसका व्यक्तिनाम देने से रह गया है। व्यक्तिनाम का न दिया जाना कुछ विलक्षण सा लगता है।

दूसरा उत्कीर्ण लेख भी लगभग इसी काल का है और वह मंडप के बाईं ओर वाले गलियारे की दीवार पर पहली और तीसरी डाटों के बिचले स्थान के ठीक नीचे उत्कीर्ण है। इसकी लिपि ब्राह्मी तथा भाषा प्राकृत है। इस लेख के अक्षरों के पूर्ववर्ती लेख की अपेक्षा अधिक घुमावदार होने से यह लेख उसकी अपेक्षा कुछ बाद का प्रतीत होता है। इस लेख का प्रयोजन यह निर्देश करना है कि इस चैत्यगृह की भीत का निर्माण तथा दान बाहड (संभवतः वर्तमान बहाल, चालीसगांव तालुका, जलगांव जिला, महाराष्ट्र) के निवासी कन्हक (कृष्णक) ने किया था।[20] यह लेख पहले मिट्टी के मोटे पलस्तर के नीचे छिपा हुआ था और पलस्तर हटाने पर इसका पता चला। जिस भीत पर यह लेख उत्कीर्ण है वह काफी चिकनी है और इससे यह प्रतीत होता है कि मूलतः इन भित्तियों को चित्रों से अलंकृत करने का विचार नहीं था।

इसी गुफा के तेरहवें स्तंभ के सामने वाले भाग पर सात फुट, पांच इंच की ऊंचाई पर एक आधुनिक लेख खरोंचा हुआ मिलता है जिसकी संक्षिप्त चर्चा यहां अप्रासंगिक न होगी। यह लेख अंगरेजी में है और इसमें अठाइसवीं घुड़-सवार सेना, जान स्मिथ तथा 28 अप्रैल 1819 का निर्देश पाया जाता है। जान स्मिथ स्पष्ट ही मद्रास रेजीमेंट के उन सैनिक अधिकारियों में से एक था जिन्होंने 1819 में अजंता की गुफाएं खोज निकाली थीं। अजंता की खोज के विषय में लिखे गए इस लेख से न केवल अजंता की खोज के संबंध में जानकारी मिलती है, अपितु इससे यह भी सूचित होता है कि जब आधुनिक काल में सर्वप्रथम ये गुफाएं प्रकाश में आईं तब इनकी फर्श लगभग एक सहस्राब्दी से एकत्रित गंदगी की काफी ऊंची परत से ढकी हुई थी। इस प्रकार आधुनिक होते हुए भी यह लेख अजंता के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास की जानकारी की दृष्टि से कम महत्व का नहीं है।[21]

दो प्राचीन चित्रित लेखों में से एक दानविषयक है और दूसरा चित्रित दृश्य से संबंधित है। दोनों लेख ब्राह्मी लिपि एवं प्राकृत भाषा में लिखे गए हैं और इनका काल इसी चैत्यगृह में उत्कीर्ण पूर्वोक्त दो उत्कीर्ण लेखों के समान है। पहला लेख गृहमुख की कमानी तथा पहली डाट के मध्य में तीसरे धरण के भूरे शिलातल पर सफेद रंग से चित्रित है। इस लेख के अनुसार यह प्रासाद (चैत्यगृह) प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठण, औरंगाबाद जिला, महाराष्ट्र) के निवासी प्रव्रजित (संन्यासी) धर्मदेव का दान था।[22] पूर्वचर्चित उत्कीर्ण लेखों के अनुसार इस गुफा के गृहमुख एवं भित्ति का दान यथाक्रम वासिष्ठी पुत्र कटहादि तथा कन्हक ने किया था। अत: यह नहीं कहा जा सकता कि इस चैत्यगृह के निर्माण से संबंधित सभी कार्य धर्मदेव के दान से संपन्न हुआ था। यह मानना अधिक समीचीन होगा कि गुफा के निर्माण के पश्चात उसकी संपूर्ति एवं परिसज्जा का कार्य धर्मदेव ने कराया था।

दूसरा चित्रित लेख तीसरे स्तंभ के सामने बाईं दीवार पर इस गुफा में प्राप्त एक अतिप्राचीन चित्र के एक भाग पर लिखा गया है। यह लेख इतना खंडित हो गया है कि इसके प्रयोजन का पता लगाना असंभव है। इसके सुरक्षित भाग में यतिपति एवं यतियों के पूर्व (प्रथम) देव भगवान (बुद्ध) का उल्लेख पाया जाता है। संप्रति इतना ही कहा जा सकता है कि इस लेख में भगवान बुद्ध से संबंधित चित्रांकित किसी घटनाविशेष की ओर संकेत किया गया है।[23]

इस गुफा के शेष सभी लेख उत्तरकालीन हैं और उनका काल ईस्वी पांचवीं-छठी शताब्दी माना गया है। ये लेख चित्रित हैं और इनमें से अधिकांश स्तंभों पर लिखे हुए पाए जाते हैं तथा उनका संबंध बुद्ध के चित्रों से है। इनमें से कुछ लेखों का संबंध चित्रित दृश्यों के साथ है तो कुछ अन्य लेखों में दान का वर्णन है। दान-परक लेखों का फार्मूला गुफा क्र० 9 के इसी प्रकार के लेखों के सदृश्य है। इन लेखों में शाक्यभिक्षु द्राढधर्म (संस्कृत दृढधर्म), सुदत्त, संघगुप्त, शीलभद्र, केशव, बुद्धसोम, बुद्धनाग, द्रोणवर्मा तथा बुद्धसेन और सचिव के दान का निर्देश है। अंतिम दाता को, जिसका नाम सुरक्षित नहीं है, छोड़कर अन्य सभी बौद्ध भिक्षु थे तथा उनमें से बुद्धनाग को छोड़कर सभी के लिए भदंत शब्द का प्रयोग किया गया है। सुदत्त और शीलभद्र के अतिरिक्त सभी शाक्यभिक्षु शब्द से वर्णित हैं तथा बुद्धसेन के लिए शाक्यभिक्षु और भदंत के अतिरिक्त आचार्य उपाधि भी प्रयुक्त मिलती है। बुद्धसेन का उल्लेख जिस लेख में पाया जाता है उस लेख का प्रारंभ एक खंडित श्लोक के साथ होता है जिसमें जिन (बुद्ध) के बिंब (मूर्ति) के निर्माण की महिमा का वर्णन किया गया है।[24] एक लेख में सम्यक् संबुद्ध विपश्वी के चित्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का उल्लेख है और उसे चेतिक (चैत्यक) संप्रदाय के अनुयायी परिक का दान कहा गया है। विपश्वी एक पूर्वबुद्ध का नाम है। इस लेख से पूर्वबुद्धों की पूजा तथा चैत्यक संप्रदाय की लोकप्रियता की सूचना मिलती है।[25]

गुफा क्र० 11

इस गुफा में जब तक केवल एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह मंडप में गर्भगृह के द्वार के दाईं ओर आसीन बुद्ध के सिंहासन के नीचे उनके पैरों के बीच चित्रित है। यह गहरे हरे रंग से चित्रित सतह पर काले रंग से लिखा गया है। इस लेख की लिपि अजंता में प्राप्त वाकाटक लेखों के सदृश है जिससे इसका काल ईस्वी पांचवीं शताब्दी का उत्तरार्ध प्रतीत होता है। इस काल के अन्य लेखों की भांति यह लेख भी संस्कृत में है। लेख का उद्देश्य इस बात का निर्देश करना है कि इस चित्रित प्रतिमा का दान उपासक मित्र धर्म से प्रसूत पुण्य दाता के माता-पिता तथा समस्त प्राणियों को प्राप्त होने की कामना व्यक्त की गई है।[26]

गुफा क्र० 12

इस गुफा में भी अब तक केवल एक लेख मिला है। यह लेख दाहिने सिरे के कक्ष के द्वार के बाईं ओर उत्कीर्ण है। इसकी भाषा प्राकृत एवं लिपि पूर्वसातवाहन-कालीन ब्राह्मी है। इसका प्रयोजन अपवरक (कक्ष) सहित इस गुफा का दान घनामदड नामक बनिये द्वारा किया गया था, इस बात का उल्लेख करना है।[27]

गुफा क्र० 16

इस गुफा में प्राप्त लेख मोटे तौर से दो भागों में विभक्त किए जा सकते हैं : चित्रित और उत्कीर्ण। ये सभी लेख संस्कृत में हैं और इनकी लिपि ईस्वी पांचवीं शती के अंत अथवा छठी शताब्दी के प्रारंभ की है। वाकाटक नृपति हरिषेण के अमात्य के एक लेख की प्राप्ति से भी इस काल का समर्थन होता है।

इस गुफा की बाईं भित्ति पर आसीन बुद्धों की एक के ऊपर एक चित्रित दो पंक्तियां हैं। इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक पंक्ति में मूलतः आठ मानुषी बुद्धों का अंकन था, किंतु अब दोनों पंक्तियों में केवल चार चार प्रतिकृतियां सुरक्षित हैं। चित्रित लेखों में से तीन दानविषयक हैं, जिनमें से दो तीसरी कोठरी के दरवाजे के ऊपर तथा एक बुद्धों की ऊपरी पंक्ति में बाएं से तीसरे बुद्ध के आसन के नीचे लिखे हुए हैं। निचली पंक्ति के प्रथम और द्वितीय तथा तृतीय और चतुर्थ बुद्धों के नीचे लिखित दो लेखों में शाक्यभिक्षु भदंत धर्मदत्त तथा ऊपरी पंक्ति की तीसरी प्रतिमा के नीचे चित्रित लेख में शाक्यभिक्षु भदंत बापुक के दान का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्देश मिलता है। निचली पंक्ति में सुरक्षित चारों बुद्ध चित्रों की पीठिकाओं पर धर्मदत्त तथा ऊपरी पंक्ति के चारों बुद्धों के कमलासन की एक कली में बापुक के दान का निर्देश करने वाले लेख पाए जाते हैं।[28] इसी भीत पर पीले अक्षरों में दो अन्य लेख चित्रित हैं किंतु वर्तमान स्थिति में उनका वाचन संभव नहीं है।

बरामदे की पिछली भित्ति पर प्रवेशद्वार के दाईं ओर चित्रित प्रतिमाओं पर कुछ नाम काले अक्षरों में चित्रित दृष्टिगोचर होते हैं। यह दृश्य विश्वंतर जातक का है। वैश्वंतर और इंद्र के नाम स्पष्ट हैं और तीसरा नाम, जिसका केवल प्रथम अक्षर सुरक्षित है, संभवत: युजक (पालि जूजक) था। ये लेख संबद्ध दृश्य की पहचान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। आर्यशूर की 'जातकमाला' में लोभी ब्राह्मण (युजक अथवा जूजक) का नाम नहीं दिया गया है, जिससे यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि इस गुफा में चित्रित कथानक पालि जातक से मिलते-जुलते किसी भिन्न संस्करण पर आधारित हैं। इस संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि जहां आर्यशूर ने राजा का नाम विश्वंतर दिया है वहां प्रस्तुत लेख में उसका नाम वैश्वंतर पाया जाता है। इस लेख से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पालि संस्करण में उल्लिखित वेस्स (संस्कृत वैश्य) शब्द से इस नाम की उत्पत्ति काल्पनिक है।[29]

इस गुफा में केवल दो लेख उत्कीर्ण हैं जिनमें एक बरामदे के बाहर बाईं ओर की दीवार के एक सिरे पर उकेरा गया है। यह लेख पेटिका शीर्षक लिपि में लिखा गया है तथा इसकी भाषा संस्कृत है। संपूर्ण लेख छंदोबद्ध है। लेख का एक बड़ा भाग अस्पष्ट है जिसके परिणामस्वरूप इस लेख में दी गई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी से पाठक वंचित हो गए हैं। किंतु अवशिष्ट भाग भी ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। यह लेख वत्सगुल्म शाखा के अंतिम वाकाटक नरेश हरिषेण के काल का है तथा इसका प्रयोजन इस तथ्य का निर्देश करना है कि उसके अमात्य वराहदेव ने स्तंभों, चित्रावलि एवं मूर्तियों से अलंकृत यह शैलगृह बौद्ध संघ को दान दिया था। यद्यपि लेख में तिथि नहीं दी गई है, तथापि हरिषेण के निर्देश के आधार पर इसका काल ई० 500 के आसपास मानना समीचीन है। प्रस्तुत लेख के दो भाग हैं। प्रथम भाग में आरंभ के बीस श्लोक हैं जिनमें वाकाटकों की वत्सगुल्म शाखा की वंशावलि दी गई है और प्रसंगवश देवसेन और उसके पुत्र हरिषेण के अमात्यों की चर्चा की गई है। दूसरे भाग में दान का वर्णन है। वाकाटक वंश के संबंध में जो जानकारी मिलती है उसकी चर्चा द्वितीय अध्याय में वाकाटक इतिहास के संदर्भ में की जा चुकी है। किंतु वाकाटक अमात्यों की चर्चा करना यहां अप्रासंगिक न होगा। श्लोक 12-16 में देवसेन के अमात्य हस्तिभोज का वर्णन मिलता है। ये श्लोक अत्यधिक खंडित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो गए हैं। किंतु अवशिष्ट भाग में उसके शारीरिक गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसका वक्षस्थल विशाल और उभरा हुआ था, नेत्र कमल के सदृश थे तथा वह अत्यंत गुणी विनीत और लोकहितकारी था। उसने शत्रुओं का नाश किया था। लोकहितैषी और पालनकर्ता होने के कारण वह प्रजाजनों को माता-पिता तथा मित्रों के समान प्रिय था और वे उसके पास सदा निश्शंक भाव से जा सकते थे। उसे राज्यभार सौंप कर देवसेन विषयभोगों में लीन रहता था।[30] हस्तिभोज के पश्चात उसका पुत्र वराहदेव देवसेन के पुत्र हरिषेण के अमात्य के पद पर विराजमान हुआ। उसके विषय में कहा गया है कि वह दातृत्व, क्षमा, औदार्य इत्यादि गुणों से अलंकृत था, उसने न्यायपूर्वक प्रजापालन किया तथा वह राजा और प्रजा दोनों का प्रिय था। जीवन, यौवन, ऐश्वर्य एवं सुख को नश्वर मान कर उसने अपने माता-पिता के पुण्योपार्जन के निमित्त यतिश्रेष्ठों के लिए इस वैश्म (गुहा) का निर्माण कराया। चौबीसवें श्लोक में इस वैश्म का कुछ विस्तृत वर्णन मिलता है। वह गवाक्षों, द्वारों, चित्रावली, वेदिका, अप्सराओं की मूर्ति इत्यादि से अलंकृत तथा मनोहर स्तंभों पर आधारित था। उसके भीतर चैत्यमंदिर था और निकट ही विपुल जलाशय एवं नागराज की गुफा थी। यह वर्णन सोलहवीं गुफा पर पूरी तरह लागू होता है। तीसवें श्लोक में कहा गया है कि वराहदेव ने यह गुफा संघ को निवेदित की तथा अगले दो श्लोकों में रत्नत्रया (बुद्ध, धर्म और संघ) को अर्पित इस गुफा के सदा टिके रहने की कामना व्यक्त की गई है।[31]

दूसरा लेख दाईं दीवार पर दूसरे एवं तीसरे कक्ष के बीच फर्श से 4 फीट 9 इंच की ऊंचाई पर एक खंडित चित्र पर उत्कीर्ण है। यह दो चित्रकूटों के बीच में उकेरा गया है जिनमें से एक (बाएं) में बुद्ध को भोजन देती हुई सुजाता का अंकन है और दूसरे में पाठशाला जाते हुए बालक सिद्धार्थ का। लेख संस्कृत भाषा में है और लिपि ईस्वी पांचवीं शती के अंत अथवा छठी शताब्दी के आरंभ की है। लेख में सूत्रधार-युगंधर का उल्लेख है जो स्पष्टतः इस एवं संभवतः कुछ अन्य समकालीन शीलगृहों के समायोजन और निर्माण से संबंधित था। सूत्रधार का उल्लेख अजंता के अन्य किसी भी लेख में प्राप्त नहीं होता और इस दृष्टि से प्रस्तुत लेख का विशेष महत्व है।[32]

गुफा क्र० 17

इस गुफा में चार चित्रित एवं एक उत्कीर्ण लेख प्रकाश में आए हैं। चित्रित लेखों में से दो चित्रांकनों के शीर्षक हैं। इनमें से एक बरामदे के दाएं सिरे पर एक यक्ष प्रतिमा के नीचे चित्रित है। इस लेख से ज्ञात होता है कि चित्रांकित यक्ष मणि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भद्र है जो बौद्ध और जैन परंपरा में अत्यंत प्रसिद्ध है। दूसरा लेख मंडप के सामने वाले गलियारे के दाएं सिरे पर कुछ चित्रित प्रतिमाओं पर लिखा गया है और इसमें दो बार शिबिराजा तथा इंद्र का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि संबद्ध चित्रांकन शिबि जातक का है। शेष दो चित्रित लेखों का अर्थ स्पष्ट नहीं है।[33] इनमें से प्रथम लेख का काल ई० छठी शताब्दी तथा द्वितीय लेख का काल ई० 500 के आसपास है। तृतीय और चतुर्थ लेख का काल चक्रवर्ती ने ई० सातवीं शताब्दी के आसपास माना है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस गुफा का निर्माण यद्यपि ई० 500 के आसपास हो चुका था, तथापि इसमें चित्रण का कार्य ई० सातवीं शताब्दी तक चलता रहा।

बरामदे के एक ओर दीवार पर उनतीस पंक्तियों का एक विशाल लेख उत्कीर्ण है। इस लेख का एक बड़ा भाग अस्पष्ट हो गया है, किंतु इसका सारांश समझना कठिन नहीं है। यह सोलहवीं गुफा के उत्कीर्ण लेख की भांति पेटिका शीर्षक लिपि में लिखा गया है और आद्योपांत संस्कृत छंदों में रचित है। इसे वाकाटक सम्राट हरिषेण के एक मांडलिक ने उत्कीर्ण कराया था जिससे स्पष्ट है कि यह ई० 500 के आसपास का है। लेख का प्रारंभ संसाररूपी वृक्ष के लिए वज्र के समान भगवान बुद्ध के नमन के साथ होता है। इसके पश्चात विहार-दाता की वंशावलि दी गई है। इस वंश के मूल पुरुष का नाम नष्ट हो गया है। उसके पश्चात धृतराष्ट्र, हरिसांब, शौरिसांब, उपेंद्रगुप्त, प्रथम काच, द्वितीय काच, नीलदास, कृष्णदास तथा रविसांब का उल्लेख आता है। इनमें से धृतराष्ट्र, शौरिसांब, प्रथम काच, नीलदास, कृष्णदास तथा रविसांब स्पष्टतः उनके पूर्व निर्दिष्ट व्यक्तियों के पुत्र कहे गए हैं। लेख के सुरक्षित भाग में हरिसांब उपेंद्रगुप्त, भिक्षुदास तथा द्वितीय काच के विषय में ऐसा कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता, किंतु यह अनुमान अनुचित न होगा कि वे तथा उनके पूर्ववर्ती सदस्य भी पुत्र और पिता के रूप में परस्पर संबद्ध थे। रविसांब के बड़े भाई का नाम भी लेख में दिया गया था जो अब नष्ट हो गया है। उपलब्ध वर्णन से प्रतीत होता है कि ये सभी मांडलिक शासक थे। कृष्णदास के पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र शासक बना। दोनों भाइयों ने मिलकर अश्मक आदि देशों पर विजय प्राप्त की। वे दोनों सानंद एकत्र रहते थे जिससे उनका पारस्परिक सौहार्द और यश वृद्धि को प्राप्त होता गया। कुछ समय पश्चात रविसांब की अकाल मृत्यु हो गई जिससे उसका बड़ा भाई अत्यंत दुखी हुआ। मन में संसार की अनित्यता स्पष्ट हो जाने पर उसने धार्मिक वृत्ति से अपना समय व्यतीत करना आरंभ किया। वह विद्या, त्याग, दया, प्रमोद, मैत्री, क्षमा, पराक्रम, बुद्धिमत्ता इत्यादि गुणों से संपन्न महात्माओं की सेवा करने लगा। उसने उच्च चरित्र और विशुद्ध वृत्ति वाले महापुरुषों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने आचरण से अनुसरण किया। उसने याचकों को इतना धन दिया कि वे अन्य याचकों की कामना पूर्ण कर उसकी कीर्ति बढ़ाने लगे। उसने पृथ्वी को स्तूपों और विहारों से अलंकृत किया और दान देकर याचकों को आनंदित किया। इसके पश्चात उसने हरिषेण के राजत्व काल में तीव्र गति से उड़ते हुए मेघों से अलंकृत सह्यपाद पर भगवान बुद्ध के चैत्यमंदिर से युक्त एकाश्मक (एक पत्थर का) मंडप खुदवाया। उसके निकट ही उसने पर्याप्त, उत्तम, हलके, स्वच्छ और शीतल जल का एक विशाल कुंड बनवाया। उसके पश्चिम में उसी पर्वत पर उसने एक विशाल गंधकुटी (चैत्यगृह) भी खुदवाई। अंतिम दो श्लोकों में दाता को भगवान बुद्ध के ध्यान से होने वाली सिद्धि के लिए अभीष्ट संपूर्ण कल्याणपरंपरा की प्राप्ति तथा सूर्य जब तक अपनी किरणों से अंधकार का विनाश करता रहे तब तक मंडप के बने रहने की कामना व्यक्त की गई है।[34] इस लेख से यह स्पष्ट है कि गुफा क्र० 17, उसके समीपवर्ती कुंड तथा गुफा क्र० 19 का निर्माण इस नष्टनाम राजा ने कराया था।

गुफा क्र० 20

इस गुफा में केवल दो लेख—एक चित्रित और एक उत्कीर्ण—मिले हैं। चित्रित लेख बाईं भीत पर बुद्ध प्रतिमा से युक्त देवकुलिका तथा दूसरे कक्ष के द्वार के बीच में लाल रंग से लिखा हुआ है। किंतु वह इतना क्षतिग्रस्त हो चुका है कि उसका प्रयोजन निश्चित करना कठिन है।

उत्कीर्ण लेख बरामदे के बाएं सिरे पर एक कुड्यस्तंभ (भीत से निकला हुआ स्तंभ) पर उकेरा गया है। इसके अक्षर शैलगृह क्र० 16 और 17 के उत्कीर्ण लेखों के सदृश हैं और भाषा संस्कृत। यह लेख बहुत अधिक खंडित हो चुका है, तथापि इसका उद्देश्य यह निर्देश करना है कि इस मंडप का निर्माण उपेंद्र नामक एक व्यक्ति ने कराया था। लेख में उसके पिता तथा पितामह के नाम दिए गए थे, किंतु वे अब नष्ट हो गए हैं।[35]

गुफा क्र० 21

इस गुफा में कहीं कोई चित्र नहीं है, किंतु बरामदे की पिछली दीवार पर दरवाजे और खिड़की के बीच में लाल रंग से एक लेख तथा बड़े अक्षरों की कई पंक्तियां चित्रित पाई जाती हैं। दाईं ओर भी पांच पंक्तियों का ऐसा ही एक लेख कोने में चित्रित है। यह लेख दीवार पर किए गए पलस्तर पर लिखे गए हैं और बहुत क्षतिग्रस्त हो चुके हैं। किंतु चौथी पंक्ति में संभवतः दशरथ मंडप का उल्लेख है। इस भीत पर एक अन्य लेख के चिह्न भी पाए जाते हैं।[36]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन लेखों से प्रतीत होता है कि मूलतः इस शैलगृह को भी चित्रित करने का विचार था और चित्रकारों के मार्गदर्शन के लिए लाल अक्षरों में विभिन्न दृश्यों के शीर्षक दिए गए थे।

गुफा क्र० 22

इस गुफा में अब तक प्राप्त सभी लेख चित्रित हैं और ये सभी संस्कृत में हैं। अक्षररचना की दृष्टि से इनका काल ई० छठी शताब्दी का पूर्वार्ध प्रतीत होता है। देवकुल की बाईं भीत पर आठ बुद्धों का चित्रण किया गया है जो अपने विशिष्ट बोधिवृक्षों के नीचे आसीन हैं। उनके नीचे उनके नाम दिए गए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि ये सात सर्वज्ञ बुद्धों (विपश्वी, शिखी, विश्वभू, क्रकुच्छंद, कनकमुनि, कश्यप तथा शाक्यमुनि) तथा भावी बुद्ध मैत्रेय के चित्र हैं। इन बुद्ध प्रतिमाओं के ऊपर और प्रत्येक बोधिवृक्ष के शीर्ष पर इन बोधिवृक्षों के नाम चित्रित किए गए थे, जिनमें से अब केवल चार नाम वाच्य हैं: शिखी के ऊपर पुंडरीक, क्रकुच्छंद के ऊपर शिरीष, कनकमुनि के ऊपर उदुंबर और कश्यप के ऊपर न्यग्रोध। इन बुद्ध प्रतिमाओं के नीचे एक दो पंक्तियों का लेख चित्रित है कि जो अब केवल आंशिक रूप से सुरक्षित है। इस लेख से ज्ञात होता है कि इस बुद्धावलि का दान एक महायानी शाक्यभिक्षु ने किया था जिसका नाम अब अवाच्य हो गया है। लेख के अंत में जिन (बुद्ध) बिंब (प्रतिमा) के निर्माण की महिमा का वर्णन-परक एक श्लोक पाया जाता है। इस श्लोक में कहा गया है कि जो जिनबिंब का निर्माण कराते हैं वे सौरूप्य, सौभाग्य, सद्गुण, ठीक ठीक निर्णय लेने की क्षमता और अंतर्दृष्टि को प्राप्त करते हैं तथा नयनाभिराभ बनते हैं।[37]

एक और लेख एक बुद्ध प्रतिमा के सिंहासन के नीचे दोनों ओर गहरी हरी सतह पर सफेद रंग से चित्रित है। यह मूर्ति मंडप की पिछली दीवार पर शिला काटकर बनाई गई है और मूलतः रंगी हुई थी। लेख दो पंक्तियों में है। दोनों पंक्तियों का प्रारंभिक भाग पादपीठ के बाईं ओर और शेष भाग पादपीठ के दाईं ओर लिखा गया है। इस लेख से विदित होता है कि शाक्यभिक्षु भदंत धर्मदेव ने इस प्रतिमा का दान किया था।[38]

गुफा क्र० 26

इस गुफा में चार लेख उत्कीर्ण पाए जाते हैं जो सभी संस्कृत में हैं। बर्जेस ने इन लेखों को ईस्वी छठी शताब्दी के उत्तरार्ध अथवा सातवीं शताब्दी के प्रारंभ का माना था,[39] किंतु अक्षररचना की दृष्टि से इनका वास्तविक काल ई० पांचवीं शताब्दी का उत्तरार्ध अथवा छठी शताब्दी का प्रारंभ प्रतीत होता है।[40] इनमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से एक लेख गृहमुख की पिछली दीवार पर दाहिनी ओर के दरवाजे के ऊपर उत्कीर्ण है। यह इस गुफा में प्राप्त सबसे बड़ा लेख है। लेख का प्रयोजन बौद्ध भिक्षु बुद्धभद्र द्वारा इस चैत्यगृह के निर्माण का निर्देश करना है। प्रथम दो श्लोकों में भगवान बुद्ध की स्तुति की गई है तथा तृतीय एवं चतुर्थ श्लोकों में बुद्धनमस्कार और बुद्धस्तवन की महिमा का गान किया गया है। पांचवें श्लोक में शिव और कृष्ण इत्यादि हिंदू देवों की तुलना में बुद्ध की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। छठे श्लोक में मुनि स्थविर अचल द्वारा शास्ता (बुद्ध) के शैलगृह के निर्माण कराए जाने का उल्लेख है। सातवें श्लोक में बोधिसत्वों तथा सांसारिक सुखों एवं मोक्ष के इच्छुक वैभवशाली लोगों द्वारा इस प्रकार के वास्तु के निर्माण की वांछनीयता प्रतिपादित की गई है। आठवें श्लोक में कहा गया है कि जब तक पृथ्वी पर निर्मित वास्तु विद्यमान रहता है तब तक देही स्वर्ग में सुखोपभोग करता है और इसलिए पर्वतों पर चंद्र और सूर्य जितने स्थायी वास्तु का निर्माण कराना चाहिए। श्लोक 9-13 में वर्णन है कि अपने घनिष्ठ मित्र भव्विराज तथा अपने माता-पिता के सम्मान में भिक्षु बुद्धभद्र ने इस सुगतालय (बुद्धमंदिर) का निर्माण कराया था। भव्विराज अश्मकनरेश का मंत्री था तथा बृहस्पतिनीति और शुक्रनीति, सामाजिक नियम इत्यादि में पारंगत था। उसके देहांत के पश्चात उसका पुत्र देवराज अपने गुणों से अश्मक के नृपति के मंत्री के पद पर आसीन हुआ। इस सुगतालय का निर्माणकार्य भिक्षु धर्मदत्त तथा बुद्धभद्र के शिष्य भद्र-बंधु के निर्देशन में संपन्न हुआ था। पंद्रहवें श्लोक में कामना की गई है कि इस कार्य का पुण्य इन लोगों तथा समस्त जगत को बोधिरूपी महाफल की प्राप्ति में सहायक हो। सोलहवें श्लोक में बुद्धभद्र का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह बुद्धशासन में पारंगत था तथा उसने बहुत कम आयु में भिक्षु धर्म स्वीकार कर लिया था। सत्रहवां श्लोक इतना खंडित हो गया है कि उसका अर्थ अस्पष्ट है। अगले श्लोक में इस वेश्म को पक्षियों के कलरव तथा वानरों की ध्वनि से युक्त तथा योगीश्वरों द्वारा अध्यासित कहा गया है। अंतिम श्लोक के अनुसार इस प्रशस्ति की रचना भी उसी आचार्य (बुद्धभद्र) ने की थी।

उपर्युक्त लेख से यह विदित होता है कि इस शैलगृह का निर्माण भिक्षु बुद्धभद्र ने कराया था। छठे श्लोक से पता चलता है कि स्थविर अचल ने इसी प्रकार का एक शैलगृह बनवाया था। इस अचल का उल्लेख चीनी यात्री ह्वेन त्सांग ने अ-चे-लो नाम से किया है। लेख में अश्मक नरेश का नाम नहीं दिया गया है। किंतु सत्रहवीं गुफा में उत्कीर्ण एक लेख के अनुसार वाकाटक नृपति हरिषेण के मांडलिक रविसांब तथा उसके बड़े भाई ने अश्मक प्रदेश को जीत कर उस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। अतः यह संभव है कि इस लेख में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लिखित अश्मकनरेश रविसांब के बड़े भाई अथवा उसके पुत्र और उत्तराधिकारी से अभिन्न था और उसी के राजत्वकाल में छब्बीसवीं गुफा का निर्माण हुआ था।

दूसरा लेख गृहमुख के बाईं ओर बुद्ध की एक ऊंची स्थानक प्रतिमा की पीठिका पर उत्कीर्ण है। इस लेख से विदित होता है कि यह प्रतिमा शाक्यभिक्षु भदंत गुणाकर का दान थी। लेख में इस कार्य से प्रसूत पुण्य के माता-पिता समेत समस्त प्राणियों की अनुत्तरज्ञानप्राप्ति में सहायक होने की इच्छा व्यक्त की गई है।

तीसरा लेख गृहमुख के दाईं ओर इसी प्रकार की एक अन्य मूर्ति की पीठिका पर उत्कीर्ण है। इसका प्रयोजन भी दान का निर्देश है, किंतु दाता का नाम नष्ट हो गया है। अन्य सभी दृष्टियों से यह लेख पूर्ववर्ती लेख के सदृश है।

चौथा लेख दाईं ओर के गलियारे की भीत पर एक बुद्ध प्रतिमा के नीचे उत्कीर्ण है और इसमें कहा गया है कि इस प्रतिमा का दान शाक्यभिक्षु संघमित्र ने किया था।[41]

गुफा क्र० 26-27

इन शैलगृहों के मध्यवर्ती चैत्यगृह की पिछली दीवार पर एक काफी बड़ा लेख उत्कीर्ण पाया गया है। लेख में कुल चौदह पंक्तियां हैं और यह तीन भागों में है। इसकी भाषा संस्कृत और प्राकृत का एक विलक्षण मिश्रण है और कहीं कहीं एक ही समास में कुछ संस्कृत तो कुछ प्राकृत शब्दों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। जहां लेखक ने शुद्ध संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है वहां भी वह प्राकृत से प्रभावित दिखाई देता है। लेख कीलशीर्षक लिपि में लिखा गया है और प्रत्येक अक्षर के सिर पर एक त्रिकोण है जिसकी नोक नीचे की ओर है। अक्षररचना के आधार पर इसे ई० आठवीं अथवा नवीं शताब्दी में रखा गया है। भाषा की कठिनाई के कारण इसका प्रयोजन स्पष्ट नहीं है। दूसरी पंक्ति में दक्षिणापथ में राष्ट्रकूट कुल में उत्पन्न नानराज (संभवत: नन्नराज) का उल्लेख है जो नगरधन अथवा मुलताई दानपत्र से ज्ञात राष्ट्रकूट नृपति नन्नराज से अभिन्न प्रतीत होता है। इसके पश्चात नानराज के भाई का उल्लेख है जिसका नाम नष्ट हो गया है। तीसरी पंक्ति में तीनों लोकों में विख्यात वज्रट्टदेव का नाम आता है। यह असंभव नहीं कि यह नानराज के भाई का नाम रहा हो, यद्यपि अन्य किसी स्रोत से इस संबंध की पुष्टि नहीं होती। संभवत: यह वज्रट्टदेव चालुक्य सम्राट द्वितीय पुलकेशी के पुत्र धराश्रय जयसिंह द्वारा पराजित वज्रट अथवा वज्जड से अभिन्न है। यदि यह समीकरण ठीक हो तो यह मानना पड़ेगा कि वज्रट विदर्भ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के राष्ट्रकूट कुल का एक सदस्य था और उसे चालुक्यों के हाथ पराजय का सामना करना पड़ा था जिसका बदला आगे चलकर राष्ट्रकूट दंतिदुर्ग ने चालुक्य सत्ता का अंत कर लिया। वज्रट्टदेव के ठीक पश्चात ललितावलोक का निर्देश मिलता है, किंतु इन दोनों का संबंध स्पष्ट नहीं है। अवलोकांत नाम राष्ट्रकूट वंश में पाए जाते हैं, परंतु ललितावलोक नाम पहली बार इसी लेख से ज्ञात हुआ है। पंक्ति 4-9 में योद्धा के रूप में ललितावलोक का वर्णन करते हुए युद्ध में उसकी तुलना नारायण और चतुर्भुज विष्णु से की गई है। पंक्ति 5 में मलयेश तथा अगली पंक्ति में चोल्ल (संभवतः चोल) का उल्लेख मिलता है। पंक्ति 1 और 10 में पुंड्र शब्द मिलता है। ये तीनों शब्द सुप्रसिद्ध राजवंशों अथवा प्रदेशों के नामों के रूप में प्रयुक्त हैं अथवा किसी अन्य अर्थ में, यह निर्णय करना कठिन है। बारहवीं पंक्ति में चंचुपत्थ का उल्लेख है जो दक्षिणापथ और उत्तरापथ की भांति प्रादेशिक नाम प्रतीत होता है, किंतु इसकी पहचान संभव नहीं है। अंतिम पंक्ति से ज्ञात होता है कि लेख कपट्टतूंग (कपटतुंग) ने लिखा था।[42]

वर्तमान स्थिति में इस लेख के विषय में इससे अधिक कुछ कहना संभव नहीं है। किंतु अजंता के इतिहास की दृष्टि से यह लेख काफी महत्वपूर्ण है। यह इस तथ्य का सूचक है कि अजंता की गुफाएं ई० आठवीं-नवीं शताब्दी तक उपयोग में आती रहीं।

संदर्भ

1. जेम्स बर्जेस एवं भगवानलाल इंद्रजी : इंस्क्रिप्शंस फ्राम दि केव टेंपल्स आफ वैस्टर्न इंडिया विथ डिस्क्रिप्टिव नोट्स, पृ० 67-88; जेम्स बर्जेस, रिपोर्ट आन दि बुद्धिस्ट केव टेंपल्स ऐंड दियर इंस्क्रिप्शंस (आर्किओलाजिकल सर्वे आफ वैस्टर्न इंडिया, खंड 4), पृ० 116, 124-138.

   गुलाम याजदानी ने अजंता के चित्रों का विवरण गुहाक्रम से दिया है. अतः उनके ग्रंथ के परिशिष्टों में जान ऐलन (भाग 2, पृ० 57-64), एन० पी० चक्रवर्ती (भाग 3, पृ० 85-95; भाग 4, पृ० 111-12) तथा बहादुरचंद्र छाबड़ा (भाग 4, पृ० 112-24) को भी स्वभावतः अभिलेखों के विवेचन के लिए इस क्रम का अनुसरण करना पड़ा है किंतु गुफाक्रम के अंतर्गत उन्होंने लेखों को चित्रित एवं उत्कीर्ण इन दो भागों में वर्गीकृत किया है.
2. यह लेख किसी आधुनिक यात्री द्वारा लिखा गया प्रतीत होता है तथा अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है.
3. क्रमांकनिर्देश के लिए जेम्स बर्जेस तथा भगवानलाल इंद्रजी का अनुसरण किया गया है.
4. बर्जेस एवं भगवानलाल (ब-भ); पृ० 80, क्र० 1; ऐलन, पृ० 64, क्र० 9.
5. ब-भ, पृ० 81, क्र० 2, ऐलन, पृ० 64, क्र० 11.
6. ब-भ, पृ० 81, क्र० 3, ऐलन, पृ० 58, क्र० 1.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

7. क्र० 4 : ब-भ, पृ० 81, क्र० 4, ऐलन, पृ० 59, क्र० 2, क्र० 5 : ब-भ, पृ० 81-82, क्र० 5, ऐलन, पृ० 60, क्र० 3.
8. इंडियन ऐंटिक्वेरी, 1903, पृ० 326-28.
9. ब-भ, पृ० 82, क्र० 6, ऐलन, पृ० 61, क्र० 4
10. ब-भ, पृ० 82, क्र० 7, ऐलन, पृ० 62, क्र० 6, भगवानलाल इंदजी ने यह लेख 'चैत्रिवलोर्कीराजा' पढ़ा है.
11. ब-भ, पृ० 82, क्र० 8, ऐलन, पृ० 62, क्र० 5
12. दिनेशचंद्र सरकार के अनुसार स्कंदवसु माथुर की माता का नाम था. किंतु इस प्रकार के नाम स्त्रियों के लिए प्रयुक्त नहीं मिलते. अतः अभयनंदि-स्कंदवसु एक नाम प्रतीत होता है. यह भी संभव है कि माथुर का पिता अभयनंदी एवं स्कंदवसु इन दोनों नामों से जाना जाता रहा हो.
13. व्यक्तिनाम के रूप में माथुर का प्रयोग कुछ विलक्षण प्रतीत होता है.
14. एपिग्राफिया इंडिका, खंड 33, पृ० 259-62.
15. इस लेख की चर्चा सर्वप्रथम एन० पी० चक्रवर्ती (पृ० 88) ने की है.
16. ब-भ, पृ० 82-83, क्र० 9-13, चक्रवर्ती, पृ० 88-90, क्र० 1-12 आर्स ओरिएंटलिस, खंड 7, पृ० 151, क्र० 5.
17. ब-भ, पृ० 84, क्र० 14, आर्किओलाजिकल सर्वे आफ वैस्टर्न इंडिया, खंड 4, पृ० 137, क्र० 6
18. चक्रवर्ती, पृ० 91, क्र० 1.
19. ब-भ, पृ० 67-68, क्र० 1.

    कटहा (संस्कृत कटाह) का एक अर्थ बांस से किया हुआ जाली का काम भी हो सकता है, किंतु उस अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि दान की क्रिया का उल्लेख दो बार किया गया है, जो असाधारण प्रतीत होता है. दूसरे, कटाह को इस अर्थ में लेने पर दाता का नाम केवल वासिष्ठी पुत्र मानना पड़ेगा। किंतु लेख की लिपि अपेक्षाकृत पूर्ववर्ती होने तथा पुलुमावि नाम के प्रयुक्त न होने के कारण इस वासिष्ठी पुत्र का तादात्म्य सातवाहन नरेश वासिष्ठी पुत्र पुलुमावि के साथ स्थापित नहीं किया जा सकता.
20. आर्स ओरिएंटलिस, खंड 7, 1968, पृ० 147-48.
21. वही, पृ० 152-53
22. वही, पृ० 148-49
23. ब-भ, पृ० 81, क्र० 14, चक्रवर्ती, पृ० 90-91, क्र० 1.
24. यह श्लोक 26वीं गुहा के एक लेख में सुरक्षित है और इसकी विस्तृत चर्चा वहीं की गई है.
25. इन लेखों के लिए देखिए—ब-भ, पृ० 84-86, क्र० 15-24; चक्रवर्ती, पृ० 90-94; आर्स ओरिएंटलिस, खंड 7. 1968, पृ० 147-48 और 152-53, क्र० 1-2 और 7.
26. आर्स ओरिएंटलिस, खंड 7, 1968, पृ० 149-50, क्र० 3.
27. इंद्रजी के अनुसार घनामदड संस्कृत गणपद्र से निर्गत स्थलनाम प्रतीत होता है इस मत को मानने पर इस शैलगृह का निर्माण करने वाला व्यापारी घनामदड नामक स्थान का निवासी था, यह मानना पड़ेगा. किंतु उस स्थिति में यह भी मानना पड़ेगा कि लेख में दाता का व्यक्तिनाम नहीं दिया गया है जो कुछ विलक्षण प्रतीत होता है.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

28. व-भ, पृ० 86-87, क्र० 25-27, चक्रवर्ती, पृ० 94-95, क्र० 1-3.
29. चक्रवर्ती, पृ० 96, क्र० 6. इन लेखों की चर्चा वर्जेस और इंद्रजी ने नहीं की है.
30. बारहवें श्लोक में सुरक्षित 'कोश' शब्द से यह अनुमान किया गया है कि हस्तिभोज हस्तिकोश के पद पर था.
31. वासुदेव विष्णु मिराशी : वाकाटक राजवंश का इतिहास तथा अभिलेख, पृ० 260-64.
32. आर्स ओरिएंटलिस, खं० 6, 1968, पृ० 151-52, क्र० 6.
33. वर्जेस और इंद्रजी ने केवल प्रथम दो लेखों की चर्चा की थी. अंतिम दो लेखों की चर्चा सर्वप्रथम चक्रवर्ती ने की है
34. वासुदेव विष्णु मिराशी : पूर्वोक्त, पृ० 281-87.
35. इस लेख को वर्जेस और इंद्रजी ने भ्रांतिवश गुफा बाईस के अंतर्गत दिया है.
36. इन लेखों की चर्चा सर्वप्रथम चक्रवर्ती (पृ० 111) ने की है.
37. व-भ, पृ० 88, क्र० 10; चक्रवर्ती, पृ० 112.
38. आर्स ओरिएंटलिस, खं० 6, 1968, पृ० 150-151.
39. आर्किओलाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इंडिया, खं० 4, पृ० 133.
40. छावड़ा, पृ० 114, क्र० 1.
41. इन लेखों के लिए देखिए व-भ, पृ० 77-80, क्र० 6-9; छावड़ा, पृ० 114-20, क्र० 1-4.
42. छावड़ा, पृ० 121-24.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

7

परिणति

अब तक के विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय कला के इतिहास में अजंता के शैलगृहों का स्थान अनुपम है। ललित कला की तीनों प्रमुख विधाओं—स्थापत्य, मूर्ति एवं चित्र—का जैसा मधुर गंगा जमुनी संगम यहां देखने को मिलता है, वैसा अन्यत्र नहीं। यद्यपि बौद्ध कला के अन्य कई केंद्र भारत और बौद्ध एशिया के विभिन्न प्रदेशों में पाए जाते हैं, तथापि हीनयान तथा महायान की छत्रछाया में उसके विकास का जो समन्वित चित्र अजंता में उपलब्ध होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। अजंता की ख्याति प्रधानतया उसके सुंदर भित्तिचित्रों के लिए है और यदि यह कहा जाए कि ये चित्र इन शैलगृहों के सुनियोजित वास्तुविन्यास तथा शिल्प के आकर्षण को घटाने के लिए उत्तरदायी हैं तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

न केवल भारतीय अपितु संपूर्ण एशियाई चित्रकला के इतिहास की दृष्टि से अजंता के इन चित्रों का महत्व शब्दातीत है। इन चित्रों ने कलाकारों की समकालीन एवं भावी पीढ़ियों को इतना अधिक प्रभावित किया कि उनकी कृतियों में हमें इनकी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष छाया दृष्टिगत होती है। वास्तव में अजंता के चित्रों के बिना भारतीय चित्रकला के उत्तरकालीन विकास की दशा को समझना एक प्रकार से असंभव है। यही नहीं, भारतीय संस्कृति और कलाकार एशिया के जिस जिस देश में गए चित्रकला की अजंता में प्रतिबिंबित भारतीय परंपरा भी अपने साथ लेते गए। इसका परिणाम यह हुआ कि दक्षिण, मध्य, दक्षिणपूर्व एवं सुदूरपूर्व एशिया की चित्रकला के अधिकांश उपलब्ध अवशेष अजंता की परंपरा से अविच्छिन्न रूप से संबद्ध दृष्टिगोचर होते हैं। आधुनिक काल में भारतीय चित्रकला का जो पुनरुत्थान हुआ उसमें भी अजंता के चित्रों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

भारतीय कला

प्राचीन काल : जिस समय अजंता के उत्तरकालीन शैलगृह निर्मित एवं चित्रित हुए लगभग उसी समय अजंता से लगभग दो सौ मील उत्तर में मध्यप्रदेश के धार जिले में बाघिनी नदी के तट पर विंध्य पर्वत के दक्षिणी ढलान पर बौद्ध शैलगृहों के एक और समूह का निर्माण हुआ। मूलतः ये सभी गुफाएं चित्रों से अलंकृत थीं, किंतु आज ये गुफाएं और इनके चित्र दोनों अत्यंत भग्न अवस्था में हैं। संप्रति चित्रों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अवशेष केवल पांच गुफाओं (क्र० 2, 3, 4, 5 और 7) में पाए जाते हैं। इन चित्रावशेषों में से बोधिसत्व अवलोकितेश्वर, हल्लीसक नृत्य तथा रुदनरत महिलाएं इत्यादि कुछ दृश्य अत्यंत प्रसिद्ध हैं।[1] इन तथा अन्य चित्रों के अवलोकन से इसमें संदेह नहीं रह जाता कि कुछ निजी वैशिष्टयों के बावजूद ये चित्र अजंता के भित्ति-चित्रों की परंपरा से अनुप्राणित हैं। विशेषतया अजंता और बाघ के बोधिसत्व पद्म-पाणि के चित्रों के बीच तो एक अद्भुत सादृश्य है। पहले यह माना जाता था कि बाघ का यह चित्र अजंता के पद्मपाणि की अनुकृति पर निर्मित है, किंतु राजा सुबंधु के तिथियुक्त लेख की प्राप्ति के पश्चात इस धारणा में परिवर्तन हुआ है और हाल ही में यह मत प्रतिपादित किया गया है कि बाघ का चित्र अजंता के पद्मपाणि की अपेक्षा कुछ पहले का है।[2] जो भी हो, इसमें संदेह नहीं कि धर्म, शैली एवं मूल भावना की दृष्टि से अजंता और बाघ के चित्रों में मूलभूत एकता है और इसी कारण उनके बीच इतना अधिक सादृश्य दृष्टिगोचर होता है। यह असंभव नहीं कि बाघ के कुछ चित्रों का निर्माण अजंता से आए हुए अथवा अजंता शैली में प्रशिक्षित चित्रकारों ने किया हो।

बौद्ध धर्म से अनुप्राणित चित्रों के कुछ अवशेष कान्हेरी (गुहा क्र० 14), औरंगाबाद (गुहा क्र० 3 और 6) और पितलखोरा (गुहा क्र० 1) में भी दृष्टि-गत होते हैं। ये अवशेष ई० छठी शताब्दी के आसपास के हैं और इन चित्रों की वर्तमान दयनीय अवस्था में भी यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि ये अजंता परंपरा से अविच्छिन्न रूप से संबद्ध हैं।

गुप्त-वाकाटकोत्तर काल में बौद्ध धर्म का ह्रास तथा वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ और अन्य कलाविधाओं की भांति चित्रकला भी इस युगांतरकारी परिवर्तन से अप्रभावित न रह सकी। इस हिंदू चित्रकला में देवों, देवियों तथा रामायण एवं महाभारत से संबंधित घटनाओं और पौराणिक कथाओं के अंकन की प्रमुखता है। इन भित्तिचित्रों के अवशेष एलोरा के लंकेश्वर, इंद्रसभा तथा गणेश लेण नामक सुप्रसिद्ध गुफामंदिरों,[3] कांचीपुरम के कैलासनाथ मंदिर, बादामी की तीसरी गुफा[4] तथा मलयदिपति के शिला को काट कर बनाए गए मंदिर में उपलब्ध होते हैं। इनका काल ई० छठी से नवम शताब्दी के मध्य भाग तक है। संप्रदायगत एवं स्थानीय वैशिष्टयों के होते हुए भी ये चित्र अजंता परंपरा से बहुत भिन्न नहीं हैं।[5] यही बात शिट्टण्णवाशल के ई० सातवीं शताब्दी के एक जैन मंदिर में प्राप्त भित्तिचित्रों के विषय में भी सत्य है।[6] हिंदू धर्म से संबंधित भित्तिचित्रों के उत्तर-कालीन उदाहरण चोल और विजयनगर काल के हैं। ये चित्र चोल राजधानी तंजावुर के सुविख्यात बृहदीश्वरस्वामी के मंदिर, प्रवणकोर के तिरुनन्निकार के गुफामंदिर, अनेगुंदी के उत्तयप्पामठ इत्यादि स्थानों में आज भी देखे जा सकते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। धार्मिक दृष्टि से भिन्न एवं अत्यंत परवर्ती होने पर भी ये चित्रावशेष शैली, भावानुभूति एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से अजंता से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं।

उपरिलिखित सभी भित्तिचित्र दक्षिण भारत में हैं। उत्तर भारत में बाघ के पश्चात धार्मिक भित्तिचित्रों के अवशेषों का प्रायः अभाव है। मध्यकाल में बौद्ध और हिंदू मंदिरों का बड़े पैमानों पर विनाश इसका कारण प्रतीत होता है। अन्यथा यह कल्पना करना कठिन है कि पाल नरेशों के उदार संरक्षण में नालंदा और विक्रमशील के विख्यात बौद्ध विहारों एवं मंदिरों तथा अन्य अनेक स्थानों में बड़ी संख्या में निर्मित हिंदू मंदिरों में चित्रों का सर्वथा अभाव था। यद्यपि उत्तर भारत में धार्मिक भित्तिचित्रों की परंपरा के प्रचलन का कोई प्रमाण नहीं मिलता तथापि भित्तिचित्रण की परंपरा पूर्णतः लुप्त नहीं हुई थी, इस बात के कुछ साक्ष्य उपलब्ध हैं। राजस्थान के जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, अलवर, भरतपुर, उदयपुर तथा अन्य सुदूर एवं दुर्गम प्रदेशों में स्थित कुछ दुर्गों और राजप्रासादों में आज भी अनेक मध्यकालीन एवं मध्यकालोत्तर भित्तिचित्र सुरक्षित हैं। इनके और अजंता के भित्तिचित्रों के बीच सहस्राधिक वर्षों का व्यवधान होते हुए भी ये चित्र अजंता परंपरा से निकट रूप से संबद्ध हैं और उसके उत्तराधिकारी कहे जा सकते हैं। ये अजंता की भांति विशाल पैमाने पर तथा अजंता शैली में निर्मित हैं। इनके बीच प्रथम दृष्टि में जो भेद दिखाई पड़ता है वह वास्तविक न होकर सतही है और इसके मूल में चित्राधारों तथा धार्मिक परंपराओं का अंतर है। राजस्थान तथा हिमाचल प्रदेश के चंबा इत्यादि कतिपय प्रदेशों में भित्तिचित्रों की यह परंपरा कुछ समय पूर्व तक प्रचलित थी। इस कला के राजस्थान एवं हिमाचल प्रदेश में उपलब्ध ये उदाहरण अजंता एवं उत्तरकालीन राजपूत शैलियों को परस्पर जोड़नेवाली कड़ी का काम करते हैं।[7]

मध्यकाल : पाल अथवा पूर्वी शैली : ऊपर जिन चित्रों की चर्चा की गई है वे पौराणिक हिंदू एवं जैन धर्मों से संबंधित हैं। अजंता एवं बाघ के चित्रों के अनंतर बौद्ध भित्तिचित्रों के उदाहरण भारत में संप्रति उपलब्ध नहीं हैं। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि बौद्धों ने चित्रकला का सर्वथा परित्याग कर दिया था, और न ही बौद्ध धर्म को राज्याश्रय का अभाव था। बंगाल और बिहार के पाल नरेश बौद्ध थे और उनके शासनकाल में पूर्वी भारत में स्थापत्य और शिल्प काफी उन्नत अवस्था में थे। उपलब्ध प्रमाणों से विदित होता है कि बौद्ध चित्रकला तो मध्यकाल में जीवित रही, किंतु उसके माध्यम में परिवर्तन हो गया। भित्तिचित्रों का स्थान अब पुस्तकचित्रों (मैनुस्क्रिप्ट इलस्ट्रेशन) ने लिया जो वस्तुतः उत्तर मध्यकाल में लोकप्रिय लघुचित्रों (मिनिएचर पेंटिंग) की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। मध्यकाल में बौद्धों में पुस्तकचित्रों की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण संभवतया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा में 'ध्यान' और ध्यानमूर्तियों का असाधारण महत्व है। इस काल की 'प्रज्ञापारमिता' तथा अन्य महायान पुस्तकों की अभिचित्रित प्रतिलिपियां मुख्यतया भारत में विहार, विशेषतया नालंदा एवं विक्रमशील इत्यादि, और बंगाल में विभिन्न स्थानों से तथा भारत के बाहर नेपाल से बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं। कुछ अभिचित्रित पुस्तकें तिब्बत से भी मिली हैं। ये पुस्तकें उत्कृष्ट कोटि के तालपत्र अथवा राजताल पर लिखी हैं तथा पत्रों पर बीच बीच में महायान देवी-देवताओं, बुद्ध के जीवन की विविध घटनाओं, पूर्वबुद्धों एवं बोधिसत्वों के चित्र बने हुए दिखाई देते हैं। इन पुस्तकों के ऊपर और नीचे लगे हुए पटरों पर भी बुद्धजीवन एवं जातक कथाओं का चित्रांकन पाया जाता है। पटरों के चित्रों पर उनकी सुरक्षा के उद्देश्य से लाख चढ़ाई हुई दिखाई देती है। इन सबकी चित्रशैली प्रायः समान है और अंतर केवल नेपाल और तिब्बत से प्राप्त कुछ चित्रों की मुखाकृतियों में है जो स्पष्टतया मानवरूप के स्थानीय वैशिष्ट्य (मंगोलपन) का परिणाम है। पूर्वी भारत का वह प्रदेश जहां से ये हस्तलिखित पुस्तकें मिली हैं बौद्धधर्मानुयायी पाल राजाओं के अधीन था और कई पुस्तकों में तो समसामयिक पाल नरेशों के नाम का उल्लेख भी मिलता है। अतः साधारणतया इन चित्रों को पाल शैली का माना जाता है। सोलहवीं शती के तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने पूर्वी भारत में ईस्वी नवीं शताब्दी से प्रचलित एक चित्रशैली का उल्लेख किया है जो स्पष्टतया पाल शैली से अभिन्न है। उसने यह भी लिखा है कि ईस्वी सातवीं शताब्दी में पश्चिमी भारत में मारवाड़ से एक चित्रशैली प्रचलित हुई। नेपाल के चित्रकार पहले तो पश्चिम भारतीय शैली में चित्ररचना करते थे, परंतु बाद में उन्होंने पूर्वी शैली को स्वीकार कर लिया। इन पुस्तकचित्रों में उत्तरकालीन ह्रास के चिह्नों—ध्यानों का नियत रूप, अंगों और मुद्राओं की जकड़, अधिक लंबी नाक तथा सवाचश्म चेहरों का आधिक्य—की अपने मूल रूप में उपस्थिति के बावजूद इसमें संदेह नहीं कि इन चित्रों और अजंता के भित्तिचित्रों के बीच विलक्षण शैलीगत समानता है। अंतर केवल आकार का है—अजंता के चित्र गुफाओं की लंबी-चौड़ी दीवारों और छतों पर अंकित हैं तो ये उत्तरकालीन चित्र छोटे तालपत्रों पर।[8]

मध्यकाल : पश्चिमी अथवा अपभ्रंश शैली : इसी काल में देश के अन्य भागों में पुस्तकों के चित्रण की एक अन्य शैली प्रचलित थी जो संभवतः तारानाथ द्वारा उल्लिखित पश्चिम भारतीय शैली से अभिन्न है। इस शैली के प्रायः सभी चित्रों में चेहरे सवाचश्मी, नाक परले गाल से बाहर निकली हुई, ठुड्डी बहुत छोटी और आम की गुठली के आकार की, आंखें पास पास, पुतली अतिरिक्त छोटी, परली आंख चेहरे की सीमांत रेखा के बाहर निकली हुई, वक्ष अतिरिक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उभरा हुआ और उदर कृश हैं। चेहरे भावहीन हैं और अंगों में एक प्रकार की जकड़न और अस्वाभाविकता है। इस शैली की चित्रित पुस्तकों की एक अच्छी-खासी संख्या जैन धर्म के श्वेतांबर संप्रदाय से संबंधित है। अतः यह जैन शैली के नाम से प्रसिद्ध है। परंतु 'गीतगोविन्द', 'दुर्गासप्तशती', 'रतिरहस्य', 'वसंतविलास' प्रभृति अनेक अजैन ग्रंथ भी इस शैली के चित्रों से अभिचित्रित मिले हैं, जिससे सांप्रदायिक आधार पर नामकरण की व्यर्थता स्पष्ट है। अतः प्रादेशिक आधार पर इसके लिए गुजरात शैली अथवा पश्चिमी शैली नाम प्रस्तावित किया गया है।[9] किंतु इस शैली के चित्र गुजरात अथवा पश्चिमी भारत में सीमित न होकर अन्य प्रदेशों से भी प्राप्त हुए हैं।[10] अतः राय कृष्णदास ने इसको अपभ्रंश शैली के नाम से संबोधित किया है।[11] जो भी हो, इस शैली के चित्र पूर्वी शैली की अपेक्षा अजंता शैली से कहीं अधिक दूर हैं, इसमें संशय नहीं। परंतु इसका अभिप्राय यह नहीं कि ये अजंता परंपरा से पूर्णतया विच्छिन्न हैं। वास्तव में ये चित्र एलोरा के जैन भित्तिचित्रों के अधिक निकट हैं और एलोरा की चित्रशैली अजंता परंपरा का ही कुछ परिवर्तित रूप है। इन चित्रों की तुलना में अत्यंत उत्तरकालीन राजपूत एवं कांगड़ा शैली के लघुचित्र भी तीक्ष्ण रेखा के प्राधान्य, भावाभिव्यंजना एवं तकनीक की दृष्टि से अजंता परंपरा से प्रभावित माने गए हैं, यद्यपि प्रथम दृष्टि में इन शैलियों के बीच किसी भी प्रकार का संबंध परिलक्षित नहीं होता।

आधुनिक काल : भारत में अंगरेज राज्य की स्थापना के पश्चात अंगरेज शिक्षा-दीक्षा के परिणामस्वरूप स्वयं भारतीयों के मन में अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति उपेक्षा और तिरस्कार का भाव घर कर गया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में अजंता के भित्तिचित्रों के ज्ञात होने पर स्वयं अंगरेजों को भारतीय चित्रकला के गौरवपूर्ण अतीत का बोध हुआ तथा उन्होंने यह अनुभव किया कि भारत में चित्रकला का भविष्य अंगरेजी कला के अंधानुकरण पर अवलंबित न होकर प्राचीन भारतीय कलादर्शों को आगे बढ़ाने में निहित है। इस शताब्दी के अंत में ग्रिफिथ्स के अजंताविषयक सुप्रसिद्ध ग्रंथ के प्रकाशन से भारतीय अपनी प्राचीन गौरवमयी चित्रकला से परिचित हुए। पश्चिम में भी भारतीय चित्रकला का महत्व माना जाने लगा और उसे विश्वकला के इतिहास में उचित स्थान प्राप्त हुआ। सुप्रसिद्ध अंगरेज विद्वान ई० बी० हैवेल, जो कलकत्ता कला विद्यालय के प्रधानाचार्य थे, बड़े ही सुलझे हुए विचारों के कलामर्मज्ञ थे तथा उन्होंने इस विद्यालय के विद्यार्थियों के प्रशिक्षण के लिए अजंता के चित्रों का आदर्श के रूप में उपयोग किया। इस कार्य में उन्हें सुप्रसिद्ध चित्रकार अवनींद्रनाथ ठाकुर से बड़ी सहायता मिली। इन दोनों के संयुक्त प्रयत्नों के फलस्वरूप भारतीय चित्र-कला का एक नवीन संप्रदाय अस्तित्व में आया जिसने प्राचीन भारतीय चित्रकला,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशेषत: अजंता के भित्तिचित्रों, को अपना आदर्श माना। धीरे धीरे यूरोपीय चित्रों के अनुकरण की तुलना में भारतीय चित्रकला का महत्व स्पष्ट होता गया और आज अजंता के चित्रों की प्रतिकृतियां सुसंस्कृत भारतीय घरों और अन्य भवनों की शोभा बढ़ाती हुई पाई जाती हैं। यही नहीं, संपूर्ण विश्व के चित्रों को आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार आधुनिक काल में भारतीय पुनर्जागरण में अजंता के चित्रों का योगदान वर्णनातीत है।

भारतेतर देशों की कला

अजंता की चित्रकला का प्रभाव उत्तरकालीन भारतीय कला तक ही सीमित नहीं रहा। एशिया के विभिन्न भागों में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ साथ भारतीय कला का भी प्रवेश हुआ और स्थानीय शैलियों के सम्मिश्रण से एक नवीन कला की सृष्टि हुई। कलापारखियों के मतानुसार इन देशों की चित्रकला अजंता से न्यूनाधिक मात्रा में प्रभावित है।

सिंहल : एशिया के अन्य देशों की तुलना में सिंहल द्वीप में बौद्ध धर्म का प्रवेश कहीं पहले हुआ। सिंहली परंपरा के अनुसार अशोक संरक्षण में पाटलिपुत्र में आयोजित तृतीय बौद्ध संगीति ने सिंहल में बौद्ध धर्म के प्रचार के निमित्त अशोक के पुत्र महेंद्र एवं पुत्री संघमित्रा को भेजा और उस समय से सिंहल बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का एक प्रमुख केंद्र बन गया। बौद्ध कला के अवशेष इस देश में अनेक स्थानों पर आज भी उपलब्ध हैं। मताले के सिंहगिरि अथवा सिगिरिय[12] नामक पहाड़ी पर प्रथम कश्यप के राजत्वकाल (ई० 478-496) में निर्मित एक दुर्ग के निकट स्थित दो शैलगृहों में आज भी अनेक भित्तिचित्र देखने को मिलते हैं। ये चित्र भलीभांति सुरक्षित न होते हुए भी तत्कालीन कला की भव्यता के परिचायक हैं। कुल मिलाकर लगभग बीस चित्र हैं और सभी स्त्रियों के हैं। कुछ चित्रों में स्पष्टत: एक नायिका है और दूसरी उसकी परिचारिका। उनकी वेशभूषा और साजसज्जा से भी यह अंतर स्पष्ट है। ये सभी अपने हाथों में पुष्पगुच्छ, पुष्पनाल अथवा कली लिए हुए हैं। सामान्यतया प्रचलित मान्यता के अनुसार ये चित्र कश्यप की रानियों के हैं और इनका कोई धार्मिक महत्व नहीं है। इन नारीचित्रों के अधोभाग मेघों की आकृतियों से छिपा दिए गए हैं।[13] यद्यपि इन चित्रों में अजंता के श्रेष्ठ चित्रों की परिपक्वता का दर्शन नहीं होता, तथापि इसमें संदेह नहीं कि ये चित्र काफी सुंदर बन पड़े हैं। शैली और तकनीक की दृष्टि से ये चित्र अजंता परंपरा से स्पंदित प्रतीत होते हैं। इन चित्रों की केश रचना, वेशभूषा तथा लालित्यपूर्ण अंगविन्यास अजंता के सदृश हैं और तकनीक भी वही है—विषम शिला पर मिट्टी का मोटा पलस्तर लगाकर उसके ऊपर चूने की एक अत्यंत बारीक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परत दी गई है और तदनंतर इस दूहरे पलस्तर पर चित्रांकन किया गया है। रंग भरने के पूर्व अजंता की भांति लाल गेरू से रेखांकन किया गया दृष्टिगत होता है। इसी प्रकार हिंडगल के बौद्ध गुफा मंदिर के चित्रों पर भी अजंता का प्रभाव परिलक्षित होता है। वस्तुतः अजंता और सिगिरिय तथा हिंडगल के इन चित्रों के बीच कुछ दृष्टियों से तो इतना अधिक साम्य है कि एक सामान्य दर्शक के लिए उनके बीच भेद कर पाना कठिन है।

पूर्वी तुर्किस्तान : पूर्वी तुर्किस्तान और विशेष रूप से उसका खोतान प्रदेश मध्य एशिया में भारतीय कला और संस्कृति का एक प्रमुख केंद्र था। खोतान का राजवंश भारतीय मूल का था तथा ईस्वी आठवीं-नवीं शताब्दियों के उइगर तुर्की आक्रमणों के पूर्व तक उसका प्राधान्य बना रहा। अतः इस काल में खोतान प्रदेश के लिए तुर्किस्तान नाम का प्रयोग कुछ विलक्षण प्रतीत होता है। अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण यह प्रदेश चीनी, यूनानी, ईरानी तथा भारतीय संस्कृतियों का संगमस्थल था, किंतु भारतीय संस्कृति का प्रभाव सर्वाधिक था। सर आरेल स्टाइन तथा ले काक के अथक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप प्राचीन खोतानी संस्कृति के अनेक अवशेष प्रकाश में आए हैं। इनमें भित्तिचित्रों तथा चित्रित रेशमी पताकाओं की संख्या काफी बड़ी है। इन भित्तिचित्रों तथा अजंता के, विशेषतः दूसरी गुफा के, चित्रों के बीच साम्य दृष्टिगत होता है। अजंता की भांति इन भित्तिचित्रों का विषय भी बौद्ध धर्म से संबद्ध है तथा इनमें भी रेखाओं का प्राधान्य स्पष्ट है। इन चित्रों का काल ईस्वी आठवीं शताब्दी है और इस प्रकार इसमें संदेह नहीं रह जाता कि ये चित्र अजंता की चित्रकला से अत्यधिक प्रभावित हैं।[14]

पूर्वी तुर्किस्तान के अन्य स्थानों से भी स्टाइन और ले काक ने भित्तिचित्रों का अच्छा खासा संकलन किया है। दंदान-उलिक से उपलब्ध नदी देवता के चित्र पर तो अजंता शैली का इतना अधिक प्रभाव है कि लगता है उसका निर्माण अजंता के किसी चित्रकार ने किया हो।[15] ये चित्र सामान्यता ईस्वी आठवीं शती के आसपास के हैं। चिऊ-त्जू से संग्रहीत चित्रित पताकाएं भी अजंता कला से प्रभावित हैं। ये तिब्बत की 'थानका' नाम से प्रसिद्ध उत्तरकालीन बौद्ध पताकाओं की पूर्वरूप हैं।

तिब्बत : तिब्बती संस्कृति के अन्य घटकों की भांति चित्रित पताकाएं भी मूलतः भारतीय परंपरा से प्रेरित हैं। मंदिरों के सामने संबंधित देवता का ध्वज स्थापित करने की परंपरा भारत में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है और यूनानी राजदूत हेलिओदोर द्वारा विदिशा में स्थापित गरुडस्तंभ (लेख में इसे गरुडध्वज कहा गया है) इसका एक अच्छा उदाहरण है। बौद्धों में भी यह प्रथा लोकप्रिय थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्यारहवीं शती के चीनी लेखक तेंग चुन के अनुसार नालंदा के विहारों में भिक्षु पश्चिम से लाए हुए कपड़ों पर बुद्धों एवं बोधिसत्वों के चित्र बनाते थे। तिब्बत और मगध के निकट संबंध को देखते हुए इसमें संदेह नहीं कि थानका बनाने की प्रथा तिब्बत में मगध से गई थी। तिब्बत से प्राप्त चित्रित पताकाएं अत्यंत उत्तर-कालीन होते हुए भी तकनीक की दृष्टि से अजंता परंपरा से प्रभावित हैं। यही बात तिब्बती विहारों एवं मंदिरों में उपलब्ध भित्तिचित्रों के विषय में भी सत्य है।[17]

अफगानिस्तान : अफगानिस्तान में बमियन बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण केंद्र था। इस स्थान से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री में भित्तिचित्रों के अवशेषों का भी समावेश है। इन चित्रों की शैली पूर्णतः मिश्रित है, यद्यपि सासानी, मध्य एशियाई और अजंता की आकृतियों की ओर रुझान अधिक है। घोरबंद घाटी में फोंदिकिस्तान के विहार में भी इस प्रकार के चित्र पाए जाते हैं। इन चित्रों के निर्माण की तकनीक भी साधारणतया वही है जिससे हम अजंता में परिचित हैं। सर्वप्रथम चट्टान पर खड़िया और भूसे से मिश्रित मिट्टी की एक मोटी परत दी गई और इस परत पर महीन पलस्तर किया गया है और अंत में दुहरे पलस्तर के ऊपर स्थानीय मिट्टियों आर धातुओं से बनाए गए रंगों से चित्रकर्म किया गया है।

सुदूर पूर्व : सुदूर पूर्व जापान और चीन की बौद्ध कला किस सीमा तक भारतीय कला से प्रभावित है, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। किंतु जापान की कतिपय कलाकृतियों में अजंता का प्रभाव स्पष्ट है। डिल्लन के मतानुसार नर काल (ईस्वी सातवीं शताब्दी) के जापानी चित्रों में भव्यता तथा गंभीर धार्मिक अनुभूति का संचार है, किंतु इनमें से अधिकांश को स्थानीय कलाकारों की कृति मानना संभव नहीं है। ये चीनी कला से भी स्पष्टयता प्रभावित नहीं हैं। वास्तव में इन चित्रों को देख कर हमें अजंता के भित्तिचित्रों का स्मरण हो उठता है। इसी प्रकार होरिजुई के मंदिर का सुप्रसिद्ध भित्तिचित्र भी कलापारखियों के अनुसार अजंता के भित्तिचित्रों के अनुकरण पर बनाया गया है—इसमें सशक्त रेखांकन जीवनानुभूति का वही महत्व परिलक्षित होता है जिसे हम अजंता के चित्रों में देखने के अभ्यस्त हैं। अजंता के प्रभाव की क्षीण, दूरवर्ती प्रतिध्वनि जापान के तोसा संप्रदाय के ईस्वी पंद्रहवीं शताब्दी के चित्रों में भी सुनाई पड़ती है।[18]

दक्षिणपूर्वी एशिया : दक्षिणपूर्वी एशिया की कला पर भी अजंता का प्रभाव दिखाई देता है। अजंता के गुफा क्र० 1 के चित्रों तथा मध्य जावा की ईस्वी 850 के आसपास की बौद्ध मूर्तियों के बीच बड़ा साम्य पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि वहां जाकर बसनेवाले भारतीय प्रवासी अपने साथ भारतीय कला-परंपरा भी लेते गए जो लगभग दो शताब्दी पश्चात बोरोबदुर के सुविख्यात स्तूप के रमणीय शिल्पों के रूप में फलीभूत हुई।[19] अजंता के कुछ उत्तरकालीन चित्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलंकरण अभिप्रायों और प्रतिमालक्षणों की दृष्टि से चंपा, कंबोडिया, तुर्फान एवं चीन (परवर्ती वेई और तांग काल) के अनेक श्रेष्ठ चित्रों के भी पूर्वरूप माने गए हैं।[20]

इस संक्षिप्त चर्चा से स्पष्ट हो गया होगा कि कला के इतिहास की दृष्टि से अजंता का महत्व किसी एक देश अथवा काल विशेष तक सीमित नहीं है। उसका क्षेत्र इतना व्यापक और ओज इतना प्रखर था कि उसने देशकाल की सीमाओं को लांघकर संपूर्ण एशियाई कला को उसका विशिष्ट रूप दिया। इस अर्थ में अजंता की कला वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय है।

संदर्भ

1. बाघ के चित्रों के वर्णन के लिए देखिए—मार्ग, खं० 25, अंक 3, 1972; महेश्वरीदयाल खरे : बाघ की गुफाएं.
2. जान ऐंडरसन : बाघ केव्स : हिस्टारिकल ऐंड डिस्क्रिप्टिव एनालिसिस मार्ग, खं० 25, अंक 3, पृ० 37-42
3. अन्य गुफाओं में भी कहीं कहीं चित्रांकन के चिह्न दिखाई देते हैं. कहीं कहीं चित्रों की दो तहें पाई जाती हैं, जिनके बीच लगभग दो शताब्दियों का अंतर है. अजंता परंपरा से संबंधित होते हुए भी इन चित्रों में कुछ अंतर और ह्रास के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं. पश्चिमी अथवा अपभ्रंश शैली के चित्र एलोरा परंपरा से प्रभावित माने जाते हैं. द्रष्टव्य—राय कृष्णदास : भारत की चित्रकला, पृ० 24-25.
4. वही, पृ० 23-24, फलक 6 ख०; रमेशचंद्र मजूमदार (संपादक) : दि क्लासिकल एज, पृ० 546, आकृति 94.
5. इस संदर्भ में एलोरा के सवाचश्म चेहरे और अतिरिक्त लंबी नाक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं.
6. राय कृष्णदास : पूर्वोक्त, पृ० 24; मजूमदार : पूर्वोक्त, पृ० 547-48, आकृति 96.
7. पर्सी ब्राउन : इंडियन पेंटिंग, पृ० 103-104
8. राय कृष्णदास : वही, पृ० 37-38 और पृ० 1 के सामने दिया हुआ चित्र. इन पुस्तकों का लेखन भी बड़े सुंदर अक्षरों में हुआ है.
9. आनंद कुमारस्वामी ने इसे पश्चिम भारतीय शैली नाम दिया है.
10. जौनपुर (उत्तरप्रदेश) से सचित्र 'कल्पसूत्र' प्राप्त हुआ है. भारत कला भवन, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी में एक अवधी काव्य की अभिचित्रित प्रति के कुछ पन्ने सुरक्षित हैं—राय कृष्णदास : पूर्वोक्त, पृ० 42-43, फलक 8 ग.
11. वही, पृ० 43-46
12. पहाड़ी के रास्ते पर सिंह की ईंटों से निर्मित मूर्ति स्थापित होने के कारण नाम सिंहगिरि अथवा सिगिरिय पड़ा.
13. पर्सी ब्राउन : इंडियन पेंटिंग, पृ० 36-37, फलक 3; मार्ग, खं० 9, अंक 2, पृ० 110 के सामने का चित्र.
14. पर्सी ब्राउन : इंडियन पेंटिंग, पृ० 36, 44-45.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

15. वही, पृ० 45, फलक 5. केवल मुखाकृति पर चीनी अथवा स्थानीय प्रभाव दिखाई देता है. दंदान उलिक से प्राप्त कुछ चित्रफलकों में मध्यकालीन चित्रशैली के कुछ चिह्न (सवाचश्म चेहरा, अतिरिक्त लंबी उभरी नाक इत्यादि) भी देखे जा सकते हैं, राय कृष्णदास; पूर्वोक्त, 31-32, फलक 7 ख.
16. पर्सी ब्राउन पेंटिंग, पृ० 36. 45-46; मार्ग खंड 9. अंक 2, पृ 106-109, चित्र 4.
17. वही, पृ० 51-52.
18. पर्सी ब्राउन : इंडियन पेंटिंग, पृ० 27.
19. वही, पृ० 35
20. मार्ग, ख० 9, अंक 2, पृ० 90.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहायक ग्रंथों एवं लेखों की सूची

अगस्त्य तथा अन्य : 'दि रोड टु सेंट्रल एशिया', मार्ग, खं० 9, सं० 2, पृ० 50-60.

अग्रवाल, वासुदेवशरण : पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वाराणसी, वि० सं० 2012.

— हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, 1953.

— भारतीय लोकधर्म, अहमदाबाद, 1964.

— भारतीय कला, वाराणसी, 1966.

उपाध्याय, भरतसिंह : बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, प्रयाग, वि० सं० 2018.

कौड्रिंग्टन, के० डी० बी० : 'दि कल्चर आफ मीडिएवल इंडिया ऐज इल्लस्ट्रेटेड बाइ दि अजंता फ्रेस्कोज', इंडियन ऐंटिक्वेरी, 1959, पृ० 159-62 तथा 169-72.

क्रमरिश, स्टेला : दि विष्णुधर्मोत्तर, खं० 3 : ए ट्रेटाइज आन इंडियन पेंटिंग ऐंड इमेज-मेकिंग, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, 1928.

— ए सर्वे आफ पेंटिंग इन दि डेक्कन, लंदन, 1937.

गुप्ते, आर० एस० एवं महाजन, बी० डी० : अजंता, एलोरा ऐंड औरंगाबाद केव्स, बंबई, 1962.

गैरोला, वाचस्पति : भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1963.

गोएत्ज, एच० : 'दि नेग्लैक्टेड आस्पेक्ट्स आफ अंजता आर्ट', मार्ग, खंड 2, संख्या 4, पृ० 35-64.

— 'पेंटिंग : अंजता', मार्ग, खं० 9, संख्या 2, पृ० 86-92.

ग्रिफिथ्स, जे० : 'अंजता फ्रेस्कोज', इंडियन ऐंटिक्वेरी, खं० 2, पृ० 152-53, खं० 3, पृ० 25-28, खं० 4, पृ० 253.

— दि पेंटिंग्स इन दि बुद्धिस्ट केव-टेंपल्स आफ अंजता, खानदेश, खं० 2, लंदन, 1896.

घोष, अमलानंद (संपादक) : अजंता म्यूरल्स, नई दिल्ली, 1967.

ढवलीकर, मधुकर केशव : 'न्यू इंस्क्रिप्शंस फ्राम अंजता', आर्स ओरिएंटलिस, खं० 7, 1968, पृ० 147-53.

— अजंता-ए कल्चरल स्टडी, पूना, 1973.

तारानाथ : भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास (अनुवादक रिगजिनलुंडप लामा), पटना, 1971.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दत्त, नलिनाक्ष : आस्पेक्ट्स आफ महायान बुद्धिज्म ऐंड इट्स रिलेशन टु हीनयान, लंदन, 1930.

देव, शांताराम भालचंद्र (सं०) : एक्स्कवेशंस एट भोकरदन, नागपुर, 1974.

पथी, टी० वी० एवं प्रसाद, वी० आर० एन० : अजंता, एलोरा ऐंड औरंगाबाद केव्स, एन एप्रीशिएशन, औरंगाबाद, 1972.

परमशिवन, एस० : टेकनीक आफ दि पेंटिंग प्रोसेस इन दि केव टेंपल्स ऐट अजंता, एनुअल रिपोर्ट आफ दि आर्किलाजिकल डिपाटमेंट रिपोर्ट आफ हिज एग्जाल्टेड हाइनेस दि निजाम्स डोमिनियन्स 1936-37, कलकत्ता, 1939.

पंत प्रतिनिधि : अजंठा (मराठी), बंबई, 1932.

पुसालकर, ए० डी० : भास-ए स्टडी, द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 1968.

फर्ग्युसन, जेम्स तथा बर्जेस, जेम्स : दि कैव टेंपल्स आफ इंडिया, 2 खंड, लंदन, 1880.

फाब्री, चार्ल्स : 'फ्रेस्कोज ऐट अजंता—एन ऐसे', मार्ग, खंड 9, संख्या 1, पृ० 61-76.

बर्जेस जेम्स : 'राक-टेंपल्स आफ अजंता', इंडियन ऐंटिक्वेरी, खं० 3, पृ० 269-74.

— नोट्स आन दि बौद्ध राक टेंपल्स आफ अजंता, दियर पेंटिंग्स ऐंड स्कल्चर्स ऐंड आन दि पेंटिंग्स आफ बाघ केव्स, माडर्न बौद्ध माइथोलाजी एट्सेट्रा, आर्किओलाजिकल सर्वे आफ इंडिया, संख्या 9, बंबई, 1879.

— रिपोर्ट आन दि बुद्धिस्ट केव टेंपल्स ऐंड दियर इंस्क्रिप्शंस (आर्किओलाजाकिल सर्वे आफ वेस्टर्न इंडिया, खंड 4).

बर्जेस, जेम्स और इंद्रजी, भगवानलाल : इंस्क्रिप्शंस फ्राम दि केव-टेंपल्स आफ वेस्टर्न इंडिया विथ डिस्क्रिप्टिव नोट्स, बंबई, 1881.

ब्राउन, पर्सी : इंडियन आर्किटेक्चर (बुद्धिस्ट ऐंड हिंदू पीरियड्स), बंबई, 1956.

— इंडियन पेंटिंग, षष्ठ संस्करण, कलकत्ता 1953.

मजूमदार रमेशचंद्र तथा पुसालकर, ए० डी० (संपादक) : दि एज आफ इंपीरियल यूनिटी (ए हिस्ट्री ऐंड कल्चर आफ दि इंडियन पीपुल, खं० 2) द्वितीय संस्करण, बंबई, 1953.

— दि क्लासिकल एज (ए हिस्ट्री ऐंड कल्चर आफ दि इंडियन पीपुल, खं० 3), बंबई, 1954.

मित्र, देवला : अजंता, षष्ठ संस्करण, नई दिल्ली, 1966.

मिराशी, वासुदेव विष्णु : वाकाटक राजवंश का इतिहास तथा अभिलेख (हिंदी अनुवादक : अजयमित्र शास्त्री), वाराणसी, 1964.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिश्र, रमानाथ : भारतीय मूर्तिकला, नई दिल्ली, 1978.
मेहता, रतिलाल एन० मोतीचंद्र : प्रीबुद्धिस्ट इंडिया, बंबई, 1939.
— सार्थवाह, द्वितीय संस्करण, पटना, 1966.
याजदानी, गुलाम : अजंता, 4 खंड, आक्सफोर्ड, 1930-1955.
— (संपादक) अर्ली हिस्ट्री आफ दि डेक्कन, आक्सफोर्ड, 1952.
राय कृष्णदास : भारत की चित्रकला, द्वितीय संस्करण, प्रयाग, वि० 2007.
लाफर, बर्थोल्ड : एन अर्ली डाक्यूमेंट आफ इंडियन आर्ट : दि चित्रलक्षण आफ नग्नजित (अंगरेजी अनुवाद बी० एन० गोस्वामी तथा ए० एल० दाहमेन—दल्लपिकोला), नई दिल्ली, 1976.
ल्यूडर्स, एच० : 'आर्यशूराज जातकमाला ऐंड दि फ्रेस्कोज आफ अजंता', इंडियन ऐंटिक्वेरी, खं० 32, पृ० 326-29.
वर्मा, धीरेंद्रनाथ : अजंता की गुफाएं, हैदराबाद, 1969.
वाटर्स, टी० : 'आन युआन च्वांग्स ट्रैवल्स इन इंडिया', द्वितीय भारतीय प्रतिमुद्रण, दिल्ली, 1963.
✓ शास्त्री, अजयमित्र : एन आउटलाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, वाराणसी, 1965.
— इंडिया ऐज सीन इन दि बृहत्संहिता आफ वराहमिहिर, दिल्ली, 1969.
— इंडिया ऐज सीन इन दि कुट्टनीमत आफ दामोदर गुप्त, दिल्ली, 1965.
— (संपादक) : 'काइनेज आफ दि सातवाहनाज ऐंड काइंस फ्राम एक्स्केवेशंस', नागपुर, 1972.
शाह, प्रियबाला (संपादक) : विष्णुधर्मोत्तर पुराण, खंड 3, गायकवाड ओरिएंटल सीरीज, संख्या 130, बड़ोदरा, 1958.
सरकार, दिनेशचंद्र : सैलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, खंड 1, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, 1965.
— स्टडीज इन दि ऐंशिएंट ऐंड मीडिएवल जिओग्राफी आफ इंडिया, द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 1971.
— 'इंस्क्रिप्शंस इन केव फोर एट अजंता', एपिग्राफिया इंडिका, खंड 33, पृ० 259-62.
सिंह, मदनजीत : दि केव पेंटिंग्स आफ अजंता, लंदन, 1965.
स्पिक, वाल्टर : अजंता टु एलोरा, बंबई, 1967.
हुई ली : दि लाइफ आफ हुएन त्सांग (अनुवादक सेमुअल बील) दिल्ली, 1973.
हेरिंघम, लेडी : अजंता फ्रेस्कोज, आक्सफोर्ड, 1915.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र सूची

1. गुफाओं का विहंगम दृश्य
2. अजंता की गुफाओं का योजना-चित्र
3. बरामदे के बाईं ओर का भाग, गुफा क्र० 26
4. मंडप के बाएं द्वार का सम्मुख भाग, गुफा क्र० 26
5. मडंप तथा स्तंभ का अलंकरण, गुफा क्र० 2
6. स्तूप के सम्मुख भाग पर प्रलंबपादासनस्थ बुद्ध, गुफा क्र० 26
7. सम्मुख भाग, गुफा क्र० 1
8. क्षांतिवादी जातक, गुफा क्र० 2
9. धर्मचक्रप्रवर्त्तन मुद्रा में वज्रासनस्थ भगवान बुद्ध, गुफा क्र० 1
10. बोधिसत्व पद्मपाणि तथा बोधिसत्व वज्रपाणि, गुफा क्र० 1
11. प्रलंबपादासनस्थ बुद्ध, गुफा क्र० 16
12. बुद्ध तथा बोधिसत्व, गुफा क्र० 10
13. हारिती और पांचिक, गुफा क्र० 2
14. बोधिवृक्ष पूजा, गुफा क्र० 10
15. श्रावस्ती का चमत्कार, गुफा क्र० 7

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

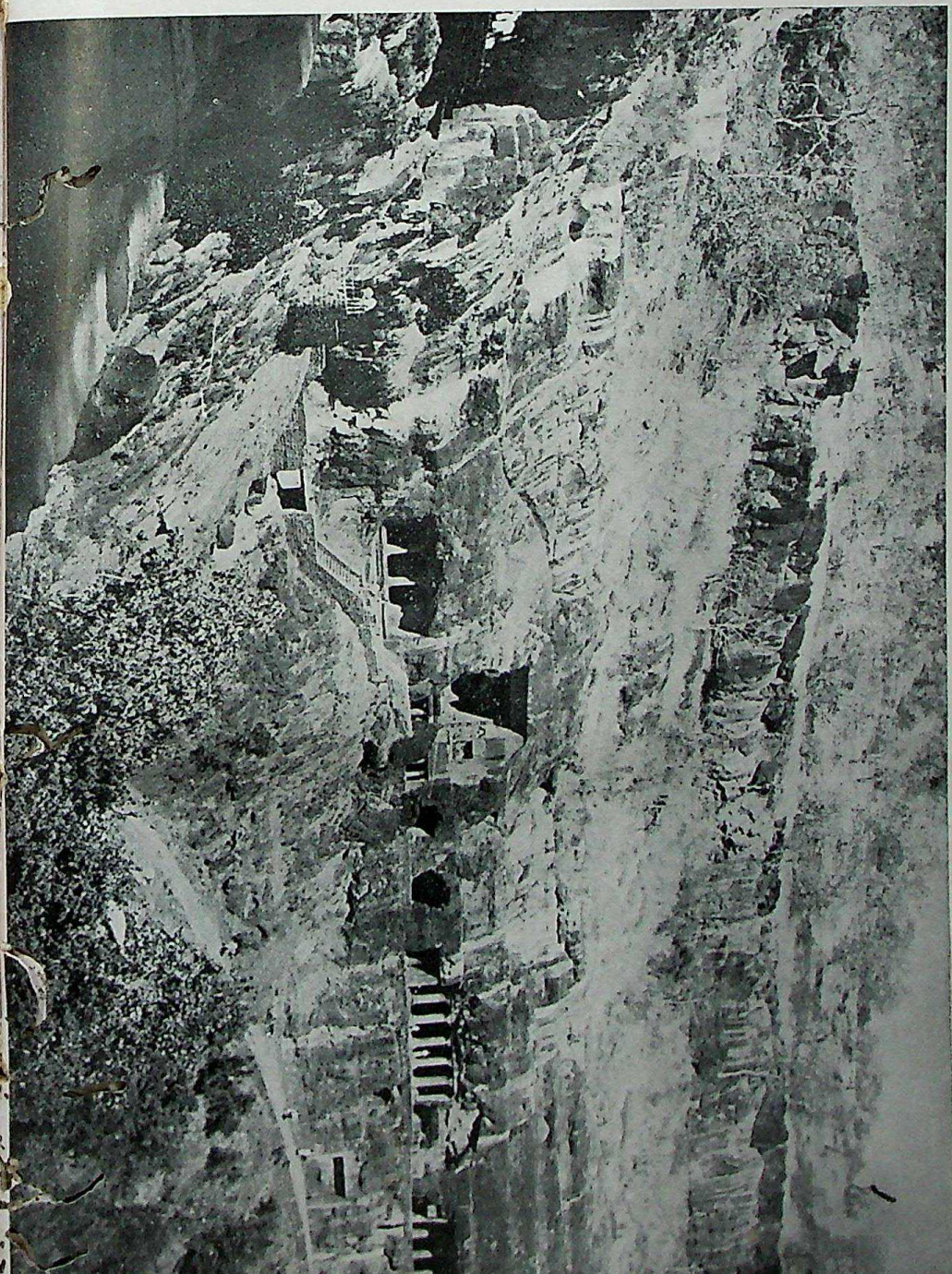

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

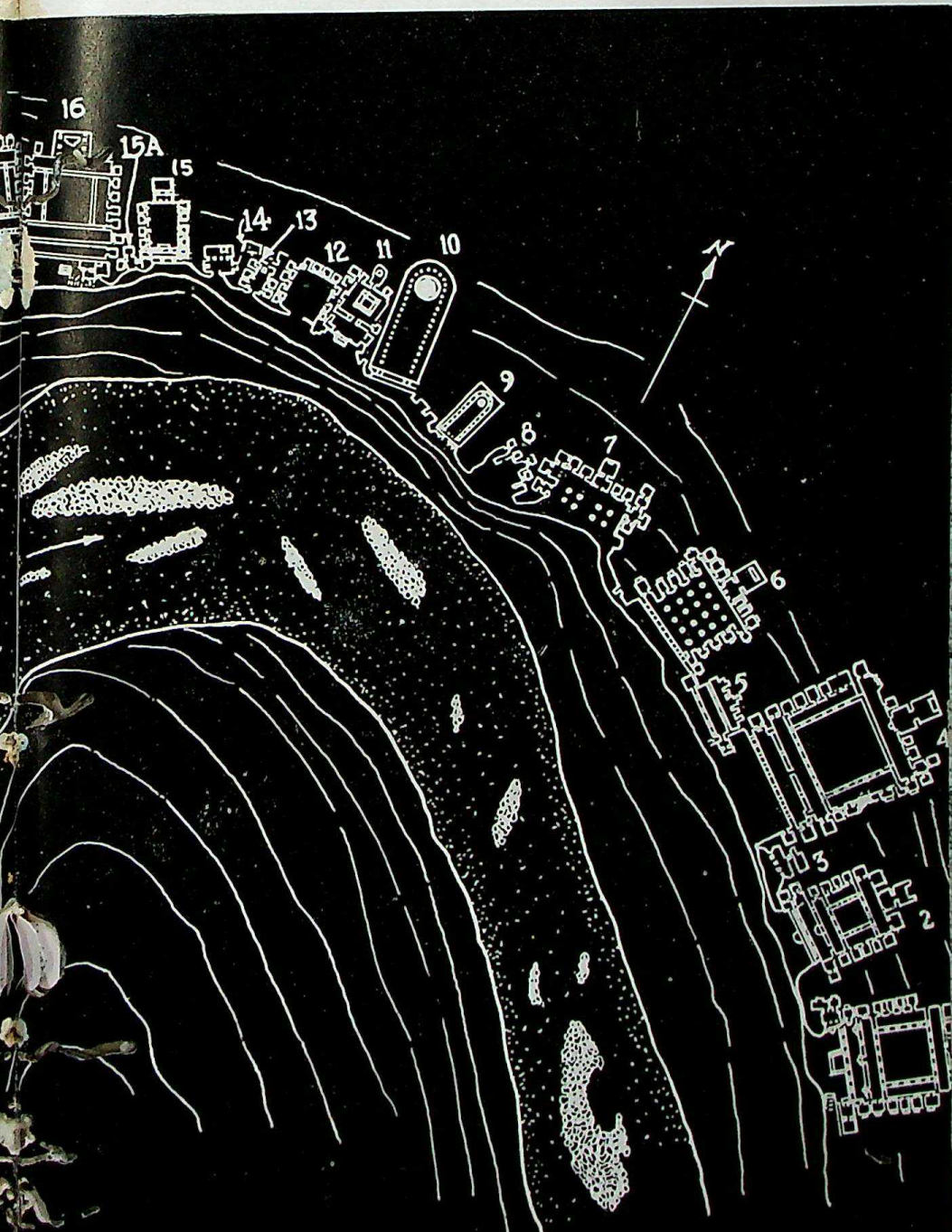

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3

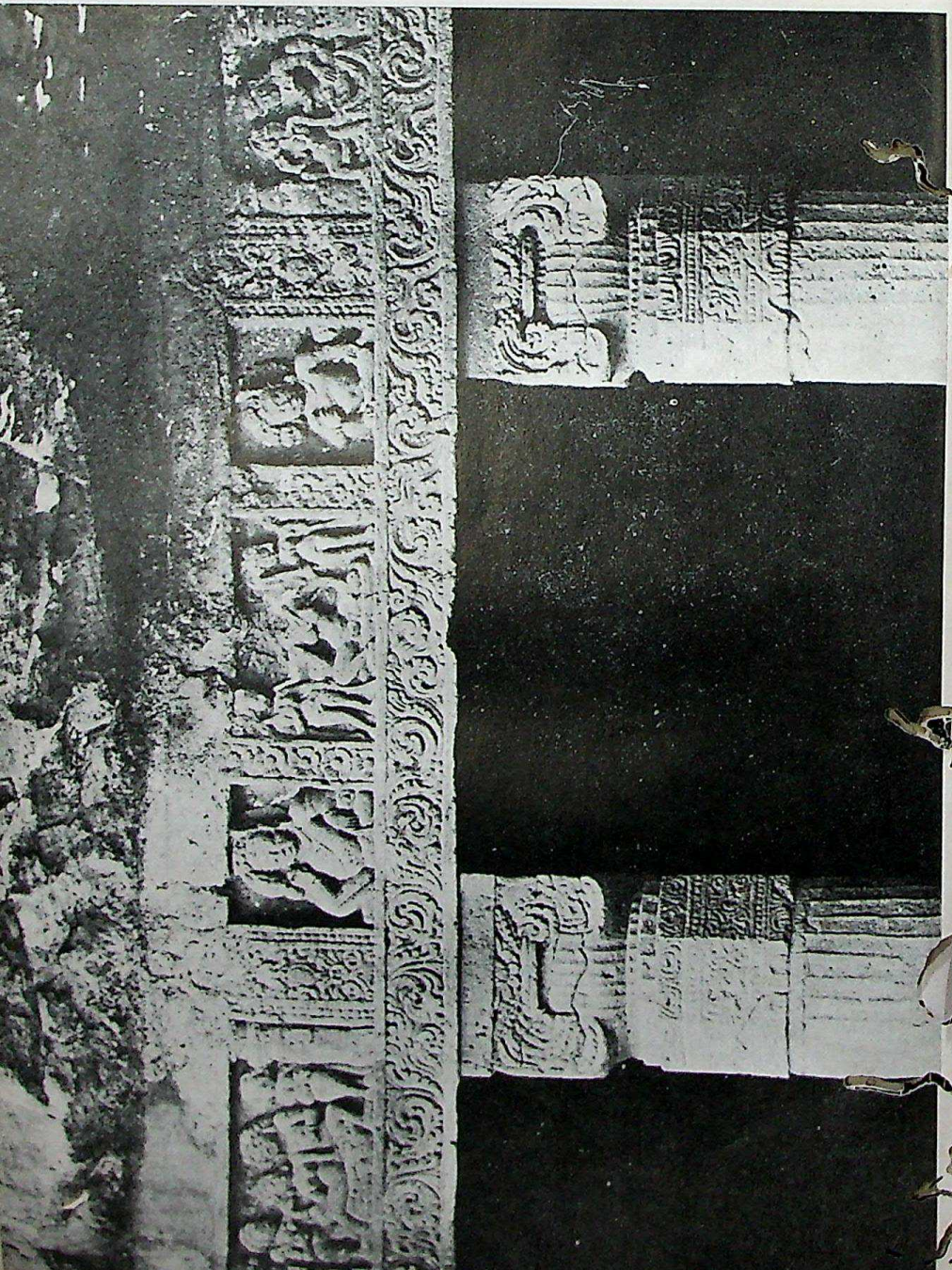

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

5

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

6

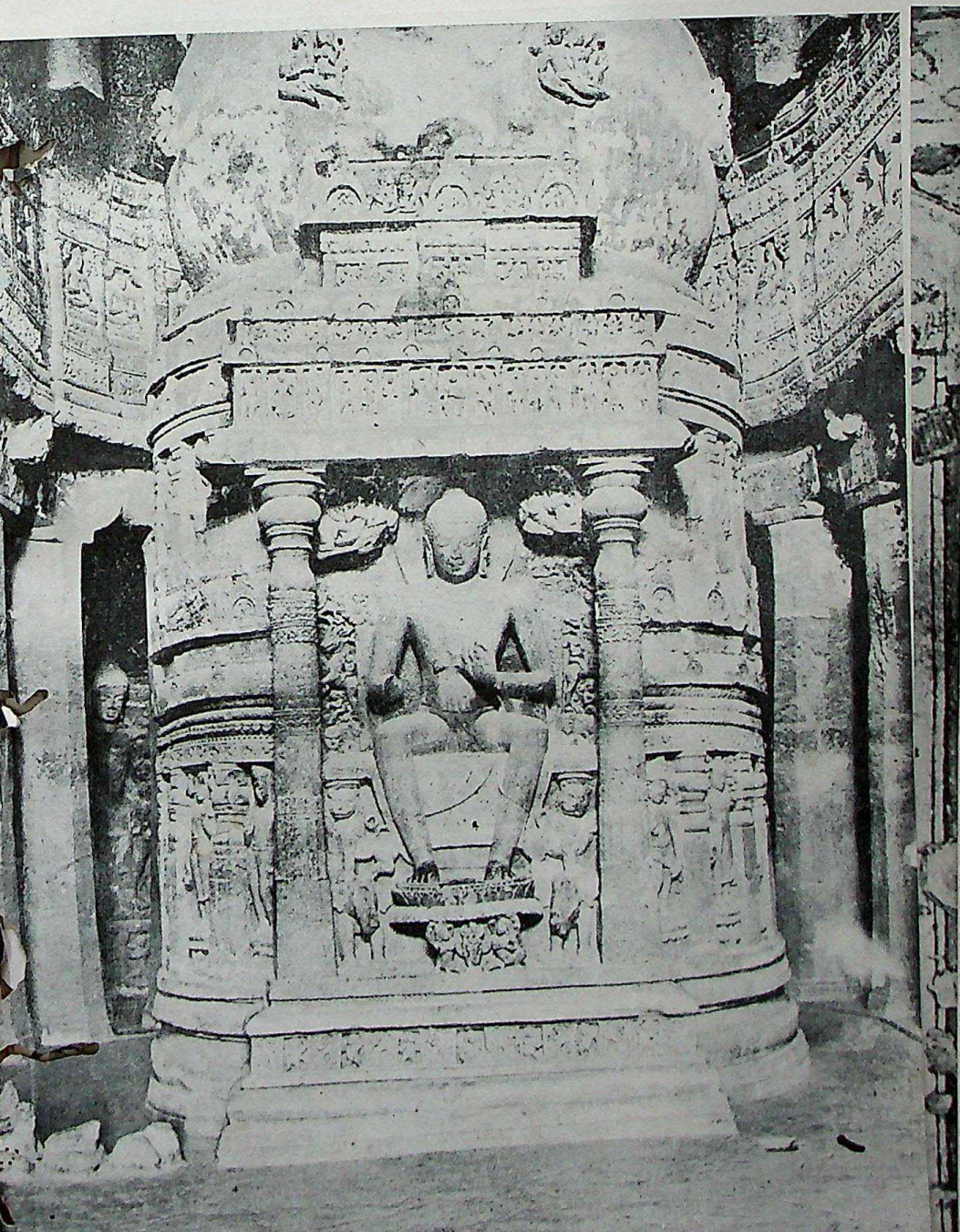

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

7

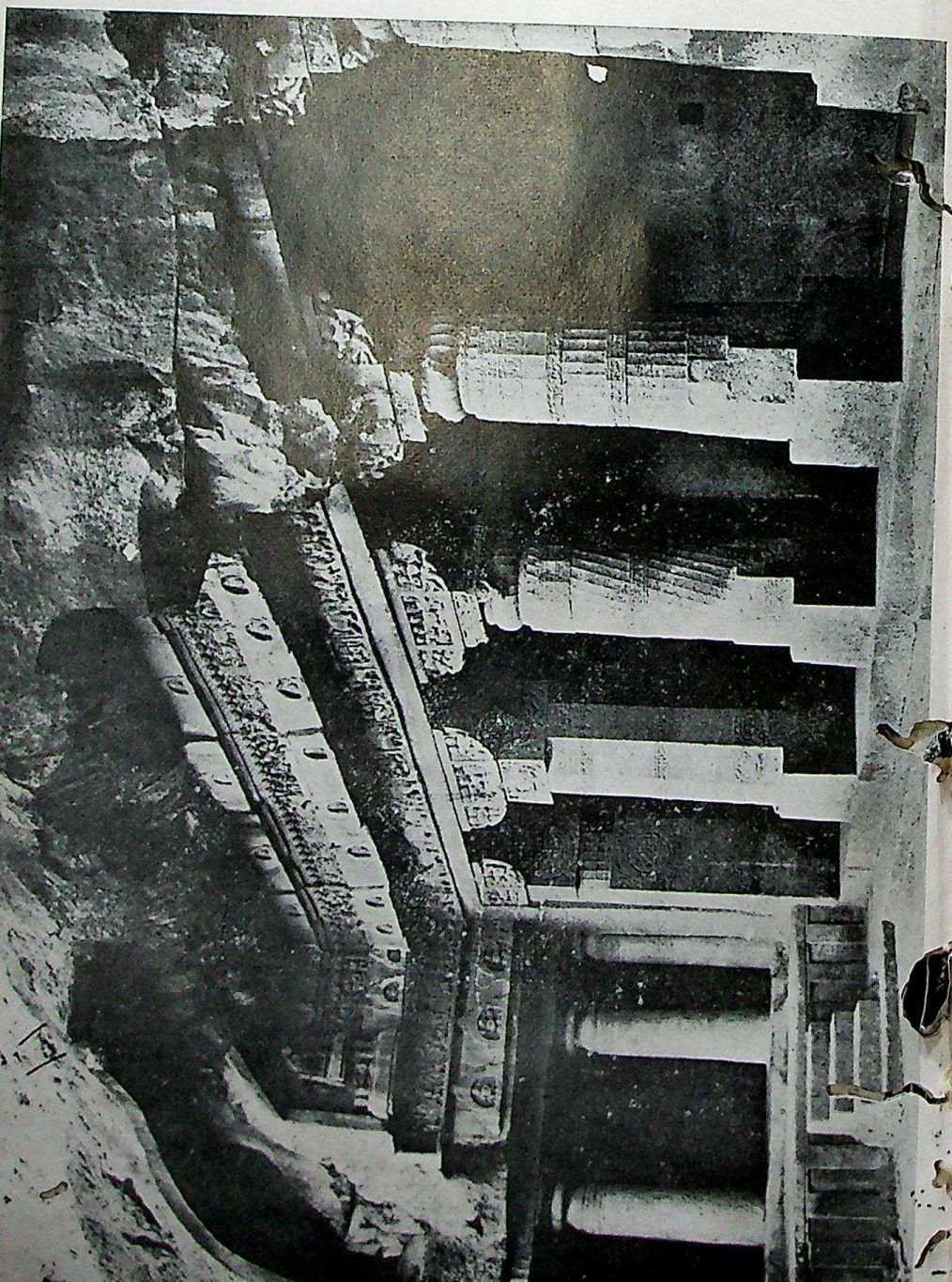

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

8

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

9

10

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

11

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

12

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

13

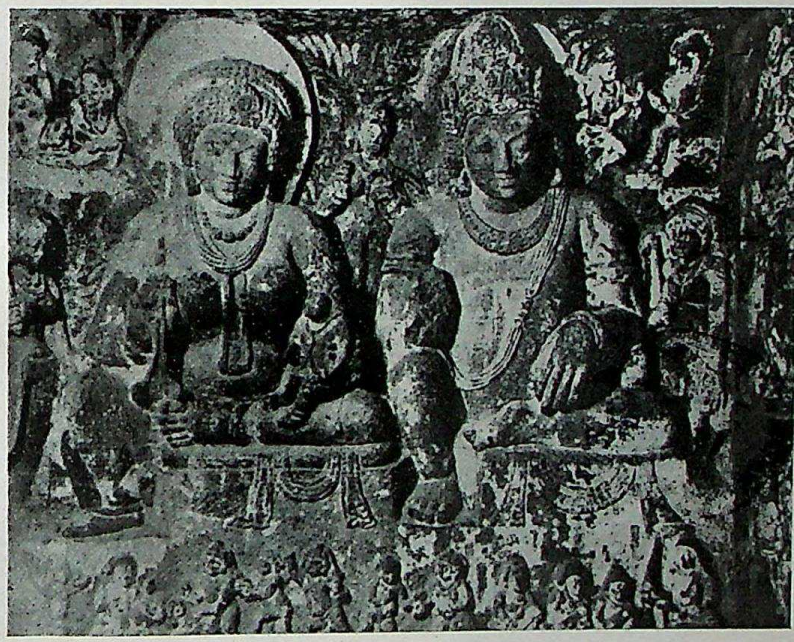

14

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

15

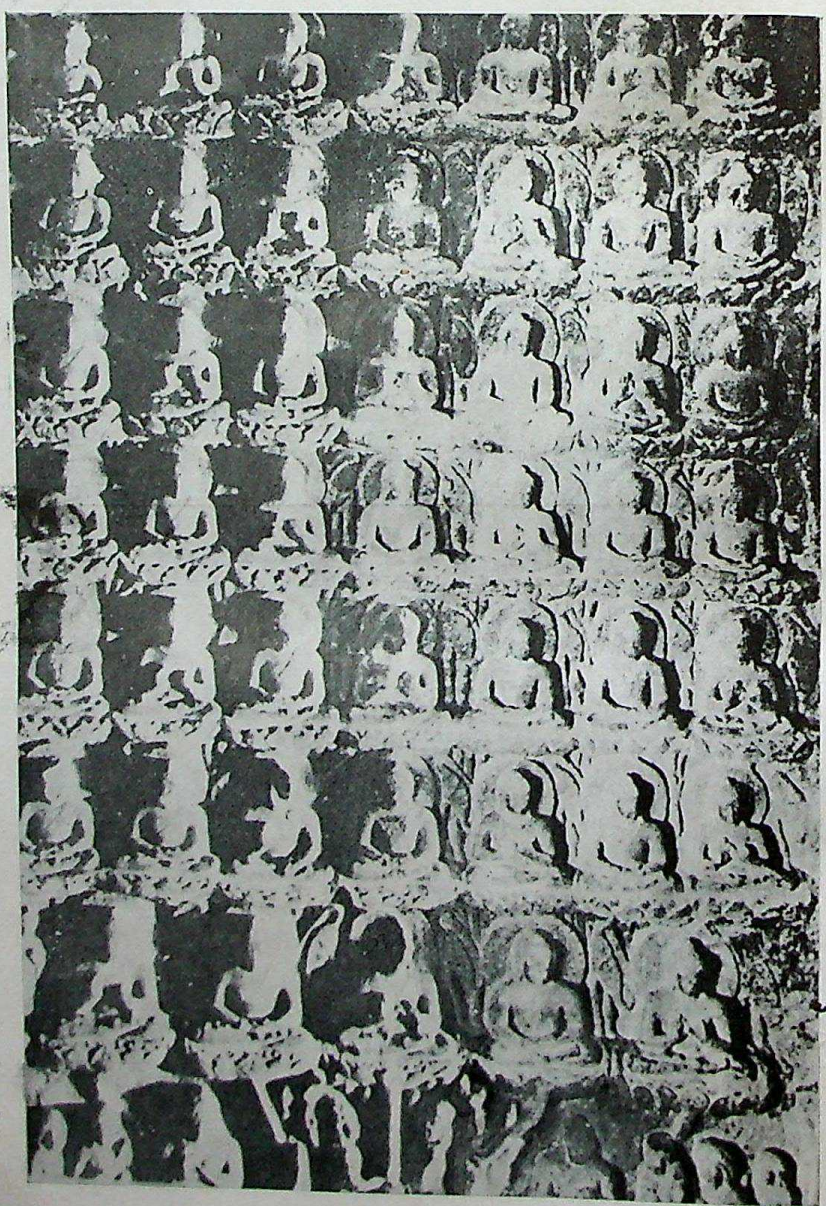

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणी

'अंगुत्तरनिकाय', 14
अचल, 3, 4, 5
अजंता/अजिंठा/अजितजय, 1, 6-8, 20, 24, 40, 42, 45, 48, 63, 112, 114, 133, 139, 146, 147
'अजंता' (गुलाम याजदानी का चार विशालकाय खंडों में प्रकाशित सुप्रसिद्ध ग्रंथ), 10
'अजंता फ्रेस्कोज', 10
'अजंता म्यूरल्स', 11
अत्रि, 65
अनिरुद्ध, 65
'अभिलषितार्थ चिंतामणि', 66
अभिलेख/लेख/शिला/गुहा/स्तंभलेख
—अशोक के, 17
—जूनागढ़, 7, 20
—नाणेघाट, 19, 20
—नासिक, 11, 19, 20
—बैराट, 16
—मंगलेश का महाकूट, 25
—राष्ट्रकूटकालीन, 5
—शिनकोट धातु करंडक, 32
—सातवाहनकालीन, 35
—हाथीगुंफा, 15, 19
'अभिज्ञान शाकुंतल', 67
अलेक्जैंडर, जेम्स ई० (लेफ्टिनेंट), 9, 72
अवंति, 14, 15, 17, 19, 21, 23, 24, 29, 30
अशोक, 16, 17, 31-33, 40, 87, 147
अश्मक, 14, 15, 19, 134, 137
अश्वघोष, 33
'अष्टाध्यायी', 14
'अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता', 34
—का ई० 148 में चीनी अनुवाद, 34
आप्पायिक, 26
आर्यशूर, 89, 96, 126, 132
आल, इंग्रिड, 11
इंद्रजी, भगवानलाल, 128
'उत्तररामचरित', 67, 71
एलोरा, 6, 7, 8, 40, 70, 87, 112, 143, 146
एस्किन, विलियम, 9, 72
'ऐहोके प्रशस्ति' (रविकीर्ति द्वारा रचित), 26
कण्हक, 53
कनिष्क (कुषाण सम्राट), 32
'कर्णसुंदरी', 68
'कलाविलास', 65
कात्यायनीपुत्र, 32
'कादंबरी', 68
'कामसूत्र', 64, 67
कालिदास, 23, 67

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कीर्तिवर्मा (द्वितीय), 28
'कुट्टनीमत', 68
केशव, 20
कोंडाणे, 20, 40, 112
कौंस्टेंटाइन, 32
कौंड्रिंग्टन, के० डी० बी, 11
'क्रिस्टल पैलेस कंपनी, सिडेनहम', 10
खारवेल के हाथीगुंफालेख, 15, 19
खुसरू द्वितीय, 86, 87
गर्ग, 65
'गाथासप्तशती', 24
'गीतगोविंद', 146
गुप्ता, प्रभावती, 22, 23
गुफा
—'कांतिचक्र', 93
—'गृह', 70
—'रंगमहल', 70
—'सहस्र बुद्धों की 103,
—'हाथीखाना', 70
—क्र० 1 45-47, 54-60, 69, 71, 72, 76, 80, 81, 102, 106, 114, 115, 118, 119, 123, 143
—क्र० 2 47, 55, 59, 60, 69, 72, 76, 102, 114, 117, 120, 123, 126, 143
—क्र० 3 48, 126, 143
—क्र० 4 41, 48, 61, 115, 116, 118, 126, 127, 143
—क्र० 5 49, 126, 143
—क्र० 6 41, 43, 50, 87, 106, 114, 115, 126, 127, 143
—क्र० 7 45, 51, 106, 115, 121, 127, 128, 143,
—क्र० 8 45, 120, 127
—क्र० 9 42, 44, 52, 56, 69, 71, 72, 76, 78, 102, 113, 115, 128, 130
—क्र० 10 5, 42, 44, 52, 54, 58, 69, 71, 72, 76, 102, 106, 128
—क्र० 11 45, 53, 114, 131
—क्र० 12 54, 131
—क्र० 13 55
—क्र० 14 55, 143
—क्र० 15/(अ) 45, 55, 56, 106
—क्र० 16 4, 56, 57, 69, 71, 80, 88, 92, 102, 114, 117, 121, 123, 125, 127, 131, 135
—क्र० 17 2, 57, 69, 71, 78, 80, 92, 114, 117, 125, 127, 133, 135
—क्र० 18 58
—क्र० 19 42, 44, 58, 61, 80, 113, 115, 117, 122, 135
—क्र० 20 59, 118, 135
—क्र० 21 60, 63, 135
—क्र० 22 36, 41, 60, 63, 136
—क्र० 23 60, 117
—क्र० 24 61, 117
—क्र० 25 61
—क्र० 26 4, 116, 121, 123, 125, 136

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

—क्र० 27 45, 62, 63, 118
—क्र० 28 45, 63
—क्र० 29 45, 63
—क्र० 30 63
गुफाएं (सातघर), 40
—पहली 'कर्ण चौपड़' 40
—दूसरी 'सुदामा', 40
—तीसरी 'लोमश ऋषि', 40
—'वडथिका', 40
—'वहियका', 40
—'विश्वामित्र', 40
—'गोपिका', 40
गोविंद, 26
गोस्वामी, बी० एन०, 66
गौतमी पुत्र यज्ञ सातकर्णि, 20, 21
ग्रिफिथ्स, जान, 10, 19
ग्रेसले (कैप्टन), 9, 72
घटोत्कच गुफा, 8, 25, 47, 80
घनामदंड, 54
घोष, अमलानंद 11
'चंद्रगुप्त बसदि', 16
चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (द्वितीय), 22
चक्रवर्ती, एन० पी, 128
चिऊ-त्जू, 148
'चित्रकर्मशिल्पशास्त्र', 65
'चित्रलक्षण', 65, 66
'चित्रसूत्र', 65, 74
'चुल्लवग्ग', 29
जयदेव, 68
'जयमंगला', 67
'जातकमाला', 89, 92, 126, 127 129, 132
जिओस्कार्फ, 10
ठाकुर, अवनींद्रनाथ, 146
डिल्लन, 149
ढवलीकर, म० के०, 11
तुन हुआंग, 103
तेंग चुन, 148
'त्रिकांडशेष' 71
थामस वाटर्स, 4
दशरथ (अशोक का पौत्र), 17, 32, 40
दाहन-दल्लचिकोला, ए० एल०, 66
'दि कैव टेंपल्स आफ इंडिया', 10
'दि पेंटिंग्स आफ अजंता', 11
'दि पेंटिंग्स इन दि बुद्धिस्ट कैव टेंपल्स आफ अजंता', 10
दिवाकरसेन, 23
'दिव्यावदान', 32, 99, 121
'दीघनिकाय', 91
'दुर्गासप्तशती', 146
'दूतवाक्य', 67
देवभूति/देवभूमि, 17
देवसेन, 24, 132, 133
देशपांडे, म० न०, 11
धर्मदेव, 53
नंदिवर्मा पल्लवमल (द्वितीय), 28
नग्नजित, 65, 66
'नग्नजिच्चित्रलक्षण', 65
'नग्नव्रत', 65, 66
नचना, 23
नरसिंह वर्मा (प्रथम), 27
नहपान, 19
'नागानंद', 68
'नैषधचरित', 68
परवेज खुसरू (ईरान का राजा), 27

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमेश्वर वर्मा प्रथम, 27
'पांडवों की गुफा', 70
पाणिनि, 14, 15
पितलखोरा, 20, 40, 42, 111, 143
पुरंदर, 65
पुलकेशी प्रथम (चालुक्य नरेश), 25
—द्वितीय, 2, 5, 20, 26, 27, 36
पृथिवीषेण प्रथम, 22
पृथिवीषेण द्वितीय, 23
'पेरिप्लस मारि एरिथ्री' (पेरिप्लस आफ दि एरिथ्रियन सी), 21
'प्रतिमालक्षण', 65
'प्रतिमालक्षणाध्याय', 65
'प्रतिज्ञायौगंधरायण', 67
प्रतिष्ठानपुर/पैठण, 8, 9, 14, 53, 112, 130
'प्रसन्नराघव', 68
'प्रज्ञापारमिता', 145
'प्रासादलक्षण', 65
फर्ग्युसन, जेम्स, 9, 10, 127
'फ्रेस्को बुओनो', 74
'फ्रेस्को अ सेक्को', 74
'बंगाल एशियाटिक सोसाइटी', 9
बर्ड, जे० (डा०), 9, 72
बर्जेस, 10, 127, 128
बसु, नंदलाल, 70
'बांबे कोरियार', 9
बाणभट्ट, 68
बिंदुसार, 16
बिल्हण, 68
बुद्धराज (कलच्चुरि नरेश), 26
बृहद्रथ (अंतिम मौर्य राजा), 17
बृहस्पति, 65
'बृहत्संहिता', 64, 65
ब्रह्मा, 65, 66
ब्लैक (लेफ्टिनेंट), 9
भटोत्पल, 65
भवभूति, 67
भास, 67
भोज, 65, 66
मंगलेश/मंगलराज, 25, 26
मय, 65
'मयमत्त', 65
महाकवि माघ, 1
'महामायूरी', 7
'महावंस', 31
'महाभारत', 81, 143
'महावस्तु', 99
महेंद्रवर्मा प्रथम, 26, 27
'मानसार', 64, 65
'मानसोल्लास', 65, 66
मामुलनार, 15
'मालतीमाधव', 68
'मालविकाग्निमित्र', 67
'मिलिंदपञ्ह', 32
'मुद्राराक्षस', 68
'मेघदूत', 23, 67
मेनाडर (मिलिंद), 32
मोग्गलिपुत्र तिस्स, 16
मौर्य, चंद्रगुप्त, 15, 16
ययाति, 20
यशोधरा, 67
याजदानी, गुलाम, 10
'रघुवंश' 67
रणराग, 25
'रतिरहस्य', 141

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'रत्नावली', 68
रविकीर्ति, 26
'राक टेंपल्स आफ अजंता ऐंड एलोरा', 10
राबर्ट गिल (कप्तान), 9, 10
राय कृष्णदास, 146
'रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, 9
राल्फ, 9, 72
राव, एस० आर०, 82
'रावणवहो' (रावणवध), 23
'ललितविस्तर', 34, 64
'ललितावलोक', 139
'लाइफ इन ऐंशिएंट इंडिया', 10
लाफर बर्थोल्ड, 65, 66
लामा तारानाथ, 32
लाल, बी० बी०, 11
ली (ह्वेन त्सांग का जीवनी लेखक), 4
लेकाक, 148
ल्यूडर्स, 126, 127
वंश, चालुक्य, 25, 28
—नंद, 15
—मौर्य, 16, 17
—वाकाटक, 21, 23, 24
"वन हंड्रेड स्टीरियोस्कोपिक इलस्ट्रेशंस आफ आर्किटेक्चर ऐंड नेचुरल हिस्ट्री', 10
वराहदेव, 24, 25, 47, 56, 71, 80, 117, 133
वराहमिहिर, 65, 66
'वसंतविलास', 146
वसिष्ठ, 75
वसुमित्र, 33
वाघोरा नदी, 2, 6, 7, 8
वात्स्यायन, 64, 67
वासिष्ठीपुत्र कटहादि, 53
वासिष्ठीपुत्र पुलमावि (सातवाहन नरेश), 14, 20
विंध्यशक्ति, 22, 24
विक्रमादित्य/प्रथम/द्वितीय, 27, 28
विक्रमादित्य षष्ठ, 66
'विक्रमोर्वशीय', 67
विजयादित्य, 27, 28
'विट्रुवियस', 74
'विद्धशालभंजिका', 68
विनयादित्य, 27
'विशालाक्ष', 65
'विश्वकर्मा', 65
'विष्णुधर्मोत्तरपुराण', 65,67, 74, 75
'वृत्तांतप्रकरण', 65
व्यूपाइंट, 2, 5
शुंग, पुष्यमित्र, 17, 32
शुक्र, 65
'शुक्रनीतिसार', 64
शौनक, 65
श्लिग्लोफ (प्रो०), 82
श्रवणबेलगोला (जैन तीर्थ), 15
श्री हर्ष, 68
श्रीमती स्पिअर, 10
संघाराम, 3, 4
सईद अहमद, 10
'समरांगण सूत्रधार', 65, 66
सर आरेल स्टाइन, 148
सर जान मालकौम, 9
सरकार, एस० एन०, 70
सर्वसेन, 24
'साउथ कैनसिंग्टन म्यूजियम', लंदन, 10

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सातकर्णि, 19, 20
सिंह, जय, 25
सिंह, मदनजीत, 11
सिमुक, 18
'सुत्तनिपात', 14
सुशर्मा, 18
'सूत्रालंकार', 81
सेंटपाल, 32
'सेतुबंध', 23
सोमेश्वर, 65
'स्वप्नवासवदत्त', 67
स्पिक वाल्टर, 45
स्मिथ, जान, 5, 129
हरदा, 9
'हर्षचरित', 68
हर्षवर्धन, 26, 68
हरिंघम (लेडी), 10
हरिषेण, 24, 25, 45, 46, 71, 80, 132, 134
हस्तिभोज, 132, 133
हालदार, असितकुमार, 70
'हिस्टारिकल रिसर्चेज', 9
ह्वेन त्सांग, 2 4, 26, 27
हैवेल, ई० बी०, 146

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

नीहाररंजन राय
मौर्य तथा मौर्योत्तर कला

नीहाररंजन राय
भारतीय कला का अध्ययन

रमानाथ मिश्र
भारतीय मूर्तिकला

द्विजेंद्र नारायण झा तथा अन्य
प्राचीन भारत

रामशरण शर्मा
प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार और संस्थाएँ

रामशरण शर्मा
शूद्रों का प्राचीन इतिहास

ओमप्रकाश
प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास

सुवीरा जायसवाल
वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास

दामोदर धर्मानंद कोसंबी
मिथक और यथार्थ

रोमिला थापर
अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन

M

दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड
नई दिल्ली बंबई कलकत्ता मद्रास